कर्मपथ

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन)

सम्पादक

रेणुका इसरानी

रंगकर्मी–अभिनेत्री

मुम्बई

त्रिवेणी कला संगम, जयपुर

कर्मपथ

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन)

©लेखकों की ओर से त्रिवेणी कला संगम, जयपुर द्वारा सुरक्षित

मूल्य
पाँच सौ रुपये मात्र

संस्करण
2012

प्रकाशक
त्रिवेणी कला संगम
बी-177, नित्यानन्द नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर-302021

लेजर टाइपसैटिंग
भूमि ग्राफिक्स, जयपुर

आवरण
सौ. गीता मोहन रावतोले,जलगाँव(महाराष्ट्र)

मुद्रक
शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर

सम्पर्क सूत्र
श्रीमती रेनू रानी शर्मा
अध्यक्ष, त्रिवेणी कला संगम
बी-177, नित्यानन्द नगर, क्वीन्स रोड, जयपुर-302021
दूरभाष : 0141-2352371

प्रकाशकीय

नब्बे का दशक हमारी संस्था की गतिविधियों का स्वर्णिम काल था। त्रिवेणी कला संगम परिसर में संगीत एवं नृत्य की कक्षाओं का नियमित रूप से संचालन, स्व. श्री माँगीलाल जी पँवार, गिरधारी महाराज, निसार हुसैन, स्व. डॉ. योजना शर्मा आदि द्वारा इन कक्षाओं में शिक्षण प्रशिक्षण दिया जाना तथा समय-समय पर संगीत, नृत्य एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर विभिन्न मंचों पर उनके प्रदर्शनों के माध्यम से हमारे अतीत की धरोहर को अक्षुण्ण रखते हुए इनके प्रचार-प्रसार करने के पर्याय के रूप में हमारी संस्था देश भर में ख्याति अर्जित कर चुकी थी।

अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल मुम्बई की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के केन्द्र व्यवस्थापक तथा इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ से मान्यता प्राप्त, वर्ष 2001 में स्थापित 'त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय' के मानसेवी प्राचार्य के साथ ही साथ संस्था के नाट्य प्रशिक्षक एवं सचिव के रूप में दिये गये डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के समर्पण भावी योगदान ने हमारी संस्था को संगीत, नृत्य एवं नाट्य जगत् में ऊंचाइयां प्रदान की।

नब्बे केदशक में संस्था द्वारा आयोजित नाट्य प्रशिक्षण शिविरों के आयोजन हेतु अच्छे बाल नाटकों की कमी को डॉ. शर्मा ने पूरा किया अपनी पहली पुस्तक 'तुक्के का बादशाह' लिखकर। इसका प्रकाशन हमारी संस्था की ओर से किया गया। इस पुस्तक के नाटकों को पर्याप्त मान्यता मिली और संस्था के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा अभिनीत नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' का जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनियाँ' कार्यक्रम से 13 जनवरी 1997 को प्रसारण हुआ। साहित्य, संगीत एवं नाट्य सम्बन्धी शर्मा जी के लेखन को मिली इस मान्यता को गति प्रदान करने के उद्येश्य से आगे चलकर संस्था द्वारा शर्मा जी की पुस्तक, अबला की मंज़िल, नरेश मेहता का गद्य साहित्य, काव्य संग्रह तरुणाई, आधुनिक परिदृश्य में मानव संसाधन विकास एवं प्रबन्धन आदि पुस्तकों का भी प्रकाशन किया गया। इससे अध्येताओं का शर्मा जी की प्रतिभा से परिचय हुआ और विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा उनके सृजन पर एम.फिल. एवं पीएच.डी. हेतु शोध कराये गये।

इसी क्रम में वर्ष 2003 में संस्था को विज्ञ जनों से यह सुझाव मिला कि शर्मा जी के सम्पूर्ण सृजन पर एक शोधपरक ग्रंथ का प्रकाशन किया जाये। यह वह समय था जब शर्मा जी अपनी बैंक सेवा में भरतपुर में कार्यरत थे और वहीं रहकर त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की संगीत, नृत्य एवं नाट्य सम्बन्धी गतिविधियों का संचालन भी कर रहे थे। ब्रज क्षेत्र के अपने प्रवास के दौरान ही उन्होंने ढूँढाड़ी गीतों के लेखन का शुभारम्भ किया। राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री हीरा लाल शर्मा 'सरोज' ने शर्मा जी के गीतों की विषयवस्तु एवं पृष्ठभूमि का अंग्रेज़ी अनुवाद करना प्रारम्भ किया था तथा उन्होंने इस प्रस्तावित पुस्तक का नाम 'डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन' रखने का सुझाव दिया।

कार्य का शुभारम्भ हुआ। इस पुस्तक हेतु विभिन्न विद्वानों को सामग्री भिजवाने, सम्बन्धित कार्यों को संयोजित करने आदि का जिम्मा स्वयं शर्मा जी ने लिया और सम्पादन का साहसिक कार्य किया रंगकर्मी-अभिनेत्री रेणुका इसरानी जी ने।

शर्मा जी सृजन करते रहे, इस पुस्तक हेतु विद्वान समीक्षकों के आलेख आते रहे और रेणुका जी उनका सम्पादन करती रही। सभी लोग अपने-अपने कार्यों में अत्यधिक व्यस्त थे परन्तु इस शुभकार्य में उन्होंने जो सहयोग दिया उसके लिये हम सभी का आभार व्यक्त करते हैं।

वर्ष 2011 में सूरत के श्री किशोर पटेल ने इस पुस्तक का नाम 'कर्मपथ' रखने का सुझाव दिया। संस्था द्वारा इसका अनुमोदन किया गया। अत: श्री पटेल एवं श्री हीरा लाल शर्मा 'सरोज' दोनों का आभार व्यक्त करते हुए यह पुस्तक कर्मपथ (डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन) के नाम से प्रकाशित की जा रही है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी के बहुआयामी सृजन का पाठकों, साहित्य, संगीत, नृत्य एवं नाट्य के विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं जन-जन को साक्षात् कराने हेतु प्रस्तुत है यह कर्मपथ, डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन।

रेनू रानी शर्मा

(रेनूरानी शर्मा)

अध्यक्ष, त्रिवेणी कला संगम, जयपुर

सम्पादकीय

राजस्थान और दिल्ली से मुम्बई आने के बाद हिन्दी साहित्य से जुड़ने की छटपटाहट और ज़्यादा बढ़ गई थी। सपने सच में भी पूरे होते हैं, यह अहसास मुझे तब हुआ जब मुझे डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा जी की विभिन्न रचनाओं पर ज्ञानी लेखकों, कलाकारों एवं अभिनेताओं की प्रतिक्रियाओं को सम्पादित करने का अवसर मिला। मेरे लिये यह एक ऐसी चुनौती थी जैसे कोई नटी आसमान पर बँधी सिर्फ एक डोर पर चल रही हो। मैं स्वयं को इसके लिए सक्षम नहीं मानती क्योंकि अनुभव की कमी है, अत: क्षमाप्रार्थी हूं। पर डॉ. शर्मा जी की प्रेरणा से पहली सीढ़ी चढ़ने की कोशिश की है।

जब शर्मा जी की रचना-समीक्षाओं का पुलिंदा मेरे हाथ में आया तो ऐसा लगा जैसे एक-दो महिने में अपनी जिम्मेदारी निभा लूंगी। पर नहीं, ऐसा हुआ नहीं। शूटिंग, व्यक्तिगत व्यस्तता और मुम्बई की तेज़ रफ्तार के बीच समय चोरी कर पाना आसान नहीं था। पर हाँ, इस समयावधि में दूरभाष वार्ता, पत्र व्यवहार, व्यक्तिगत सम्पर्क आदि के द्वारा मैं शर्मा जी के सम्पर्क में रही और उनके साहित्य की प्राप्त समीक्षाओं पर मुझे उनका मार्गदर्शन मिला।

कभी सोचती हूं कि एक लेखक जीवन के इतने पहलुओं को कैसे छू सकता है जैसे कि समंदर के एक छोर से दूसरा छोर।

जहाँ इन्होंनें विभिन्न भावों को प्रेम का रूप दिया है, जिसमें चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो या हृदय से जुड़ा हुआ हो, लेकिन एक पक्ष जिस पर बहुत कम ध्यान जाता है किसी का, कि प्रेम अनन्त भी होता है और आत्मिक भी, जिसका कई जन्मों का रिश्ता होता है, जिस प्रेम की अभिव्यक्ति न की जाये तो भी वह व्यक्त हो जाता है और ज़्यादा गहरा होता है।

मैं शर्मा जी को एक साहसी लेखक का नाम ही दे सकती हूँ। कोई लेखक अपने ही जीवन के अनुभवों को अपनी ही लेखनी में डाल दे, ये तो

साधारण सी बात है। पर ऐसे अनुभव जो कि अत्यन्त व्यक्तिगत और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी जुड़े हुए हों उन्हें पाठकों के साथ सहकार करना ही साहस है।

गाँव और शहर का जीवन, वहाँ की उन्मुक्तता, वहाँ की उलझन, वहाँ की सादगी, शहर का समीकरण, गाँव का अंधविश्वास या विश्वास आदि पर जो प्रकाश डाला है, वो पढ़ने वालों के लिये एक चलचित्र की तरह प्रकट हो सकता है।

निर्धनता एक ऐसा पक्ष है जिससे व्यक्ति या तो जीवन में हार सकता है या फिर उसे ही सीढ़ी बनाकर आगे बढ़ सकता है। लेखक का अपने पिता के प्रति गूढ़ प्रेम, सहानुभूति और अपना उत्थान शायद इस निर्धनता का ही फल है।

ये सब तो मानवीय पक्ष हैं पर जीवजन्तु भी लेखक के मन से परे नहीं। अपने घर में पली बिल्ली के प्रति परिवार का संबन्ध और फ़िर उसके साथ घटित घटना जो जीवन और मृत्यु को एक आइने की तरह सामने ला खड़ा करती है, और तब हम मजबूर हो जाते हैं यह सोचने के लिये कि जीवन और मृत्यु के बीच के क्षण हमें कैसे जीने हैं। फ़िर एक तीखी प्रकाश रेखा बेध देती है हृदय को, और अहसास होता है सिर्फ करने का, कर्म... कर्म... और कर्म...।

रेणुका इसरानी

(रेणुका इसरानी)

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय 3

सम्पादकीय 5

1. साधारण व्यक्तित्व का असाधारण कृतित्व 11
   — डॉ. रमेश चन्द्र वर्मा
2. एक बहुआयामी रचना प्रस्थान का नाम है यह 15
   — डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय 'तारेश'
3. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : जिन्हें मैं जानता हूं 18
   — कन्हैया लाल वर्मा
4. नृत्य के क्षेत्र में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का योगदान 21
   — राजेन्द्र गंगानी
5. जल रही है ज्योति 26
   — ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'
6. त्रिवेणी कला संगम और कैलाश चन्द्र शर्मा 30
   — डॉ. रामवीर सिंह शर्मा
7. नाटककार डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 34
   — डॉ. बाबू राम
8. उद्‌गार 42
   — जयन्त सावरकर
9. पर्दे के पीछे से 44
   — बालकवि बैरागी
10. 'तुक्के का बादशाह' : सहजता का दर्पण 45
    — नीना गुप्ता

11. तुक्के का बादशाह : पाँच नाटक 49
— नित्यशंकर मुखोपाध्याय
12. कंस 51
— डॉ. इला प्रसाद
13. खलनायक से नायक 53
— डॉ. पुनीत गोस्वामी
14. कंस नाटक (एक अभिनव स्तुत्य प्रयोग) 56
— डॉ. रामकृष्ण शर्मा
15. सबला को मिलती है मंज़िल 58
— डॉ. पूर्णिमा केडिया 'अन्नपूर्णा'
16. अबला की मंज़िल कहानी संग्रह 78
— डॉ. सुमन मेहरोत्रा
17. अबला की मंज़िल (कहानी संग्रह: एक चिन्तन) 80
— डॉ. मुरलिया शर्मा
18. कहानी संग्रह 'ओवरकोट': एक समीक्षा 82
— विजय कदम
19. अभिव्यक्ति एक सार्थक प्रयास 86
— डॉ. ऋता शुक्ल
20. 'अभिव्यक्ति' ने साहित्य पढ़ने की रुचि लौटा दी 88
— रेणुका इसरानी
21. अभिव्यक्ति: समीक्षा के आईने में 89
— डॉ. विजय बहादुर सिंह
22. अभिव्यक्ति उपन्यास में मनोवैज्ञानिक यथार्थ 93
— डॉ. गीता सक्सेना
23. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की 'अभिव्यक्ति' का यथार्थ : एक विहंगावलोकन 108
— डॉ. मीनू अरविन्द
24. व्यक्ति-मन के यथार्थ और मनोविज्ञान का प्रतिबिम्ब : अभिव्यक्ति 133
— डॉ. मीनाक्षी श्रीवास्तव

25. अभिव्यक्ति एवं विरह का इन्द्रधनुष का कथा शिल्प 143
— सौ. पद्मश्री
26. अभिव्यक्ति और विस्वास 148
— विजय जोशी
27. विरह का इन्द्रधनुष : एक विवेचन 166
— ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'
28. निर्धनता में सफलता (बम्बई की डायरी से) 175
— डॉ. मिथिलेश कुमार सिंह
29. तरुणाई (काव्य संग्रह) 189
— डॉ. रामकृष्ण शर्मा
30. 'तरुणाई' के अरुणिम कवि : कैलाश 192
— डॉ. नन्दलाल कल्ला
31. यथार्थ एवं सहजता के कवि : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 197
— डॉ. नागेश्वर सिंह
32. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ढूंढाड़ी गीतों में प्रकृति, प्रेम एवं यथार्थ 222
— प्रोफेसर मायारानी टाक
33. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ढूंढाड़ी गीतों का नृत्य-नाट्य पक्ष 249
— सौ. आशा जोगलेकर
34. कर्मयोगी : कर्म का दर्पण 254
— डॉ. शलेन्द्र स्वामी 'शैल'
35. संस्मरण 257
— डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा
परिशिष्ट 1 साक्षात्कार 288
परिशिष्ट 2 पत्र 300
परिशिष्ट 3 डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ... 308

1

साधारण व्यक्तित्व का असाधारण कृतित्व

डॉ. रमेश चन्द्र वर्मा

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से मेरा प्रारम्भिक परिचय हमारे कॉलेज में चल रहे वार्षिकोत्सव कार्यक्रम में आपके द्वारा लिखित एवं निर्देशित नाटक 'तुक्के का बादशाह' के मंचन के दौरान हुआ। नाटक की व्यंग्य एवं हास्यमय शैली से आपकी लेखकीय प्रतिभा का भान हुआ, जिससे आपके बारे में और जानकारी पाने की इच्छा हुई। यह इच्छा आप स्वयं ने मुझसे अपने पिताजी के जीवन पर आधारित पुस्तक 'कर्मयोगी' के कवरपेज के डिजाईन बनवाने हेतु सम्पर्क में आने पर सुलभ करायी। बैंक जैसे शुष्क विभाग में हिन्दी अधिकारी के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करते हुए एवं बचे हुए समय में अपने द्वारा किए गए कार्यों का परिचय दिया। आप लेखक, कवि, नाटककार, नृत्यविधा (कत्थक) के जानकर, गीतकार आदि के साथ-साथ 'त्रिवेणी कला संगम' जैसी संस्था के संस्थापक भी हैं जिसके अन्तर्गत संगीत एवं नृत्य आदि विधाओं में सर्टिफिकेट एवं डिग्री स्तर के शिक्षण एवं परीक्षाओं का संचालन भी आप द्वारा कराया जाता है।

साधारण कठ-काठी, उन्मुक्त हँसी एवं मेहनत का जज्बा आपको अपनी ग्रामीण पृष्ठभूमि के कारण ही मिला है, ऐसा मेरा मानना है। आपमें और मुझमें कुछ समानता भी मिली। एक तो आपका और मेरा ग्रामीण पृष्ठभूमि से लगाव, दूसरा जयपुर की स्थानीय बोली 'ढूंढाड़ी' में संवाद और तीसरा आपके एवं हमारे परिवार के साझा मित्र सांभर निवासी राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित चित्रकार श्री कन्हैयालाल वर्मा। यह सभी आपके साथ आत्मीय सम्बन्ध बनाने में महत्वपूर्ण रहे।

*प्रवक्ता (चित्रकला) रामेश्वरी देवी कन्या महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

लेखक के रूप में आपका व्यक्तित्व :- आपकी पुस्तक कर्मयोगी, कंस, आधुनिक परिदृश्य में मानव संसाधन विकास एवं प्रबन्धन तथा हिन्दी मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य : समकालीन भारतीय संदर्भ (जिस पर आपको डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त हुई) के कवरपृष्ठ बनाते समय मुझे आपके लेखन के विविध पहलुओं के बारे में जानने का अवसर आपसी संवाद द्वारा मिला, क्योंकि एक चित्रकार का यह कर्तव्य होता है कि वह पुस्तक के मूलभाव को चित्र के माध्यम से प्रस्तुत करे जो लेखक ने पुस्तक में लिखा है। 'कर्मयोगी' पुस्तक के कवर पृष्ठ हेतु जब चित्र पूरा हुआ तो आप बड़े प्रसन्न हुए और कहा कि वर्मा साहब आपने मेरी कल्पना को हू- ब- हू कागज पर उतार दिया।

कवि के रूप में आपका व्यक्तित्व :- एक मुलाकात में आपने हमें कुछ ढूंढाड़ी गीत, जो कि आपने भरतपुर में रहकर लिखे थे सुनाए और मुझसे तथा मेरी पत्नी से इस बारे में अपनी राय जानना चाहा क्योंकि हम भी ढूंढाड़ी बोली बोलते हैं। इन सभी गीतों को लयबद्ध रूप में ब्रज क्षेत्र की बालिकाओं एवं आपके मुख से सुनने का अवसर मिला आपकी संस्था त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के वार्षिकोत्सव पर। किस प्रकार आपने ब्रजभाषी बालिकाओं को ढूंढाड़ी बोली का अर्थ एवं उच्चारण सिखाया, यह आपकी प्रतिभा का एक दूसरा रूप है।

आपकी ब्रजभाषी शिष्याओं के द्वारा ढूंढाड़ी शब्दों का उच्चारण सुनकर आपकी एक विशिष्ट खूबी से परिचय हुआ और वह यह कि आप कितने अच्छे संगीत शिक्षक भी हैं। इन सभी प्रतिभाओं के बाद आप में सबसे अच्छी बात यह लगी कि आप अपनी कमियों को सुनने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। आपने मेरी पत्नी को कहा कि वह इन गीतों की प्रस्तुति में रही कमियों को बताए और वह उनके आग्रह को न टाल पायी। इसी कारण वे अपने विभिन्न कार्यों में मेरी पत्नी की समीक्षा भी पूछते हैं और संभवत: आप इसीलिए मेरी पत्नी के बारे में कहते हैं कि वह आपके कार्यों की बहुत अच्छी समीक्षक हैं। गीतों के अन्दर बकरियां चराते प्रेमी-प्रेमिका की चुहल, रुई धुनते पिंदारे के द्वारा समाज को संदेश तथा मेले का वर्णन आदि का चित्रण करते हुए ऐसा लगता कि आप अपने ग्रामीण परिवेश, जो कि नौकरी लगने के कारण छूट गया है, को याद करके अपनी आत्मीय क्षुधा को शान्त कर आनंद विभोर होते रहते हैं। मैं स्वयं भी इन गीतों को सुनकर आत्म विभोर हो गया था।

नर्तक के रूप में :- अपने गीतों पर युवा लड़कियों के साथ कदम से कदम मिलाकर लोक एवं कत्थक शैली के सम्मिश्रण से आपने अनूठा नृत्य प्रस्तुत कर हमें अपनी प्रतिभा से परिचित कराया।

नाटककार के रूप में :- आपसे पहला परिचय ही नाटककार के रूप में हुआ था, लेकिन जब आपको स्वयं को नाटक के पात्र के रूप में काम करते देखा तो लगा कि यदि इच्छाशक्ति हो तो व्यक्ति कोई भी कार्य कर सकता है। आपने सदैव नयी प्रतिभाओं को निखारने का प्रयास किया व उनको लेकर रवीन्द्र मंच जयपुर जैसे स्थल पर सफल मंचन कर अपनी निर्देशन क्षमता का परिचय दिया।

कलाकार के रूप में :- एक कलाकार के रूप में देखें तो लगता ही नहीं कि आप इतने प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं जो लगातार कार्य करने में विश्वास रखते हैं। इसी कारण आपसे लोग जुड़ते चले जाते हैं। कुछ लोग केवल यह इच्छा रखते हैं कि कुछ बहुत अच्छा करेंगे परन्तु वे कार्य शुरू नहीं करते। परन्तु आपने ऐसा नहीं सोचा और सतत् रूप से क्रियाशील रहकर उपलब्धियां प्राप्त करते रहे। एक कलाकार के रूप में मेरे पारिश्रमिक को लेकर आपसे कुछ मतभेद भी रहा परन्तु आपकी सहजप्रियता एवं कार्य करने की लगन को देखकर मैं स्वत: ही आपके साथ हो लिया।

आपसे बातचीत के दौरान आपने अपनी पत्नी के बारे में अपनी राय अभिव्यक्त की जो उनके प्रति अत्यधिक सम्मान से भरी थी जिसके आधार पर आपकी उपलब्धियों में आपकी पत्नी के योगदान के रेखांकन की छवि की जानकारी मिली कि किस प्रकार एक पत्नी मौन रहकर आपका सहयोग कर रही है। आपके योग्य बच्चे अपने आप एक अलग सँसार रच रहे हैं यह एक सृजनकर्ता के लिए संतोष की बात है। इसमें आपकी पत्नी का सहयोग सराहनीय है और वे ही वर्तमान में त्रिवेणी कला संगम की अध्यक्ष हैं। आपके सृजनकर्म के क्षेत्र के साथ आपने अनेक विशिष्ट लोगों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखा जिनमें प्रख्यात नाटककार श्री विजय तेंदुलकर, सुरेश खरे, रंगकर्मी श्री अनुपम खेर, दिनेश ठाकुर, विजय कदम, पद्मश्री, देवेन्द्र राज अंकुर, नीना गुप्ता, रेणुका इसरानी, जयन्त सावरकर, समीक्षक श्री प्रयाग शुक्ल, श्री बालकवि बैरागी, संगीतज्ञ पदमश्री विश्वमोहन भट्ट, नृत्यगुरु श्रीमती आशा जोगलेकर, नृत्यांगना श्रीमती अर्चना

जोगलेकर, राजेन्द्र गंगानी, साहित्यकार डॉ. ऋता शुक्ल, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद सिंह, डॉ. प्रेमप्रकाश भट्ट आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने आपको प्रोत्साहित किया और वर्तमान में भी आपको प्रोत्साहित कर रहे हैं। आपकी पुस्तक 'हिन्दी मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य : समकालीन भारतीय संदर्भ' का डिजाईन करते हुए मराठी नाटक, लावणी, रंगमंच, नौटंकी, रामलीला आदि के मंचन के बारे में बात करते हुए हम दोनों खो से जाते थे, फिर पुनः अपनी मूल बात पर आ जाते और जब आपकी पुस्तक के अनुरूप गाँव के चबूतरे पर टैंट लगाकर लालटेन की रोशनी में राजस्थानी वाद्य यंत्र नगाड़े की थाप पर नृत्य करते स्त्री-पुरुष से सजा हुआ चित्र बना तो आप उसे देखकर एक बच्चे की भाँति प्रसन्नता से चहक उठे जो आपकी कलाप्रियता का द्योतक है। उनका उत्साह देखकर मुझे अपना परिश्रम सफल हुआ प्रतीत हुआ।

अन्त में मैं इतना ही कहूंगा कि इतने अधिक क्रियाशील रहकर भी अपनी जड़ों को सीचनें वाला गाँव का यह साधारण व्यक्ति कला एवं साहित्य जगत् का एक महत्वपूर्ण योद्धा है जो 'एकला चालो' कि तर्ज पर चलता हुआ अपने साथ लोगों का कारवां बनाता चल रहा है और उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता है।

❑❑❑

2

एक बहुआयामी रचना प्रस्थान का नाम है यह

डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय 'तारेश'

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का रचना-संसार बहुतों के लिए अपरिचित जैसा है। उनकी कलम मशहूर न होकर भी मौलिक है। यही कारण है कि उनके सृजन और चिन्तन में विविधता के साथ-साथ युग की नब्ज़ टटोलने का कौशल है।

उनकी रचना-यात्रा कई विधाओं से गुज़रती हुई एक समर्थ और जीवन्त रचनाकर्मी के बारे में आश्वस्त करती है। उपन्यास, कहानी, कविता, समीक्षा, शोध, डायरी, साक्षात्कार जैसी कई विधाओं का स्पर्श करती हुई डॉ. शर्मा की प्रतिभा ने नाटकों के क्षेत्र में सर्वाधिक विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होंने सृजन से लेकर मंचन तक, संयोजन से लेकर निर्देशन तक अपनी क्षमता का परिचय नाटक विधा के क्षेत्र में दिया है।

सृजन के संदर्भ में यह सच है कि परिवेश लेखन को प्रभावित करता है। इसलिए परिवेश के यथार्थ और उनके अनुभवों की अभिव्यक्ति लेखक अपनी दृष्टि से अपनी विधा में करता है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने सृजन की हर विधा में परिवेश के अनुभवों की ही ईमानदार अभिव्यक्ति की है। जन्मजात संस्कार की तरह उनकी प्रतिभा के बीज अँकुरित हुए हैं और समय के साथ उनकी उपलब्धियों का पौधा भी दिखने लगा है। इससे संकेत मिलता है कि प्रतिभा को प्रेरित होने भर की देर होती है, लेखक अपनी क्षमता का उपयोग करने में जुट जाता है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का सृजन भी इस प्रक्रिया का जीवन्त उदाहरण है, क्योंकि चुनौती और स्वाभिमान के साथ उन्होंने लेखन को अपनाया है। इसमें

*स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय.
निवास : तपोवन, बह्मर्षिनगर, पिस्का मोड़ रातू रोड, राँची-834005

संदेह नहीं कि प्रगति का रास्ता आसान नहीं होता और सुनिश्चित भी नहीं होता। इसके बावजूद डॉ. शर्मा ने साहित्य के राजपथ पर अपनी यात्रा निरन्तर जारी रखी है। तभी उनकी रचनाएं उनकी चुनौती को सफल करती हुई अपनी पहचान बनाती हुई नजर आती हैं।

प्रसिद्ध साहित्यशिल्पी नरेश मेहता के कथा साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की टिप्पणी है–

'उन्होंने काल्पनिक जगत् की कथा को प्रस्तुत न करके अपनी रचनाओं में वास्तविक विश्व के मानव-जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। वे व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राजनीति आदि किसी को नहीं भूले हैं और सभी को उन्होंने अपने कथानकों में यथेष्ठ स्थान प्रदान किया है।'

यह टिप्पणी स्वयं डॉ. शर्मा की रचनाओं पर भी सटीक लगती है। डॉ. शर्मा के दोनों उपन्यासों, दोनों कहानी संकलनों और सभी नाटकों में जीवन सत्य अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है। इन सभी रचनाओं का आधारफलक वह समकालीन जीवन ही है, जिसमें हमारे समय की वास्तविकताएं और समस्याएं एकत्र हैं। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा ', 'अफ़सर का कुत्ता' कार्यवाहक हलवाई, 'आधुनिक यमलोक', 'देख जात के ठाठ' तथा 'नामकरण' जैसी नाट्यकृतियों में तो डॉ. शर्मा ने यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य का उपयोग भी किया है। युगसत्य उनके रचना-संसार का आधारफलक है, जिस पर उनके चिन्तन और लेखन के सारे अवयव अवलम्बित हैं। अपने समय की चिन्ताओं, पीड़ाओं और चुनौतियों को डॉ. शर्मा ने भलीभाँति अनुभव करने के बाद ही अपनी रचनाओं में उतारा है। तभी उनकी कृतियां इतनी विश्वसनीय बन सकी हैं। उनके नाटकों के प्रशंसित मंचनों से इस सत्य की पुष्टि बार-बार होती रही है।

जीवन के व्यापक अनुभव और कठिन परिश्रम से डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के लेखक-व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। वस्तुत: खुली आँखों से अपने आसपास की स्थितियों का सर्वेक्षण करने वाला और कठिन परिश्रम करने वाला ही सफल लेखक बनता है। डॉ. शर्मा ने इन दोनों स्तरों पर अपनी सजगता और सक्रियता से प्रभावित किया है तभी उनकी रचना-धारा एक नियमित प्रवाह की तरह चल रही है।

डॉ. शर्मा का भाषाचिन्तन उनके साहित्यिक विस्तार की तरह बहुआयामी है। एक ओर वे हिन्दी के विश्वव्यापी स्वरूप के प्रति आश्वस्त नजर आते हैं, तो

दूसरी ओर अपनी मातृभाषा/स्थानीय भाषा ढूंढाड़ी के प्रति श्रद्धाभाव से समर्पित दीखते हैं। राष्ट्र और विश्व के स्तर पर वे हिन्दी की शक्ति और सत्ता के प्रति आश्वस्त हैं । उनकी स्पष्ट धारणा है कि – 'यदि अंग्रेज़ और मुसलमान शासकों के शासनकाल में हमारी संस्कृति को छिन्न-भिन्न एवं नष्ट कर गुलामों की भाषा थोपने के नियोजित षड्यंत्र न किये गए होते तो हिन्दी भाषा विश्व में सिरमौर होती।'

अतीत से वर्तमान हिन्दी के विकास की दिशाओं से सुपरिचित डॉ. शर्मा ने हिन्दी भाषा को विश्व की गरिमामयी भाषा माना है। लेकिन अपने देश की भाषा ढूंढाड़ी के प्रति उनका प्रेम और आग्रह बहुत ही प्रभावित करता है। 'न हर को रह्यो न घर को' शीर्षक अपने विचारोत्तेजक निबन्ध में डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा ने ग्रियर्सन के ज़माने से चली आ रही अवधारणा का नूतन विश्लेषण किया है। उनका यह स्पष्ट मत है कि 'राजस्थानी' भाषा का तात्पर्य सिर्फ 'मारवाड़ी' उपभाषा नहीं है। राजस्थान में ढूंढाड़ी, शेखावाटी, मेवाती, बागड़ी आदि कई उपभाषाओं का प्रचलन है। इसी कारण डॉ. शर्मा प्रबलतापूर्वक सिर्फ मारवाड़ी को राजस्थानी के रूप में प्रतिष्ठित करने का विरोध करते हैं। उनका यह विरोध तार्किक है और भाषिक दृष्टि से मौलिक भी है।

आपके सृजन और चिन्तन के अभिनय विन्यास द्वारा डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने लगातार मौलिकता और प्रभावात्मकता का परिचय दिया है इसीलिए वर्तमान और भविष्य में उनके रचना-सँसार से होकर गुज़रना सजग पाठकों के लिए अनिवार्य होता जाएगा।

❑❑❑

3

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : जिन्हें मैं जानता हूं

कन्हैया लाल वर्मा

संयोगवश जीवन में कुछ घटनाएं इस प्रकार घटित होती हैं कि भविष्य के लिए वे अपनी अमिट छाप छोड़ जाती हैं। ऐसा ही कुछ घटित हुआ जनवरी 1999 में। मैं सन्ध्या भ्रमण के लिए जा रहा था, अपनी चिर परिचित सड़क के किनारे। सामने से मुझे मेरे मित्र डॉ. प्रेमराज कुमावत आते दिखाई दिये। उनके साथ साधारण से दिखने वाले एक अपरिचित सज्जन भी थे। निकट आने पर अभिवादन के पश्चात् डॉ. कुमावत ने कहा- 'इनसे मिलिए, ये मेरे मित्र हैं डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा।'

शर्मा जी से यह मेरा प्रथम परिचय ही था। लेकिन शर्मा जी ने कहा- 'मैं इन्हें जानता हूं।' मुझे आश्चर्य हुआ तो शर्मा जी ने मुझे बताया कि वे मेरी कला-अभिव्यक्ति से ठीक प्रकार से अवगत हैं और मेरे बड़े पुत्र चि. सुधीर के कृतित्व से भी परिचित हैं। मैंने सोचा कि कला में रूचि रखने वाले होंगे, अत: कहीं थोड़ा बहुत मेरे सम्बन्ध में पढ़ लिया होगा, इसी आधार पर शायद कह रहे हैं। परन्तु शर्मा जी ने तो कला पर गहरी और विस्तृत चर्चा प्रारम्भ कर दी। तब मैंने इनके सम्बन्ध में अधिक जानने की उत्सुकता प्रकट की तो डॉ. कुमावत ने बताया कि शर्मा जी पंजाब नैशनल बैंक में हिन्दी अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं और साहित्य, संगीत, कला एवं नाट्य-शास्त्र के अध्येता भी हैं। इनकी साहित्य एवं नाट्य पर कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे सुनकर अच्छा लगा। मैंने अगले दिन इनसे घर पर आने का अनुरोध किया तो आप कहने लगे कि मैं आपसे मिलना ही चाहता था। मैंने आभार प्रकट करते हुए इनसे इजाज़त ली और भ्रमण के लिये आगे बढ़ गया।

*राष्ट्रीय शिक्षक एवं चित्रकार, मालियों के मन्दिर के पास, सांभरलेक- 303604 (राज.)

दूसरे दिन निर्धारित समय पर डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा मेरे घर पर आये। हम लोग अल्पाहार के साथ-साथ साहित्य एवं कला चर्चा में लग गए। उन दिनों मैं 'मेघदूत कला शृंखला' पर कार्य कर रहा था। प्रत्येक चित्र को शर्मा जी बड़े ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि अलकापुरी में जयपुर का स्थापत्य एवं रंग विधान क्योंकर दर्शाया गया है। मेरा उत्तर था कि अलकापुरी को महाकवि कालिदास ने स्वर्ग का टुकड़ा कहा है और मैं जयपुर को सौन्दर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट मानता हूं। इसीलिए चित्रण के स्थापत्य में इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है। फिर तो आपने मेरी चित्रण प्रक्रिया पर अनेक प्रश्न किए, यथा-

- रंग किस प्रकार बनाते हैं?
- कागज़ कौनसा काम में लेते हैं?
- संयोजन की उत्कृष्टता किस बात पर निर्भर करती है?
- नख-शिख चित्रण कल्पना पर आधारित है या यथार्थ पर?
- नारी-चित्रण में शील की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर बन पड़ी है, कैसे?
- महाकाल के दर्शन करके सम्बन्धित चित्र सृजित किया अथवा पूर्व में ही चित्रण कर चुके थे?
- दशपुर- वधुओं के सौन्दर्य का आधार कहाँ से प्राप्त किया?

आदि अनेक प्रश्न शर्मा जी मुझसे पूछते जाते और मैं उनका समाधान करता। आप पूर्ण सन्तुष्ट होने के पश्चात् मुझसे अनुरोध करने लगे कि मैं आपको पंजाब नैशनल बैंक की स्थानीय शाखा में निमन्त्रित करने आया हूं। कल 30 जनवरी 1999 को हिन्दी सप्ताह के सहभागियों को आपके हाथों से पुरस्कृत करवाना है अत: अवश्य पधारिएगा। शर्मा जी ने अपनी कृति 'तुक्के का बादशाह' मुझे भेंट की और अपने दैनिक कार्य के लिए चल पड़े।

मैं हिन्दी सप्ताह के कार्यक्रम में उपस्थित हुआ। शर्मा जी ने थोड़ी जगह में बहुत ही सुन्दर व्यवस्था की थी। प्रारम्भिक औपचारिकता के पश्चात् कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। आपने बैंकों में हिन्दी के महत्व पर सारगर्भित उद्‌बोधन दिया। समस्त श्रोता, बैंक अधिकारी एवं कर्मचारी मन्त्रमुग्ध होकर शर्मा जी को सुन रहे थे। इसके पश्चात् अन्य वक्ताओं ने भी अपने -अपने विचार प्रकट किए।

मुझसे भी बोलने के लिए कहा गया था। पुरस्कार वितरण एवं स्वल्पाहार के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

यह प्रथम परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ होने लगा। आपने जयपुर में 'त्रिवेणी कला संगम' की स्थापना की है। इसके सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आप मुझे बुलाना नहीं भूलते। मुझे प्रसन्नता है कि आप भावी पीढ़ी को साहित्य एवं कला के क्षेत्र में आगे बढ़ाने के लिए प्रेरक की भूमिका का निर्वहन करते रहे हैं। आपकी यह निरन्तरता सदैव बनी रहे। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

❑❑❑

4

नृत्य के क्षेत्र में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का योगदान

राजेन्द्र गंगानी

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक ऐसा व्यक्तित्व है जिन्होंने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के माध्यम से साहित्य-संगीत एवं नृत्य का प्रचार-प्रसार कर एक ऐसा पुण्य कार्य किया है, जिसके लिए आने वाली पीढ़ियां तक उनकी ऋणी रहेंगी।

जयपुर जिले के ग्राम मैड़ में जन्मे डॉ. शर्मा को साहित्य एवं संगीत के प्रारम्भिक संस्कार अपने पिता स्व. श्री गणेशदास जी से मिले जो स्वयं भजन आदि गाते भी थे तथा श्री सियावरजी के मन्दिर के महन्त के उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए उन्होंने विराटनगर अँचल के गाँवों में संगीत के प्रचार-प्रसार का ऐसा कार्य किया जिससे उनके दो पुत्र - बाबूलाल एवं कैलाश संस्कारित हुए। कैलाश अपने बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि, साहित्यानुरागी एवं रामलीला, नौटंकी एवं लोकनृत्यों के शौकीन रहे हैं। उनके पिताश्री श्री सियावरजी का मन्दिर,बाणगंगा, ग्राम मैड़ नामक स्थान पर प्रतिवर्ष एक मेले का आयोजन कराते थे जिसमें उनके शिष्य एवं भक्तगण दूर-दूर के गाँवों से आकर भगवान के दरबार में आयोजित सत्संगों में भाग लिया करते थे। इस अवसर पर बिसायतियों द्वारा महिलाओं एवं बच्चों की जरुरत की छोटी-मोटी वस्तुओं , सौंदर्य-प्रसाधनों आदि से सम्बन्धित वस्तुओं की दुकानें भी लगायी जाती थीं, जिनसे महिलाएं टीकी, बिन्दी, चुटीला, पिनें, पहनने के छोटे-मोटे कपड़े आदि खरीदती तथा बच्चे लोग पपीहे (मुँह से बजाने की सीटी), बाँसुरी आदि खरीदकर मेले का आनन्द उठाया करते थे।

नौटंकी के बाद या रामलीला समाप्ति के पश्चात् नाटक मंडलियों द्वारा लोकनाटकों के प्रदर्शन भी किये जाते जिनमें, लोकनृत्यों की प्रधानता होती।

*वरिष्ठ नृत्य गुरु, दिल्ली कत्थक केन्द्र, दिल्ली

उन दिनों नाच-गान के लिए कामां (भरतपुर) निवासी मनोहर-गिर्राज की मण्डली प्रसिद्ध मानी जाती थी और हर ब्याह शादी में इस मण्डली को बुलाया जाना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता था। महाभारतकालीन स्थान विराटनगर भी डॉ. शर्मा के जन्म स्थान ग्राम मैड़ से लगभग 8-9 किमी. की दूरी पर स्थित हैं जहाँ पर अर्जुन ने वृहन्नला के वेश में राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा प्रदान की थी। उन दिनों के सांस्कृतिक परिवेश, विभिन्न अवसरों पर लोकनृत्यों एवं लोकनाटकों की प्रस्तुतियों तथा महाभारतकालीन अँचल में जन्म होने का यह संयुक्त प्रभाव ही था जिसके कारण डॉ. शर्मा का बाल्यकाल से ही संगीत, नृत्य, एवं नाट्य विधा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

मेरा स्वयं का बचपन वनस्थली विद्यापीठ में बीता और मैड़-विराटनगर के आस-पास से अनेक बार गुजरने का अवसर मिला परन्तु डॉ. शर्मा जैसा व्यक्तित्व इस गाँव की धरोहर है, इसके बारे में जानकारी नहीं थी।

वैसे तो वर्ष 1995 से ही मैं त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की संगीत नाटक एवं नृत्य सम्बन्धी गतिविधियों की पृष्ठभूमि पर कैलाश जी के नाम से परिचित था और जयपुर की नृत्यगुरु श्रीमती शशी साँखला, स्वर्गीय मोहन लालजी गुरुजी के शागिर्द श्री माँगीलाल जी पँवार, श्री गिरधारी महाराज आदि से डॉ. शर्मा की नृत्य सम्बन्धी अभिरूचि एवं इस क्षेत्र में किये गये उनके कार्यों के बारे में सुन रखा था परन्तु उनसे व्यक्तिश: परिचय हुआ वर्ष 2002 में जोधपुर में।

मैं संगीत नाटक अकादमी जोधपुर की बैठक में भाग लेने दिल्ली से जोधपुर आया था। जोधपुर में मेरे गुरु भाई रहते थे श्री हरीश पुरी जी 'नागा'। जब मैं उनसे मिलने उनके घर गया तो उन्होंने मुझे बताया कि डॉ. कैलाश शर्मा इन दिनों अपनी बैंक की नौकरी में पदोन्नत होकर जोधपुर आये हैं और वे चौपासनी हाउसिंग बोर्ड में अपने निवास स्थान पर त्रिवेणी कला संगम की ओर से संगीत एवं नृत्य की कक्षाएं चला रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वे यहाँ पर त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की एक अस्थाई शाखा के शिक्षक के रूप में संगीत नाटक एवं नृत्य का नि:शुल्क प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं और इस कार्य में स्वयं (नागा जी), गायक श्री शकूर खां साहब एवं एक रिटायर्ड पुलिस अधीक्षक श्री मेघराज जी रामावत उनका मनोबल बढाकर सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

नागा जी ने यह भी बताया कि शर्मा जी, गुरूजी (स्व. श्री कुन्दन लाल जी गंगानी) की कुछ बंदिशें सीखने के लिए मेरे पास भी आते हैं और कुछ समय पूर्व ही उन्होंने मंजू पुरी के साथ सरदार पटेल स्कूल के ऑडीटोरियम में कत्थक नृत्य की बहुत ही प्रभावशाली प्रस्तुति दी है।

नागा जी से यह सब सुनकर मुझे लगा कि हमारा कोई साथी बैंक जैसी नौकरी में रहकर भी कत्थक नृत्य सीख रहा है, सिखा रहा है और प्रस्तुतियां भी दे रहा है यह निश्चय ही इस क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए प्रेरणादायक है और मैंने पुरी जी से कहा कि मैं कैलाश जी से मिलना चाहता हूँ। उन दिनों शर्मा जी ने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की ओर से यूथ हॉस्टल, जोधपुर में एक संगीत, नृत्य एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविर लगाया था। पुरी जी ने बताया कि शर्मा जी अपनी बैंक की ड्यूटी पूरी करके शाम 6 से 8 बजे तक शिविर में प्रशिक्षण देते हैं और इसके बाद प्रतिदिन लगभग 9 बजे मेरे पास कत्थक नृत्य की प्रैक्टिस करने आते हैं।

मैं प्रत्यक्ष में शर्मा जी की गतिविधियों को देखने का लोभ संवरण न कर पाया और मेरी शिष्या अनुराग वर्मा, नागा जी, रेशमा पुरी आदि के साथ शर्मा जी से मिलने लगभग शाम 7 बजे यूथ हॉस्टल पहुँचा। हॉस्टल के कम्पाउण्ड में घुसते ही चक्करदार तोडा बोलने एवं घुँघरुओं की लयबद्ध ध्वनि ने रोमांचित कर दिया । हम तोडे की पढंत पूरी होने तक बाहर ही रहे परन्तु शायद शर्मा जी ने हमें देख लिया था अत: सम आने पर उठे और हमें अन्दर ले जाकर आदर से बैठाया।

उन्होंने हमें शिविर की गतिविधियों के बारे में जानकारी दी तथा अपनी उन छात्राओं के कत्थक नृत्य की प्रस्तुति भी दिखलायी जो उन्होंने पिछले लगभग दो माह में उन्हें सिखाया था। कत्थक नृत्य की कठिन आमद-परन एवं छोटे-छोटे कवित्त उन्होंने किस प्रकार आसान तरीके से अपनी शिष्याओं को सिखाये, इसे देखकर मैं स्वयं आश्चर्यचकित रह गया।

शर्मा जी ने अपने शिक्षण में अपनी ही कुछ श्रृंगार रस की कविताओं को भी सम्मिलित किया था। उन्होंने हरीश भाई के निर्देशन में अपनी 'तरुणाई' काव्य संग्रह की कविता 'बन्धन' पर पूर्व में दी गई प्रस्तुति को मंजूपुरी के साथ में हमें प्रस्तुत करके दिखाया। इस प्रस्तुति में पढंत कर रहे थे हरीश भाई, स्वर दे रही थी रेशमा, और तबला संगति कर रहे थे भूपेन्द्र पुरी। उनकी प्रस्तुति वाकई प्रशंसनीय थी। लग ही नहीं रहा था कि जो व्यक्ति 20 वर्ष की एक

लड़की के साथ कत्थक नृत्य की इतनी सुन्दर प्रस्तुति दे रहा है वह 45 वर्षीय एक बैंक मैनेजर है। उनकी प्रस्तुति में भाव-भगिमाएं, ताल - लय एवं हाव-भाव इन सभी का बेजोड़ संगम था जिसमें अभिनय भी स्पष्ट रूप से झलक रहा था। इसे देखकर हरीश भाई द्वारा कही गई यह बात स्वयं सिद्ध हो गई थी कि कैलाश जी एक कुशल रंगकर्मी भी हैं।

कैलाश जी को मैंने उनके कार्यों एवं उनकी नृत्य प्रस्तुति के लिए बधाई दी जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि यदि वाकई आपको मेरी प्रस्तुति अच्छी लगी तो इसे और अच्छी बनाने में सहयोग प्रदान करें। हरीश भाई ने इस बात पर उनकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा तो उन्होंने कहा था- 'हाँ पुरी साहब, मेरी प्रस्तुति तभी अच्छी बन सकेगी जब राजेन्द्र भाई मुझे कुछ तोडे, कुछ परन और कुछ बंदिशें अपने हिसाब से सिखायें।' उनकी इस बात पर मैं मुस्कुराए बिना न रह सका और कैलाश जी के हठ पर मुझे अपने जोधपुर प्रवास के दौरान कत्थक नृत्य के कुछ बारीक पक्ष उन्हें सिखाकर बड़े सुख की अनुभूति हुई।

उसके बाद तो शर्मा जी मेरे अभिन्न मित्र हो गये। होली, दीवाली, नववर्ष आदि के अवसर पर उनसे दूरभाष पर वार्ता करके मन को आनन्द मिलता। मुझे इस बात से प्रसन्नता थी कि शर्मा जी अपनी बैंक की नौकरी में रहते हुए खैरागढ़ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध संस्था 'त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय' के लिये कत्थक नृत्य का शिक्षण कार्य भी कर रहे हैं और हिन्दी-मराठी नाटकों पर डी. लिट् उपाधि हेतु शोध कार्य भी कर रहे हैं। शर्मा जी की बेटी काजल एवं अभिषेक ने लगभग 3 वर्ष की आयु से ही कत्थक एवं नाटकों का विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया और भाभी जी (श्रीमती रेनूरानी शर्मा) ने भी जयपुर के वरिष्ठ संगीतज्ञ श्री मांगीलाल जी पँवार से गायन सीखा। मुझे इस बात से बड़ी खुशी होती कि पूरा का पूरा परिवार ही साहित्य, संगीत, नाटक एवं नृत्य को समर्पित है।

एक वाकया याद हो आया। मैं दिल्ली में दुर्घटनाग्रस्त हो गया और कई दिन तक बिस्तर पर ही रहा। जब शर्मा जी को पता चला तो वे मेरा हाल-चाल पूछने जयपुर से दिल्ली आये, मुझसे मिले और कहा कि राजेन्द्र भाई आप जल्दी ठीक हो जाओगे क्योंकि मेरी, मेरे परिवार की और नृत्य जगत् से जुड़े बहुत लोगों की शुभकामनाएं एवं दुआएं आपके साथ हैं।

मैं जल्दी ही ठीक हो भी गया परन्तु इस बीच शर्मा जी का फोन निरन्तर आता रहा। फोन पर वे अपनी गतिविधियों की जानकारी देते और मेरे कार्यों की जानकारी लेते जिससे मुझे अच्छा लगता। वर्ष 2004 में उन्होंने मुझे बताया

था कि उन्होंने जयपुर की शुद्ध बोली ढूंढाड़ी में 3-4 गीतों की रचना की है और उन पर अपनी शिष्याओं से नृत्य भी कराया है। मैंने उन्हें शुभकामना देते हुए कहा था कि भगवान करे आप इस क्षेत्र में आगे बढ़ें।

जब वे मुझसे मेरे दुर्घटनाग्रस्त होने के समय दिल्ली में मिले तो मेरा मन बहलाने के लिए, वातावरण को हल्का-फुल्का करने के लिए मुझे अपना लिखा ढूंढ़ाड़ी गीत ' टर्र ' भी सुनाया जिसे सुनकर मैंने कहा था कि कैलाश भाई आपका यह गीत पूरी तरह से ग्राम्य जीवन का नक्शा प्रस्तुत करता है और इसमें नृत्य के भरपूर तत्व हैं, अत: आप ऐसे गीतों पर कार्य करके वीडियो एलबम की दिशा में अपना रुख कर सकते हैं। मैंने यह बात साशय शर्मा जी को कहीं थी क्योंकि मैं जानता था कि कैलाश जी स्वयं अच्छे कम्पोजर एवं नर्तक भी है अत: वे ऐसा कर सकते हैं।

जनवरी 2007 में शर्मा जी से हुई दूरभाष वार्ता में उन्होंने बताया कि 25-26 दिसम्बर 2006 को उन्होंने रवीन्द्र मंच, जयपुर पर 'लडी मैड़ की' नाटक प्रस्तुत किया जिसमें उन्हें ढूंढाड़ी गीत, नृत्यों आदि के माध्यम से राजस्थान के ग्राम्य जीवन, बोली, भाषा, खान-पान, पहनावा, रीति-रिवाज आदि की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता मिली है। उन्होंने यह भी बताया कि उनके द्वारा अब तक कुल 64 ढूंढाड़ी गीत लिखे जा चुके हैं जिनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री हीरालाल जी शर्मा 'सरोज' कर रहे हैं।

मैं बता नहीं सकता मुझे यह सब जानकर कितनी प्रसन्नता हुई कि मेरे एक मित्र जो सतत् रुप से संलग्न हैं अपने सृजन पथ पर बिना किसी लालच के, बिना किसी प्रतिफल की कामना के।

जब उन्होंने बताया कि त्रिवेणी कला संगम की ओर से प्रथम आडियो कैसेट की रिकॉर्डिंग 15 जनवरी 2007 को जयपुर में की जायेगी जिसमें उन्हीं के कम्पोजीशन में ऐसी प्रतिभाओं को गाने का अवसर प्रदान किया गया है जो प्रथम बार इस क्षेत्र में अपनी कला का प्रदर्शन कर रही हैं, तो और भी अधिक खुशी हुई और मन की गहराईयों से शर्मा जी के लिए स्वत: ही शुभकामनाएं निकल पड़ी।

'मेरे मित्र आप इसी तरह जीवन में आगे बढ़ते रहें और संगीत, नृत्य एवं नाटक के क्षेत्र में नवीन प्रतिभाओं को अवसर प्रदान करते रहें।'

❑❑❑

5

जल रही है ज्योति

ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी' यह वाक्य वाल्मीकि रामायण का है। लंका को जीतकर अयोध्या लौटते समय भगवान राम के यह उद्‌गार थे 'अपि स्वर्गमयी लंका लक्ष्मण मे न रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी'। अर्थात हे लक्ष्मण! यह लंका सोने की होते हुए भी मुझको आकर्षित नहीं करती है। माता और जन्मभूमि तो स्वर्ग से बढ़कर होती है।

जो व्यक्ति जहाँ जन्म लेता है, जहाँ उसके पुरखे रहे हैं, देवी-देवता हैं, जिसकी रज में लोट-लोटकर वह बड़ा होता है, जहाँ उसकी माता ने उसका लालन-पालन किया है, उसका देव दुर्लभ जीवन बीता है, वह स्थान वस्तुत: स्वर्ग से भी बढ़कर होता है।

अपनी जन्मभूमि का ऋण उतारना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। धनवानों को धन खर्च करके निर्माण कार्य कराकर, जिनके पास विपुल धन नहीं है उनको परोपकारी कार्य करके, सद्‌भावना का वातावरण निर्मित कर यह ऋण उतारना चाहिए। जो कलाकार है उसको कलाओं द्वारा और लेखनी के जौहर दिखाने वालों को किसी भी विधा में अपने जन्म-स्थान से सम्बन्धित रचनायें लिखकर यह पवित्र सेवा करनी चाहिए।

यह सबसे अनोखी और उत्तम प्रकार की सेवा है। ऐसा करने वाले विरले ही होते हैं। पहली बात तो लेखक या कवि होना ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा होती है। उस प्रतिभा का प्रयोग भी जन्म-भूमि के लिये ही किया जाये, यह तो सबसे दुर्लभ काम होता है। लेखक को या तो अपने क्षेत्र में कोई लेखन योग्य सामग्री (विषयवस्तु) ही दिखलायी नहीं पडती और यदि कोई है भी तो वह

*स्थान व पोस्ट प्रतापगढ़, जिला अलवर (राजस्थान)

प्रसिद्ध सी नहीं लगती। उसके मन में यह भी विचार आता है कि जनसाधारण को लेकर और सामान्य से (अप्रसिद्ध से) स्थानों को लेकर क्या लिखा जाये? कौन पढेगा? अपने क्षेत्र के बाहर तो कोई जानेगा भी नहीं। वह यह भी सोचता है कि यदि कुछ लिख भी दिया जाय तो प्रकाशित तो होगा ही नहीं।

लेखक की यह दुर्बलता उसकी लेखनी को रोके रखती है।

विश्व में इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं कि अनेक लेखकों ने अति साधारण से व्यक्तियों को पात्र चुनकर ही लिखा। अपने घरों और गाँवों पर ही लिखा। अपनी बस्ती, झोंपड़ों, निर्धनता से जूझते किसान-मजदूरों , विभिन्न रीति-रिवाजों पर ही लिखा और कई तो विश्व प्रसिद्ध लेखक बन गये।

हिन्दी साहित्य सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द जी के पात्र ग्रामीण वातावरण के लोग ही थे। विश्व प्रसिद्ध रूसी लेखक मैक्सिम गौर्की ने 'मेरा बचपन व मेरे विश्वविद्यालय' की रचना अपने आस-पास के परिवेश को लेकर ही की थी।

'मेरा दागिस्तान' के लेखक रसूल गमताजोव की प्रसिद्ध कृति भी उनके ग्रामीण परिवेश का ही विवरण है। हमारे ही क्षेत्र के स्व. जयसिंह नीरज की प्रसिद्ध रचना 'ढ़ाणी का आदमी' भी गाँव-ढ़ाणी को लेकर ही है। उनकी यह पुस्तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की रही है और रूस में पुरस्कृत भी हुई है। डॉ. राही मासूम रजा का प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गाँव' भी उनके जन्म-स्थान के परिवेश पर ही था। ऐसे लेखकों के प्रयास देखकर मन उनके समक्ष श्रद्धावनत् है। ऐसे लोग मेरी दृष्टि में मातृभूमि के सच्चे भक्त हैं। सत्यम् - शिवम् - सुन्दरम् के साधक हैं। वे लोग धन्य हैं।

28 दिसम्बर 2008 की रात्रि। सात बजे से नौ बजे तक का दृश्य। स्थान रामनिवास बाग, जयपुर के भव्य और विशाल रवीन्द्र मंच के मुख्य सभागृह का स्टेज। दर्शकों के नाम पर मात्र दो महिला, तीन पुरुष और एक नन्ही बालिका। इनमें से ही एक कार्यक्रम के मुख्य अतिथि और एक अध्यक्ष। इस बहुत बड़े थियेटर की शेष सभी सीटें खाली। जिस नाटका का मंचन चल रहा था वह था 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। तीन कलाकार उसमें अभिनय कर रहे थे, एक युवती और दो पुरुष। नाटक मैड़-विराटनगर अँचल की संस्कृति एवं लोक जीवन पर आधारित था। महाभारतकालीन विराटनगर का भू-भाग ही मैड़ है। पार्श्व संगीत (प्लेबैक संगीत) की व्यवस्था थी। 6-7 गीतों का परिस्थितिजन्य समावेश।

सभी ढूंढाड़ी में। जीवन्त अभिनय के साथ नाटक बहुत प्रभावशाली और रोचक था। कलाकार दर्शकों की संख्या से निराश न थे। वे इस प्रकार अभिनय कर रहे थे मानो पूरा हॉल दर्शकों से खचाखच भरा हो। इस नाटक के मुख्य पुरुष पात्र, लेखक, निर्देशक, व्यवस्थापक एक ही व्यक्ति थे। दस-बीस पुस्तकों, सैंकड़ों ढूंढाड़ी गीतों, कहानियों, उपन्यासों, जीवनी आदि विभिन्न विधाओं के लेखक हिन्दी साहित्य में पीएच.डी. तथा नाटकों पर डी.लिट्. किये हुए डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ही वह व्यक्ति थे जो इस नाटक का मंचन कर रहे थे। उन्होंने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की स्थापना की है। यह संस्था संगीत, नृत्य नाटक और लोक कलाओं के प्रचार-प्रसार, शिक्षा-दीक्षा आदि के लिये कार्यरत है। कोई सरकारी या गैर सरकारी सहायता लिये बिना डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा इसका संचालन कर रहे हैं। संस्था का मुख्य उद्येश्य भारतीय संस्कृति, कला, संगीत आदि के मौलिक रूप को बनाये रखते हुए इनका प्रचार-प्रसार करना तथा पुरातन मूल्यों का प्रसार व संरक्षण करना है। उनकी पुस्तकें भी इसी दृष्टिकोण से लिखी हुई हैं। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का यह पुनीत प्रयास स्तुत्य है।

मैड़-विराटनगर अँचल में सारंगी पर गाये जाने वाली गोपीचन्द भर्तृहरी की जीवनियां, ढप की थाप पर धमाल, अलगोजा की धुन पर नाच, बधावा रतजगा, भिवाण, कार्तिक ॥ान के पुराने गीत और लोकनृत्य आज लुप्त हो रहे हैं। धार्मिक सत्संगों में गाये जाने वाले पक्के (लोक) राग-मांड, सोरठ, बिहाग, कालिंगडा, आसावरी, मालकौंस, भैरवी, प्रभाती, अलीबक्शी ख्याल आदि सभी भुलाये जा चुके हैं। संत्संग और जगरातों में फ़िल्मी धुनों के भजनों ने सब कुछ समाप्त कर दिया है। एक प्रकार से लोक संस्कृति की सभी कलाएं और विधायें लुप्त हो चुकी हैं। ऐसे में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के कार्यक्रम में दर्शकों की संख्या नाममात्र की होना कोई आश्चर्य नहीं कहा जा सकता। आश्चर्य तो यह था कि इस नाममात्र की दर्शकों की उपस्थिति में भी कलाकारों द्वारा अपना अभिनय मनोयोगपूर्वक किया गया।

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार महाप्रलय के समय महाराज मनु ने सृष्टि के बीजों को एक नाव में सुरक्षित रखा था और उसका प्रतिफल ही आज का सँसार है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जैसे व्यक्ति भी ऐसा ही कर रहे हैं। बीज रूप में ग्रामीण संस्कृति की लोक कलाओं को सुरक्षित रख रहे हैं। किसी शुद्ध हृदयी सत्याचरण करने वाले व्यक्ति ने यदि वैश्वानर पर भगवान के भोग लगा दिया

तो उसने समस्त ब्रह्माण्ड को भोजन करा दिया। कैलाश जी के आयोजन में प्रेक्षागृह की कुर्सियां खाली रही तो क्या हुआ? यदि कार्यक्रम के मुख्य अतिथि ने सम्पूर्ण हृदय से उसकी सराहना कर दी, गद्‌गद हो गये, आत्मविभोर होकर श्रद्धावनत् हो गये तो पूरा प्रेक्षागृह एक मायने में दर्शकों से खचाखच भरा होने से कम न रह गया। यदि वे पाँच दर्शक सचमुच में गद्‌गद थे तो पूरा हॉल गद्‌गद था। कला जीवन्त थी और जीवन्तता अमरता की निशानी होती है।

❑❑❑

6

त्रिवेणी कला संगम और कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. रामवीर सिंह शर्मा

जिस प्रकार तीन स्रोतों का संगम इलाहाबाद भारतवर्ष के प्रसिद्ध तीर्थों में अपना स्थान बनाये हुए है उसी प्रकार साहित्य, संगीत और नृत्य कलाओं को प्रवाहित करने वाली संस्था 'त्रिवेणी कला संगम' अपना महत्व स्थापित अवश्य करती है। इसके संस्थापक डॉ. कैलाश जी प्रयत्न में जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही लग गये होंगे, ऐसा अनुमान करता हूँ।

आपसे प्रथम परिचय जोधपुर में मेरे घर पर हुआ। साथ में प्रोफेसर रमेश कुमार शर्मा, आगरा का संदर्भ था। प्रोफेसर शर्मा का ज़िक्र मेरे लिए जीवन की स्पष्टता, निर्भीकता, कर्मठता, आत्मीयता, दयालुता आदि के पर्याय स्वरूप है। उन्होंने ही मुझे मानव-जीवन की महानता से परिचित कराया। ख़ैर, कैलाश जी मेरे लिए अतिथि देवो भव: थे।

डॉ. कैलाश जी का एक पत्र खुद के बारे में कई जानकारियों से सम्पन्न , साथ में कुछ विशेष सामग्री के साथ था। खोलकर एक नज़र डाली, कुछ दिनों बाद दूसरी नज़र विस्तार से, कल तीसरी बार खोजी नज़र से परखने का मौका मिला, जिसमें 'बम्बई की डायरी' (1980) मेरी आँखों में टिक गई। यदि देखा जाय तो मेरे लिए डॉ. कैलाश जी का इतना परिचय ही पर्याप्त है जिसमें इनके हृदय की झाँकी अनुभव की जा सकती है। जहाँ हृदय होता है वहाँ सभी कुछ की सम्भावनाएं बनती हैं, जहाँ हृदय नहीं होता वहाँ जीवन का अभाव हो तो इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। हृदय वह पाठशाला है जिसमें विभिन्न कलाकार शिशु, दो एकम् दो, दो दूनी चार करते मिल जायेंगे। उनके नाम साहित्य, संगीत नृत्य, चित्र, स्थापत्य आदि अनेक हो सकते हैं। इन शिशुओं

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

के स्वरूप किस जीवन की मोहकता के प्रसून नहीं हो सकते। ये ही तो किसी देश के समाज के सच्चे उन्नायक होते हैं, बाकी तो पैसा कमाऊ के कोल्हू बैल। जब किसी के हृदय की पाठशाला से ये शिशुताएं झाँकने लग जाती हैं तब उनका हृदय धन्य-धन्य होना प्रारम्भ हो जाता है। इस पाठशाला का एक शिशु परिवार, समाज तथा देश के बराबर होता है। सही मायने में देश का निर्माता होता है। शिशु सौन्दर्य सम्पन्न कलाकार किसी भी एक कला को जन्म देकर उसकी वास्तविक झलक प्रस्तुत कर पाता है, वह इस देश की संस्कृति का सच्चा सिपाही होता है। यों तो संस्कृति सम्पन्नता की फौज इस देश में मौजूद है लेकिन वह इस देश के ही या विदेश के भी अनेक उन लोगों से इसे नहीं बचा पा रही है, जो इस देश को जिन्दा, विभिन्न प्रकार से खाये जा रहे हैं। जबकि एक लेखक अपने लेखन में ऐसे भी लोगों को चिन्हित-इंगित करता है, अपनी अभिव्यंजना कला से। यह अलग बात है कि अधिकांश पाठक नहीं समझ पाते हैं कि यह उन्हीं की दाढ़ी का तिनका है न कि किसी अन्य विशेष की। इस दृष्टि दोष का उपचार बाह्य चश्मा नहीं हो सकता क्योंकि अधिकांश लोग बाह्य दृष्टि दोष का चश्मा अपने-अपने नम्बरों का धारण किए हुए हैं। साहित्य ऐसे लोगों में से सहृदय के चरणों को अन्त: दृष्टि भेदक बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे अन्त: अन्धकार में झाँकने में सम्पन्न दिव्यदृष्टि धनी हो सकते हैं यदि चाहें तो। यहां तो अधिकतर खुद को भी नहीं पहचानने वाले अन्धों की भीड़ तैयार होती जा रही है। साहित्यिक दृष्टि से इन्हें क्या लेना देना। अपने देश की पारम्परिक सांस्कृतिक सोपानों की ऊँचाई उनके लिए नहीं के बराबर है, अपने विचार भवनों के आगे। साहित्य समझने लिखने के लिए चाहिए स्थिर संवेदनशीलता । हमारे देश में संवेदनशीलता की कमी नहीं है चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो। आवश्यकता तो उसके अधिक से अधिक समय तक सोच में बने रहने की है। आज के समाज में इसके अभाव को अनुभव किया जा सकता है। तब साहित्य क्या करे क्योंकि उसे तो उसकी ही ज़मीन (संवेदनशीलता) नहीं मिलती है तब कहां पर जीवन सापेक्ष वैचारिक फैसला पैदा हो और कैसे सम्बन्धित देश का जीवन, जीवन्त और ऊर्जावान बने। क्या यह स्थिति, व्यक्ति को साहित्य से दूर नहीं करती है, या साहित्य व्यक्ति से दूर नहीं रहता है। व्यक्ति तो सभी स्तरों पर भागम-भाग में लगा है। पता नहीं कहाँ जा रहा है, क्यों जा रहा है। हाँ, पैसे ने व्यक्ति को ऐसा घोड़ा बना दिया है कि वह हर

समय दौड़ता रहता है। इस दौड़ में उसे कुछ भी अपने आस-पास (परिवार भी) नहीं दिखाई देता तो साहित्य किस खेत का मूला है। डॉ. कैलाश जी का साहित्य ऐसी परिस्थिति में क्या सोच रहा है, गौर करने की बात है।

मनुष्य के पास अपने को अभिव्यक्त करने का अन्य माध्यम नृत्य है। यह साहित्य की तुलना में सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का सरल माध्यम हो सकता है। इसमें दर्शक की दृष्टि विषय वस्तु को ग्रहण कर सहृदय को आनन्द से सीधे जोड़ देती है। इसमें अर्थानुभूति शब्दों की तुलना में सहज-सरल तरीके से दर्शक को होने की अधिक सम्भावनाएं बन सकती हैं। यह सब प्रस्तुतकर्ता पर निर्भर करता है। वह अपने को कितना तराश पाता है यही उसकी सफलता का मापदण्ड़ भी होता है क्योंकि इसमें विषय वस्तु एकदम सामने रहती है। अभिनय अपने आप में अनुकरण की पूर्ण अभिव्यक्ति है जिसमें शारीरिक भंगिमाओं के साथ-साथ मानसिक नुकीलेपन की नितांत आवश्यकता रहती है। अभिनय के समय अभिनेता का अपना सब कुछ एक तरफ हो जाता है, पात्र एकदम सामने आ जाता है। पात्र को पूर्ण अभिव्यक्त कर पाना ही अभिनय की कसौटी है। आधुनिक परिवेश में इस क्षेत्र में सिनेमा की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है लेकिन उसका नितांत व्यवसायीकरण होना एक अलग बात है। डॉ. कैलाश जी नृत्यकला का प्रशिक्षण इस दौर में भी नि:शुल्क दे रहे हैं मनन करने का विषय है। इस माध्यम से कितने लोगों को जीवन जीने का ढंग बता पाते हैं, यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि इस समाज के लिए होगी।

गीत-संगीत जीवन की एक लय है। इस लय की लहरें अपनी ताल आदि सैद्धान्तिक वैज्ञानिकता के साथ कानों में बहकर हृदय में पहुँचकर मनुष्य को आनन्द से सराबोर किए बिना नहीं रहती। श्रोता किसी भी स्तर का क्यों न हो, उसके हृदय में जीवन राग पैदा हो ही जाता है। यह संगीत ही जीवन को देन कही जा सकती है। जीवन को आनन्दित करने का यह माध्यम साहित्य-नृत्य से भी अधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है, जिसमें लगभग सभी श्रोताओं की भागीदारी होती है कोई भी अछूता नहीं रहता है। इस क्षेत्र में समझ में आना नहीं आना उतना महत्व नहीं रखता जितना आनन्दित होना रखता है। यह कला विभिन्न मतों, धर्मों, उम्रों, व्यवसायों के सभी श्रोताओं को अपने में समेटने की सामर्थ्य रखती है। कम अधिक स्तर अलग बात है। छोटे-छोटे बच्चों को थिरकते हुए देखा जाना बहुत कुछ स्पष्ट कर देता है जो संगीत के आनन्द को शरीर के

माध्यम से थिरकने में व्यक्त करने से खुद ब खुद जुड़ जाते हैं। अभिप्राय यह कि संगीत में नृत्य और साहित्य दोनों समाहित हो जाते हैं। यहाँ आकर त्रिवेणी शब्द अनायास उभर आता है।

डॉ. कैलाश जी की संस्था त्रिवेणी कला संगम में उनके परिवार की भागीदारी उसी प्रकार से है जिस प्रकार से जीवन में। वे निश्चित रूप से धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से आज तक जीवन सौन्दर्य की खोज में अपने को समाये रखा है तब उनकी गणना सामान्य सामाजिकों में न होकर विशेष सामाजिकों में होने की अपेक्षा रखती है। मैं परमपिता परमेश्वर से याचना करता हूँ कि वे इस क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ते जायं और समाज उनके सत् विचारों और कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता जाय ऐसी विशेष शक्ति का उनमें संचार होता जाय।

❑❑❑

7

नाटककार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. बाबू राम

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी होते हुए भी बहुआयामी साहित्यकार हैं। अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर इन्होंने अनेक कहानियां, उपन्यास, नाटक, जीवनी, समालोचनाएं तथा जीवनी और गीतों का सृजन किया है। उनके व्यक्तित्व में साहित्य और संगीत एकाकार हो गये हैं। वे सच्चे अर्थों में कलाप्रेमी हैं। साहित्यकार के साथ-साथ वे एक कुशल प्रशासक भी हैं। वे पारिवारिक कत्तव्यों का निर्वाह करते हुए अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति भी सदैव जागरुक रहते हैं।

संस्कृत में कहा गया है अवस्थानुकृतिर्नाट्यं[1] अर्थात् अनुकृतियां या अनुकरण को नाटक कहा जाता है, जो नाटककार या अभिनेता अनुकरण को सही रूप में प्रस्तुत कर देता है, वही सफल नाटककार या अभिनेता है। भरतमुनि ने नाटकों के माध्यम से रसात्मकता के साथ जीवन के आदर्श और यथार्थ रूप को प्रस्तुत करना बताया है। अरस्तू ने विरेचन-सिद्धान्त के अनुसार नाटक के विषय को प्रस्तुत किया है। व्यक्ति का जीवन हो या समाज का उसमें सब कुछ उच्चादर्श ही नहीं है, उसमें कटु यथार्थ भी है। इसी के आधार पर नाटक सुखान्त (कामदी) भी होते हैं और दुखांत (त्रासदी) भी। नाटक एक दृश्यकाव्य है अभिनेयता या मंचन ही नाटक की वास्तविक कसौटी है। नाटक का उद्येश्य लोकानुरंजन है, जिसके कारण दर्शकों का साधारणीकरण होता है। वे सुखद-दुखद परिस्थितियों में रसास्वादन करते हैं। इसीलिए नाटक को 'काव्येषु नाटकं रम्यं' कहा जाता है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

आधुनिक नाटकों की कसौटी मनोविज्ञान है। इसी कारण नाटककार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने कंस जैसे खलनायक के प्रति भी अपनी सहानुभूति प्रकट की है। नारद द्वारा भविष्यवाणी किये जाने के कारण कि तेरी बहन (देवकी) का आठवाँ पुत्र तेरा काल है, सात जो पहले उत्पन्न होंगे, उनके द्वारा तो मैं नहीं मारा जाऊंगा। तब नारद ने कहा- तू कितना नासमझ है, उनमें आठवाँ कोई भी हो सकता है। इस भय से आतंकित होकर कंस अपना मानसिक विवेक खो बैठता है। 'श्रीमद्भागवत्' आदि पुराणों में कंस को निरंकुश, क्रूर और अत्याचारी बताया है[2] किन्तु नाटककार ने कंस के व्यक्तित्व के वास्तविक भय की ओर संकेत करके एक नया रहस्य उद्घाटित किया है।

'तुक्के का बादशाह' नाटक -संग्रह में पाँच नाटक संकलित हैं- पेड़ हमारे मित्र, छोटा बेगारी, जैसे को तैसा, तुक्के का बादशाह, और जंगल मित्र। बाल साहित्य की रचना हिन्दी और बंगला आदि भाषाओं में प्रचुर मात्रा में हुई है किन्तु बाल नाटक लिखने का प्रयास डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के कृतित्व में देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनके ये बाल नाटक हिन्दी- नाटक साहित्य को नई देन मानी जा सकती है। नाटककार स्वयं लिखते हैं- 'इन बाल नाटकों में मैंने कुछ सामाजिक समस्याओं को लिया है, ग्रामीण वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है एवं बालकों को चरित्र-निर्माण, जीवन में सफलता हेतु प्रयास व ऊंच-नीच, भेदभाव आदि को भुलाकर भाईचारे व आपसी मेल-मिलाप की शिक्षा देने का प्रयास किया है।'[3] नाटककार पर्यावरण के प्रति भी सजग है। इन्होंने 'पेड़ हमारे मित्र' एवं 'जंगल मित्र' नाटकों के शीर्षक रखकर इस तथ्य को प्रमाणित कर दिया है। नाटककार बाल-मनोविज्ञान से भी सुपरिचित है। बालकों की रूचि को ध्यान में रखते हुए इन्होंने इन नाटकों की रचना की है।

'आधुनिक यमलोक' नाटक में रूपक के माध्यम से वर्तमान समाज की वास्तविक परिस्थितियों का नाटककार ने सजीव चित्रण किया है। वस्तुतः

'आधुनिक यमलोक' एक व्यंग्य नाटक है, जिसमें आधुनिक समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं पर करारी चोट की गई है। वर्तमान राजनेता या न्यायाधीश यमराज के प्रतीक हैं। नाटककार ने स्वयं नाटक की विषयवस्तु के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है-'इस नाटक के माध्यम से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं ईमानदारी की छटपटाहट को प्रस्तुत करने का प्रयास

किया गया है। इस नाटक में व्यंग्यात्मक शैली में बताया गया है कि देश की सत्ता का नेतृत्व करने वाले दूषित न्यायतंत्र के माध्यम से किस प्रकार ईमानदारी एवं नैतिकता पर प्रहार करते हैं तथा स्वार्थलोलुपता के अंचल में बेईमानी एवं रिश्वतखोरी किस प्रकार पनपती जा रही है। इस नाटक के माध्यम से यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान न्याय-व्यवस्था में चोर, डाकू, जेबकतरे आदि किस प्रकार पनप रहे हैं और देश को विषैले नाग की भाँति डस रहे हैं।[14] नाटककार ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भ्रष्ट समाज का सटीक चित्रण किया है।

इतिहासकारों ने पृथ्वीराज चौहान को वीर शिरोमणि घोषित किया था। कहा जाता है कि मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान के राज्य पर सत्रह बार आक्रमण किया था और पृथ्वीराज चौहान ने गौरी को पराजित करके छोड़ दिया था, जो एक बड़ी ऐतिहासिक भूल थी क्योंकि ऐसे ढीठ शत्रु के प्रति उदारता प्रदर्शित करना विवेक और नीति के विरूद्ध है। भारत का इतिहास यह भी बताता है कि यह देश देशद्रोहियों और पारस्परिक फूट के कारण विदेशी आक्रमणकारियों का शिकार हुआ। सचमुच पृथ्वीराज चौहान अद्‌भुत पराक्रमी था जैसा कि नाटककार अपने 'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' ऐतिहासिक नाटक में लिखते हैं-'यह ऐतिहासिक नाटक अद्वितीय योद्धा, सम्राट पृथ्वीराज चौहान की वीरता एवं शौर्य, राजा जयचन्द की देशद्रोही प्रवृत्ति एवं गजनी के बादशाह शाहबुद्दीन मुहम्मद गौरी के सतत् प्रयासों को व्यक्त करता है।'[15] नाटककार अपने नाटक 'वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' की भूमिका में लिखते हैं-'वीर शिरोमणि' के रूप में पृथ्वीराज चौहान को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर राजपूतों की वीरता, क्षमाशीलता, दान, धर्म के पालनार्थ वीरों की युद्ध में आहूत होने की तीव्र उत्कण्ठा, वीरमाताओं द्वारा इस हेतु अपने पुत्रों को दिया गया प्रोत्साहन, देश और कौम के सांस्कृतिक मूल्यों की विद्यमानता, वीर-पुत्रियों द्वारा वीरता का वरण, चाकरों की भक्ति एवं देशद्रोहियों की राष्ट्र विरोधी भावना आदि से वर्तमान पीढ़ी को साक्षात्कार कराने का प्रयास किया गया है।'[16]

नाटककार बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । युगबोध में बड़े प्रवीण हैं। वे अपनी कल्पना के माध्यम से प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक कालीन देशीय और सामाजिक समस्याओं का यथार्थ रूप दर्शकों के सम्मुख रंगमंच के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। वे स्वदेश के बड़े प्रेमी हैं और नाट्यकला के माध्यम से

सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान भी दर्शकों के सम्मुख रखते हैं। वे केवल उच्चकोटि के नाटककार ही नहीं अपितु कुशल अभिनेता और अनुभवी तथा प्रतिभाशाली रंगकर्मी भी हैं। वे भाव-प्रवण कवि होते हुए भी बड़े शिल्पकार हैं। साहित्यिक हिन्दी भाषा के साथ वे लोकभाषा प्रवीण भी हैं, अत: भाषा उनके भावों और विचारों की अनुगामिनी है।

'कार्यवाहक हलवाई' एक व्यंग्य नाटक है। इस नाटक में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है, जिसमें लोकगीतों का यथासंगत समावेश हुआ है। ये लोकगीत राजस्थानी भाषा के सुन्दर नमूने हैं -

सरदार

स्थाई पेटी लिय्यां आयो सरदार चक्कर काटै गळी-गळी
ल्यावो-ल्यावो टूट्या ताळा पीपा पेटी ज्यो भी छीं

1 सुसमो आँख्यां माळै लगायां दैणै हाथ कडो पैर्‌यां
लाल पागडी माथै बाँध्यां पाड रह्यो हेलो
टूट्या ताळा ठीक करालयो कूंची भी लगवाल्यो
नाक कान भी बींधूं छूं मैं टाबर-टोळी आवो +स्थाई

2 सामानै दो साँड लड र्‌िहया देखो रट्टक मारीं
च्यारूं मेरां छोरा छापरा लोग लुगायां देखीं
नाक-कान बिंधवाल्यो सुणतां ध्यान बँट्यो साँडां को
लाल पागडी माथै देख्या पाछै पड्या सरदार कै +स्थाई

3 ज्यान बचाबै भोभळ्यां की गाडी मैं छिपगो सरदार
हाँडी कूण्डा फूटगा जद धम्म सैं पड्यो
चूला की कडैली ऊंका मूंडा कै जा लागी रै
देख लुहारी चप्पल सूं ऊंकी मरमत कररी रै +स्थाई

4 भाग-भूगकर उण्ड्या सूं वा पोंछ गयो बस्ती मैं
ताळा-कूंची ठीक करालयो नाक-कान बिंधवाल्यो
अइयां खैतां काट र्‌िहयो वा चक्कर बीच बजारां मैं
भाग-भागकर छोर्‌यां आरी नाक-कान बिंधवाल्यो रै +स्थाई

5 खोल दियो पेटी नै अर नकली कुण्डळ दिखलार्‌यो
लोंग नाक की दिखा खालसा चमचम करती सी
कानां मैं कुण्डळ पैरा अर देखै मूंडा काणी
चप्पल सैं तड तड मारीं ऊंनै छोर्‌यां की मायां रै +स्थाई

6 मीणा का मोहला मैं पोंछ्यो ज्यान बचा सरदार
खूब मिलींगा टूट्या ताळा या सोच्यो मन मैं
भाग-भागकर मीणा आया असी बता कूँची
एक बार मैं खुलै कस्यो ही जबरो सारो ताळो रै
जबरो सारो ताळो रै जबरो सारो ताळो रै[7]

लोकजीवन में बहुरूपियों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वे रूप परिवर्तन या वेश धारण में निपुण होते हैं। वे अपनी वाक्पटुता के द्वारा जनता को और राजदरबारों को आकर्षित और प्रभावित करते रहे हैं। पहले उनका राजदरबारों में क्या सम्मान होता था और आज उनकी क्या दशा हो गई है, इसके क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं-

'कभी मेरी कला के दूर-दूर तक चर्चे थे। राजे-महाराजाओं के समय में हम लोगों को राज्याश्रय प्राप्त था। राजदरबार के गुणीजन खाने का सिरमौर हुआ करता था कभी मैं, और मेरी कला के प्रदर्शनों से प्रसन्न होकर राजा लोग अशर्फियां न्यौछावर करते थे मेरी कला पर।'[8]

'भाई आज के इस युग में जब कला के प्रदर्शन से गुजारा नहीं हो पाया और भूखों मरने लगा तो मैंने सरदार का रूप धारण किया और लगा नाक-कान बींधने, टूटे ताले ठीक करने। कलाकार हूं न, अतः कला को परखने में खो गया और लोग-बाग मुझे ग़लत समझकर पीटने लगे।'[9]

नाटककार ने इस नाटक में आँचलिकता का समावेश किया है, जिसमें व्यंग्यात्मकता झलकती है।

'मन चंगा तो कठौती में गंगा' नाटक में केवल दो ही पात्र हैं, जिसमें एक सनकी ठाकुर साहब गंगा स्नान के लिए बड़े आतुर हैं। दूसरी सेविका छबीली उनकी चाटुकार है। इस नाटक की प्रेरणा लेखक को ग्रामीण जीवन की लोक-कथाओं से हुई है, जिसमें ग्रामीण जीवन और उसकी संस्कृति का चित्रण हुआ है। ठाकुर साहब कहते हैं-

'भाई कई दिनों से हमारा मन गंगा-स्नान को हो रहा है। तुम कहो तो गंगाजी नहा आयें?'[10]

छबीली कहती है- 'वाह महाराज वाह। क्या उत्तम विचार आया है आपके मन मन्दिर में। महाराज, आपके खनदान में आज तक कोई गंगाजी नहाने नहीं गया और महाराज सच कहती हूं कि यदि आप गंगा-स्नान कर आये तो आप तो आप, आपके पुरखे तक तर जायेंगे। बड़ा ही उत्तम विचार आया है महाराज, अब आप गंगा-स्नान कर ही आवो।'[11]

नाटक के अन्त में लोकगीतों की झलक दिखाई पड़ती है।

'नामकरण' नाटक में अँगूठा छाप नेता का चरित्र-चित्रण किया गया है। नेताजी एवं उनकी पत्नी झाबली के संवादों में राजस्थानी-हरियाणवी भाषा का पुट है। नेता निरक्षर भट्टाचार्य हैं। चौधरी चौमुख सिंह एक नेताजी को पढ़ने की सलाह देते हैं। नेताजी का कथन है कि शिक्षित होने पर हमारी कायापलट हो जायेगी- 'अब या मास्टर जद म्हांनै आजकल का तौर तरीका सिखावैगो तो हम बड़ा-बड़ा नेता लोगन कै पास जाकर पार्टी को टिकिट लेवण की जुगाड़ बैठाल सकांगा और जद चुनाव जीतकर मंत्री बण जांवाला तो तू भी नेताणी बण ज्यावैली और फिर न्यूं चौधरी दान सिंह को नांव ऊँचो होसी ही। सोच तो, तू या धाबळा की जगां मैक्सी पैर्‌यां करैगी, म्हारै घर मैं गाड़ी होगी और तू बैलगाड़ी की जगां कार मैं घूमण नै जाया करैगी।'[12]

'अफ़सर का कुत्ता' नाटक दो पात्रों के माध्यम से विस्तार पाता है। इस नाटक में अवसरवादिता और चापलूसी को व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार नाटक वर्तमान यवस्थाओं एवं मानव के गिरते नैतिक मूल्यों का सटीक चित्रण प्रस्तुत करता है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी नाटक में खड़ी बोली के साथ 'ढूंढाड़ी' (जयपुर एवं आस-पास के क्षेत्र की बोली) का प्रयोग किया गया है जिसमें आँचलिकता का पुट है। 'अफ़सर का कुत्ता' भी साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक आदर का पात्र होता है। जनता अफ़सर के कुत्तों से हमेशा भयभीत रहती है। चापलूस लोग अफ़सर के कुत्ते के मरने पर भी शोक प्रकट करते हैं, जबकि साधारण जनता की कोई पूछ नहीं है। इस माध्यम से चापलूस लोग पदोन्नति को प्राप्त करते जाते हैं।

'लड़ी मैड़ की' नाटक में मदारी उस्ताद है और जमूरा उसका चेला है, कजरी भी उस्ताद के साथ रहती है। यह नाटक पूर्णतया ग्रामीण अँचल का है। विभिन्न अवसरों पर उस्ताद और जमूरे के संवाद होते हैं-

उस्ताद : अपना विगत, छुटपुन के दिन, हमारे देश की धर्मनिरपेक्षता, अखण्डता और एकता की झलक ।

कजरी : कैसी बहकी- बहकी बातें कर रहे हैं उस्ताद।

जमूरा : मैंने चौथी क्लास में पढ़े थे ये सब। उसमें लिखी थी ये सारी बातें - धर्मनिरपेक्षता, अखण्ड़ता और एकता वगैरह-वगैरह।[7]

कजरी इस कथन का खण्डन करती है और देश की वर्तमान व्यवस्थाओं का चित्रण वह इस प्रकार करती है- 'क्यों झूठ बोल रहे हो उस्ताद। कहाँ है धर्मनिरपेक्षता, अखण्ड़ता, एकता? देख नहीं रहे कैसे सामुदायिक और जातीय दंगे चल रहे हैं हमारे देश में। हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई, ये सब अलग-अलग खेमों में बँटते चले जा रहे हैं और तुम कह रहे हो कि मैं उन सबको एक सूत्र में बँधा हुआ देख रहा हूं।'[13]

अन्त में उस्ताद जी कजरी के कथन का समर्थन करते हुए कहता है-

'वर्तमान ओछी राजनीति और स्वार्थी नेताओं के कारण देश में सामाजिक विघटन की परिस्थितियां उत्पन्न हो रही हैं .... पर जमूरे उस चक्रव्यूह में ओछापन नहीं था। सिद्धान्त थे, तर्क थे और मान्यताएं थीं। और मैं जिस चक्रव्यूह की बात कर रहा हूं वह ओछी राजनीति है, कुछ राजनेताओं का व्यक्तिगत स्वार्थ है उसमें। कौमी एकता के टुकड़े-टुकड़े करके अपना फायदा करने के लिए आवाम को एक-दूसरे के प्रति भड़काने का प्रयास है चन्द स्वार्थी लोगों का।'[14]

तत्पश्चात् हुक्का, चिलम और सुलपी के माध्यम से समाज की लोक-संस्कृति का चित्रण हुआ है। हुक्का-पानी बन्द करने का अर्थ सामाजिक बहिष्कार से है जिसके सम्बन्ध में उस्ताद कहता है- 'भाई, यदि कोई व्यक्ति चोरी, डकैती, बदमाशी या अन्य कोई ग़लत काम करता था, तो उसे समझाया जाता था और यदि वह फिर भी नहीं मानता था तो गाँव की पंचायत में उसकी शिकायत की जाती थी और पंचायत उस अपराधी को हुक्का-पानी तक बन्द करने की सजा दे देती थी।'[15]

नाटक के अन्त में राजस्थानी भाषा में लोकगीतों का समावेश हुआ है। उस्ताद, कजरी और जमूरा पारस्परिक वार्तालाप करके मैड़ गाँव पहुँचते हैं।

वस्तुत: नाटककार ने पक्षियों के माध्यम से भारत की एकता और अखण्ड़ता का सन्देश इस प्रकार दिया है-

विविध जात के विविध भाँत के पँछी चहचाते यहाँ आकर
पँछी चहचाते यहाँ आकर पँछी चहचाते यहाँ आकर .....

सन्दर्भ

1. धनंजय, दशरूपकम्, प्रथम् प्रकाश, श्लोक संख्या-7, पृष्ठ 4
2. श्रीमद्भागवत्-महापुराण (द्वितीय खण्ड), दशम् स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) प्रथम अध्याय-श्लोक 34-36, पृष्ठ 106-107, गीता प्रेस, गोरखपुर , संवत्-2056
3. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, तुक्के का बादशाह, बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1998, अपनी बात से उद्धृत।
4. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, आधुनिक यमलोक, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2002, अपनी बात से उद्धृत।
5. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, तुक्के का बादशाह, बाणगंगा प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1998, फ्लैप से उद्धृत।
6. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान, साहित्यागार जयपुर, प्रथम संस्करण 2002, दो शब्द से उद्धृत।
7. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, कार्यवाहक हलवाई से उद्धृत
8. वही
9. वही
10. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, मन चंगा तो कठौती में गंगा से उद्धृत
11. वही
12. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, नामकरण से उद्धृत
13. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, लड़ी मैड़ की से उद्धृत
14. वही
15. वही

❑❑❑

8

उद्‌गार

जयन्त सावरकर

प्रिय डॉ. साहब,

आपके 31 मार्च को लिखे गये ख़त के लिये और साथ में भेजे गये नाटकों के लिये धन्यवाद। आपने समीक्षा के बारे में लिखा है, लेकिन मेरी इतनी काबिलियत नहीं कि मैं अपने आपको साहित्य का अभ्यासक कहूँ। मैं एक सीधा साधा कलाकार हूं और बरसों से रंगमंच पर काम करता आया हूँ। इस सत्यता के बावजूद भी आपने मुझे अपनी किताबें भेजकर जो सम्मानित किया है, इसके लिए मैं आपका शुक्रगुजार हूँ।

एक कलाकार के नाते मेरे मन में जो विचार आये, उन विचारों को ही आप समीक्षा समझें, ये मेरी आपसे प्रार्थना है।

आपके भेजे हुए नाटकों को मैंने गौर से पढ़ लिया है। आपकी हर कलाकृति में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विचारों से भरी हुई कलाकृति रंगमंच पर लोकप्रिय करना बहुत कठिन हो जाता है। 'वीरशिरोमणि पृथ्वीराज चौहान' जैसा नाटक उस्ताद, जमूरा और कजरी के रंगमंच पर आने से बहोत ही आकर्षक (Intersting) हुआ है। पृथ्वीराज जैसे शूरवीर राजा के जीवन पर मैंने ये एक ही नाटक आज तक पढा है। रंगमंच पर जिसका सादरीकरण जितना सुलभ है, उतना ही कठिन है।

'आधुनिक यमलोक' में आपने भ्रष्टाचार की कथा लिखी है। एक बड़ी अच्छी कलाकृति है। अगर ये नाटक के प्रयोग हर प्रमुख शहर में किये गये, तो मानवी मूल्यों का नाश, रिश्वतखोरी, नीचता वगैरह तथा अपने देश के नेताओं का सत्यस्वरूप समाज के सामने आ सकेगा।

*12 ए केनेडी ब्रिज के पास, ऑपेरा हाउस मुम्बई - 400002

बच्चों के लिये लिखे हुए पाँच नाटक मैंने पढ लिये हैं। खास तौर पर बच्चों के मनोरंजन के लिये अंग्रेजी सिनेमा आते हैं। लेकिन सत्य, ईमानदारी आदि जिन चीजों की बच्चों को पहचान होनी चाहिए, ऐसे अच्छे प्रोग्राम्स बहोत कम हैं। शालाओं में जाकर उनके सभागृह में ऐसे नाटकों के प्रयोग करना उचित रहेगा। ऐसे प्रयोग करने के लिये सेटिंग्ज, लाइटिंग आदि Minimum होनी चाहिये।

'मानवता की पुकार' और 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' ये भी अच्छे नाटक हैं। अगर मेरी उम्र मुझे ना रोकती तो मैं बडे शौक से जयपुर में आकर त्रिवेणी कला संगम के कार्यक्रमों में शामिल हो जाता। लेकिन जब आप जैसे बहुशिक्षित लोग रंगमंच से जुडे हुए रहते हैं तो ऐसे अच्छे नाटक हमेशा रंगमंच पर आते ही रहेंगे और देश की ओर प्रेम बढता रहेगा।

मैं एक Full time व्यावसायिक कलाकार हूं। रंगमंच से 55 वर्षों से सम्बन्धित हूँ- अर्थात् सिर्फ मराठी थियेटर। फिर भी आपने मुझे जो सम्मान दिया है, आपका मैं आभारी हूँ। राष्ट्रभाषा मैं जानता हूँ, लिखता हूँ थोड़ा सा, पढता हूँ, बोल लेता हूँ। लेकिन जितनी ज़रुरत पड़ती है उतना ही।

अगर लिखने में, विचार प्रकट करने में कहीं कोई ग़लती हुई हो तो क्षमा चाहता हूँ।

आपका

29 जून 2009 जयन्त सावरकर

❑❑❑

9

पर्दे के पीछे से

बालकवि बैरागी

अनुभवजन्य मान्यता है कि सँसार में सबसे कठिन काम है बच्चों के लिये लिखना। बड़ों के लिये लिखना फिर भी आसान काम है किन्तु बच्चों के लिये लिखना अत्यन्त कठिन है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाम भी ऐसे ही कलमगरों में लिया जाने का यह शुभ मुहूर्त है। अपनी दैनन्दिनी दिनचर्या की व्यस्तता के बीच वे समय निकालकर कुछ न कुछ सर्जनात्मक करते रहते हैं। 'तुक्के का बादशाह' नाट्य संग्रह इस तथ्य को रेखांकित करता है।

नाटककार ने इन नाटकों के माध्यम से सकारात्मक सन्देश दिया है। सादी सी मँच सज्जा और सामान्य सी वेशभूषा में इन नाटकों को खेला जा सकता है। सबसे बड़ी जोखिम यह है कि ये नाटक किशोरवय तक के आयु समूह को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं, इस आयु तक बच्चे सहज, सरल एवं जिज्ञासु रहते हैं। वे स्वयं भी अपने जीवन के लिये आदर्श तलाशने के मोड़ पर होते हैं। अपने पूरे जीवन उन्हें याद रहता है कि इन नाटकों को खेलते समय उन्होंने समाज को अपने पात्रों के माध्यम से क्या सन्देश दिया था।

मेरा विश्वास है कि ये नाटक भरपूर लोकप्रियता प्राप्त करेंगे, बच्चे इन्हें अपना लेंगे और समय-समय पर इनके माध्यम से दर्शकगण दिशाबोध लेते रहेंगे। सँवाद जितने सरल होंगे सम्प्रेषण उतना ही सरल होगा। बच्चे उपदेश पसन्द नहीं करते हैं। वे वर्जनाओं को तोड़ने में सुख पाते हैं। लेखक ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। पहले बुरा करवाओ फिर अच्छे की तरफ मोडो। पाँचों नाटकों में इस तरह के कथासूत्र मिलते हैं।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का यह लेखन आपके-हमारे बच्चों को प्रेरणा देगा। मेरी आत्मीय शुभकामनाएँ इस प्रयास को सादर प्रेषित हैं।

❑❑❑

*पूर्व सदस्य लोकसभा-राज्यसभा (निवास) पो. मनासा (म.प्र.)

10

'तुक्के का बादशाह' : सहजता का दर्पण

नीना गुप्ता

बच्चों का कोमल हृदय साहित्य के गूढ तत्त्वों से अनभिज्ञ रहता है इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों के लिये जो कुछ भी लिखा जाय उसकी भाषा और संवाद सहज-सरल हों। प्रस्तुत समीक्ष्य नाटक 'तुक्के का बादशाह' में लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने बालकों की भावनाओं एवं सहज क्रियाकलापों को आधार मानकर प्रभावी वाक्य विन्यास तथा सहज-सरल भाषा शैली के माध्यम से विभिन्न सामाजिक विषयों, प्रथाओं और भावनाओं को प्रस्तुत किया है। 'तुक्के का बादशाह' नामक यह पुस्तक पाँच नाटकों का संग्रह है जिसके प्रत्येक नाटक में बच्चों को चरित्र निर्माण, जीवन में सफलता के प्रयास एवं ऊंच-नीच के भेद-भाव को भुलाकर आपसी मेल-मिलाप करने की शिक्षा देने का प्रयास लेखक ने किया है। शर्मा जी ने अपनी इस रचना में इस तरह के दृश्य प्रस्तुत किये हैं जिनके माध्यम से इन नाटकों में यथार्थवादी वातावरण की धड़कनें महसूस की जा सकती हैं।

नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' में सीमित पात्रों के माध्यम से पर्यावरण संतुलन, पेड़ों के महत्त्व, ऊंच नीच और अमीर ग़रीब के भेदभाव को समाप्त कर आपसी मेल मिलाप करने की शिक्षा दी गई है। जिस प्रकार पारिवारिक संस्कारों एवं अर्थसम्पन्नता के कारण अमीर वर्ग के बच्चों में अहंकार की भावना आ जाती है उसी प्रकार इस नाटक की पात्र सिमरन जो एक सम्पन्न सेठ की बेटी है उसमें भी अहंकार अपने चरम रूप में मौजूद है और गाँव आते ही एक ग़रीब लड़के भीखू से उसका टकराव हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह भीखू द्वारा बगीचे में लगाये गये पेड़ों को कटवा देती है। वह भीखू की इन भावनाओं

*रंगकर्मी-अभिनेत्री, 19 बी, क्लिस्टन, 4 फ्लोर, बिरला केयर कॉर्नर, जूहू, मुम्बई, 400049

का भी तिरस्कार करती है- 'बीबीजी, इन हरे-भरे पेड़ो पर दया करो। ये हमें फल देते हैं, ताजी हवा देते हैं और इन्हें देखने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।'

इसके बाद इस नाटक के लेखन का मूल उद्येश्य शुरू होता है। सेठ की लड़की सिमरन को टी.बी. की बीमारी हो जाती है। जब डाक्टर साहब इस बात की घोषणा करते हैं तो संवेदनशील भीखू कहता है-

'नहीं डाक्टर साहब नहीं। मेरी बीबीजी को टी.बी. नहीं हो सकती.....मैं इन्हें अपने बगीचे के मीठे-मीठे फल खिलाऊंगा और हम लोग पुन: पेड़ लगायेंगे जिससे ये बड़ी जल्दी स्वस्थ हो जायेंगी।' भीखू जैसा कहता है वैसा ही करता है और इस प्रकार सिमरन स्वस्थ हो जाती है ।

हास्य से सराबोर एक नाटक 'जैसे को तैसा' बालमन को आकृष्ट करने का एक सफल प्रयास है। प्रत्येक बात की नकल करने की पीटर की आदत से जहाँ आये दिन किसी न किसी को हँसी का पात्र बनना पड़ता है वहीं एक दिन उसकी यह आदत उसी के गले का फंदा बन जाती है। बाल मन की नटखट हरकतों से हास्य उत्पन्न करने में लेखक को कामयाबी मिली है।

शीर्ष नाटक 'तुक्के का बादशाह' लोककथाओं पर आधारित एक सशक्त कथानक वाला हास्य नाटक है। नाटक का प्रमुख पात्र कलुवा अवसरवादी एवं चालाक व्यक्ति है और किसी न किसी बहाने से आये दिन अपने ससुराल पहुँचकर मौज मस्ती करता है। एक दिन जब वह अपने ससुराल में होता है तो हँसी-मजाक में यह घोषणा कर देता है कि उसे बडका (सब कुछ बात सही-सही बताने की दैव-प्रदत्त शक्ति) आता है। उसकी इस घोषणा से गाँव के अनेक व्यक्ति अपनी- अपनी समस्याएं लेकर उसके पास आते हैं। उसकी कुछ बातों का ऐसा तुक्का बैठ जाता है कि वे सत्य साबित होती हैं और कुछ गाँव वालों की समस्याओं का समाधान हो जाता है और गाँव वाले उसकी जय-जयकार करते हैं।

आज टी.वी. और कम्प्यूटर के इर्द-गिर्द घूमती बच्चों की ज़िन्दगी में इस तरह का नाटक रोचकता के साथ सकारात्मक संदेश देता है। इस नाटक के सभी पात्र सामान्यजन में से लिए गये जान पड़ते हैं। कलुवा का सीधा-सरल जीवन मन को छू लेता है।

'पेड़ हमारे मित्र' से इस नाट्य संग्रह का शुभारम्भ करते हुए उसी विषय के 'जंगल मित्र' से समापन करना लेखक की अपनी मौलिक विशेषता है। दोनों नाटक पेड़ों के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं फिर भी इनका कथानक एक दूसरे से भिन्न है। 'जंगल मित्र' नाटक में छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से पेड़ों की कटाई से होने वाली हानि को इस प्रकार रोचकता के साथ बताया गया है कि इससे बच्चे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। नाटक के नायक सुक्खा को जंगल मित्र के रूप में प्रस्तुत करने से बच्चों का मनोबल बढ़ता है और वे नाटक में अपने को पाकर उसकी शिक्षाओं को सहर्ष स्वीकार करते हैं। बुरे काम का नतीजा भी बुरा ही होता है इस बात को इस नाटक के माध्यम से उजागर किया गया है। गाँव का मुखिया, पटवारी, फिरवाल आदि सभी के सभी भ्रष्ट हैं और लकड़ियों की अवैध रूप से कटाई करके शहर ले जाकर बेचने में अब्दुल्ला की सहायता करते हैं। जब सुक्खा द्वारा इस बात का विरोध किया जाता है तो ये सब भ्रष्ट लोग मिलकर उल्टे उस पर ही आरोप लगाते हैं। इस प्रकार यह नाटक समसामयिकता का सही नमूना है और हमारे वर्तमान समाज का सही रूप उजागर करता है।

नाटक 'छोटा बेगारी' भी ग्रामीण पृष्ठभूमि के कैनवास पर हमारे ग्राम्य जीवन की सही तस्वीर उपस्थित करता है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही वर्ण व्यवस्था तथा जातिगत एवं वर्गगत विभाजन देखने को मिलता है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में समाज को इस प्रकार से विभाजित किये जाने का उद्येश्य दैनन्दिन कार्यों का समुचित रूप में निष्पादन किया जाना था परन्तु कालान्तर में किन्हीं कारणों से इनकी जड़ें इतनी गहरी जाकर फैल गई की समाज कई वर्गों में बँट गया और उच्च वर्ग के कुछ लोगों द्वारा निम्नवर्ग को हेय दृष्टि से देखा जाकर उन पर अत्याचार किये जाने लगे।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने इस नाटक में नायक बालक गोपी के माध्यम से उच्च वर्ग की प्रताड़नाओं से प्रेरित होकर निम्न वर्ग के जीवन में आगे बढने के यथार्थ को चित्रित किया है जो आज के युग में हर कहीं देखा जा सकता है। शर्मा जी ने जीवन के इस सत्य को यहां पर उजागर किया है कि जहाँ-जहाँ भी मनुष्य पर अत्याचार किये गये, उसको दबाने का प्रयास किया गया उसके इरादे पुष्ट होकर उन्नति हेतु ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़े। भूरा बेगारी का बेटा गोपी भी बजरंगी काका जैसे प्रभावशाली लोगों के अत्याचारों

से त्रस्त होकर एवं पुजारी बाबा की प्रेरणाओं से पढ़ लिखकर पुलिस विभाग में थानेदार का पद प्राप्त करता है और जब बजरंगी काका को उसके समक्ष अपराधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो थानेदार गोपी उसे गले लगा लेता है और कहता है –'मुझे नहीं पहचाना काका, मैं हूं तुम्हारा गोपी, भूरा बेगारी का बेटा....। '

गोपी के इस प्रकार के व्यवहार से नाटककार ने हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों को जनसामान्य के समक्ष उपस्थित किया है।

ये सभी नाटक बच्चों को तो प्रभावित करते ही हैं साथ ही इनसे अन्य आयुवर्ग के लोगों को भी आनन्द मिलता है। किसी भी नाटक में बनावटीपन दिखायी नहीं देता है बल्कि इनमें हमारे समाज की जीवन्त तस्वीर देखने को मिलती है और सबसे बड़ी बात यह कि बच्चे इन्हें मन से स्वीकार करते हैं।

उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक के सभी नाटकों को देश के विभिन्न मंचों पर मंचित किया जा चुका है। नाटक पेड़ हमारे मित्र तो 13 जनवरी 1997 को जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनियां' कार्यक्रम से प्रसारित भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त तुक्के का बादशाह के ब्रजभाषा रूपान्तरित एवं आर.डी.गर्ल्स कॉलेज, भरतपुर के वार्षिकोत्सव में की गई प्रस्तुति को भरतपुर के सिटी चैनलों द्वारा भी प्रसारित किया गया।

यह इन नाटकों की प्रसिद्धि एवं दर्शकों तथा पाठकों की स्वीकृति का ही परिणाम है कि पुस्तक के सभी नाटकों का राँची के साहित्यकार श्री नित्यशंकर मुखोपाध्याय ने बँगला में तथा भरतपुर के श्री मनमोहन अभिलाषी ने ब्रजभाषा में अनुवाद किया है। डॉ. शर्मा जी का यह सृजन एवं मंचन स्तुत्य है और मैं इसमें वृद्धि-समृद्धि हेतु उन्हें शुभकामनाएं प्रेषित करती हूं।

❑❑❑

11

तुक्के का बादशाह : पाँच नाटक

नित्यशंकर मुखोपाध्याय

डा. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा रचित 'तुक्के का बादशाह' पाँच नाटकों का एक संग्रह है। पहला नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' बालमन को सहज ही छू जाता है, साथ-साथ बडों को भी प्रभावित करता है। भीखू के चरित्र का चित्रण बहुत ही संवेदनशीलता के साथ किया गया है। घटनाक्रम में नाटकीयता बरकरार है पर सिमरन का टी. बी. जैसी बीमारी का शिकार अचानक हो जाना और फिर फल खाकर ठीक भी उसी जल्दी से हो जाने में कुछ अतिनाटकीयता लगती है।

'छोटा बेगारी में' समाज के दलित वर्गों के प्रति उच्चवर्गीय लोगों का अमानुषिक व्यवहार इसके प्रधान चरित्र के माध्यम से बख़ूबी प्रदर्शित किया गया है। और समाजिक रीति का यह भ्रम भी बड़ा ही नाटकीय ढंग में टूटता है जहां अछूत गोपी थानेदार बनकर कुर्सी पर और उच्चवर्गीय बजरंगी मुजरिम के रूप में जमीन पर बैठे दिखते हैं। कहानी की थीम सामाजिक न्याय एवं दलित सशक्तिकरण की दिशा में उठाया गया एक दृढ़ पदक्षेप है। 'जैसे को तैसा' एक निहायत ही मनोरंजक नाटक है, साथी ही साथ शिक्षा भी देता है कि आदमी को नकल नहीं अकल से काम लेना चाहिए। कथानक रोचक है,पर नाटक,लगता है कि दो भागों में बँट गया है। पहला बहानावाला भाग काफी भोग्य है मगर नकलची पीटर का मार खाना इस हास्य-नाटक को विरूप परिस्थिति में ले जाता है। नाटक देखने वाले शायद ही इसे बरदास्त कर पायेंगे।

'तुक्के का बादशाह' बहुत ही मनोरंजक नाटक है। दामाद का रोटियों के प्रति लोभ एवं श्वसुर के द्वारा बातों के जाल में फँसाकर पत्नी के लिए बची

*द्वारा डॉ. दिनेश्वर प्रसाद सिंह, उद्धव बाबू लेन, राँची (झारखण्ड)

हुई एक मात्र रोटी को दमाद के भोग में जाने से रोकने की कथा बालमन को एक सरल आनंद से भर देती है। रानी के नौलखा हार की चोरी की घटना भी बाल जगत के कल्पलोक में स्थायी आसन जमा चुकी एक रोचक कहानी है । नाटक में दामाद की उपस्थित बुद्धि और उसकी चालाकी के साथ संयोग का सटीक बैठना और उन्हीं के सहारे उसका बड़के(जान) के रूप में प्रतिष्ठा मिल जाने की कहानी बड़ों एवं छोटों के लिए मनोरंजक तो है ही साथ-साथ दर्शकों को यह भी सोचने को मजबूर कर देती है कि इस सँसार में असलियत के ऊपर नकल का परत इतना ज्यादा चढ़ा रहता है कि असलियत नेपथ्य में ही रह जाता है सब दिन। कम ही लोग उसे खोजने का कष्ट उठाते हैं। नाटक के संलाप पटकथा के सर्वथा उपयुक्त हैं, केवल प्रारंभ में ही पूरी कहानी को कोरस में पेश नहीं करके इसे दो तीन बार में करने से दर्शक का सस्पेंश अंत तक बने रहने में सहायक होता।

इस संग्रह का आखिरी नाटक है 'जंगल मित्र'। इस नाटक का संदेश भी सबसे पहले वाले नाटक जैसा ही है पर इसका परिवेशन भिन्न प्रकार से किया गया है। आज पर्यावरण का अंसतुलन एक ज्वलंत समस्या है। लोग इसे तरह-तरह से पैदा करते हैं। पहले नाटक में शहरी फैशन को अपनाने में पेड़ काटे गये तो इसमें अपनी तिजोरी भरने के लिए पेड़ कटने लगे। वो भी खुद इनके रखवालों के द्वारा ही। नाटक को दृश्य से दृश्यांतर में बड़ी कुशलता से बुनते हुए अंत में एक ठोस अंजाम तक पहुँचाया गया है। इस के पात्र अपने उपयुक्त संलापों से बालमन को रिझाते भी हैं और पर्यावरण के संतुलन बनाये रखने का संदेश भी देते हैं।

कुल मिलाकर 'तुक्के का बादशाह' नाटक संग्रह समय के धागे से बुनी एक ऐसी बहुरंगी चादर है जिसमें हमें अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य की झलक स्पष्ट दिखती है।

❑❑❑

12

कंस

डॉ. इला प्रसाद

बहुआयामी प्रतिभा के धनी डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के लेखन और कृतित्व से परिचित होने का अवसर मिला। कभी पढ़ा था 'प्रतिभा किसी की क्रीतदासी नहीं होती, न कला पर किसी का एकाधिकार होता है।' कैलाश चन्द्र शर्मा जी का जीवन और लेखन दोनों ही इस बात की पुष्टि करते से प्रतीत होते हैं।

लेखन की तमाम विधाओं में नाटक-लेखन सबसे कठिन है, ऐसा मैं मानती हूँ। आम तौर पर लेखक का दायित्व उसके लेखन के साथ ही समाप्त हो जाता है किन्तु नाट्य-लेखन की सफलता उस नाटक के रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण से जुड़ी होती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी स्थापित कलाकार हैं और रंगमंच की अपनी समझ उनके द्वारा लिखे गए नाटकों में भी परिलक्षित होती है।

पौराणिक कहानियों पर नाटक लिखे गये हैं, मंचित भी हुए हैं किन्तु पुराणों से कोई ऐसा चरित्र उठा लेना जो सर्वत्र घृणा का पात्र रहा हो और फिर उस खलनायक को नायक के रूप में प्रस्तुत करना, उसके सद्‌गुणों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना बड़े साहस का काम है। 'कंस' नाटक द्वारा यह महत् कार्य श्री कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने कर दिखाया है। प्रमुख धार्मिक गन्थों - श्रीमद्भभागवत् महापुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सत्यार्थ प्रकाश आदि के गहन अध्ययन तथा भारत के प्रमुख भागवत् कथा वाचकों से विचार विमर्श करने के बाद लिखा गया यह नाटक पाठक/ दर्शक को कई नई जानकारियां देगा और कंस जैसे चरित्र के प्रति उसके एकांगी दृष्टिकोण में परिवर्तन भी लायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

*Chaney 12934, Meadowrn Houstan Texas-77066 U.S.A.

कंस को पुराणों में बार-बार एक अत्याचारी शासक और क्रूर मनुष्य, जिसमें मानवीयता का नितांत अभाव है, के रूप में चित्रित किया गया है। हम कृष्ण जन्म की कहानी पढ़ते हुए सहज ही उसके प्रति घृणा से भर जाते हैं किन्तु उस वक्त हम यह भूल जाते हैं कि यह मृत्युपाश में पड़े हुए व्यक्ति की असफ़ल जीने की चेष्टा है। अपने जीवन पर होने वाले भावी प्रहार से आत्मरक्षा का प्रयास है।

कंस के जीवन पर विशद् दृष्टि डालें, जैसा कि इस नाटक में वर्णित है, तो वह एक कमजोर मनुष्य है, जिसे राजा होने के नाते कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं और जिनका वह दुरूपयोग करता है। उसमें बहन के प्रति सहज ।ोह भाव हैं किन्तु उसकी सन्तान के हाथों मृत्यु की भविष्यवाणी उसे इस कदर कायर बना देती है कि वह उचित अनुचित के भेद का विवेक खो बैठता है। स्वभावगत क्रूरता उसे नवजात शिशुओं की हत्या को प्रेरित करती है। नाटक के अन्तिम दृश्य में कंस का पश्चाताप पुन: उसे परिस्थितियों के शिकार कमजोर मानव के रूप में ही प्रस्तुत करता है, अत्याचारी राक्षस के रूप में नहीं।

लोकनाट्य शैली में लिखा गया यह नाटक दर्शकों का पर्याप्त मनोरंजन करने में सक्षम है। नाटक में जिस तरह से दृश्य योजना की गई है और कलाकारों से संवाद बुलवाये गये हैं वे सहज ही दर्शकों को विषयवस्तु की जानकारी देते हुए चलते हैं और साथ ही उस काल का भी बोध कराते हुए चलते हैं जिस कालखण्ड में ये घटनाएं घटित हुई थीं। पाठक/ दर्शक सहज ही कथानक में डूब जाता है और अतीत का हिस्सा बनकर उसे जीने-समझने को प्रस्तुत हो जाता है। मैं समझती हूं 'कंस' नाटक को दर्शकों एवं पाठकों की पर्याप्त स्वीकृति मिलेगी।

❑❑❑

13

खलनायक से नायक

डॉ. पुनीत गोस्वामी

श्रीमद्भागवत् महापुराण ग्रन्थ में भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कथा का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के दशम् स्कन्ध में श्रीकृष्ण के मामा कंस के जीवन चरित को भी उल्लखित किया गया है।

यह सर्वविदित है कि अभी तक कंस का चरित्र हमारे समक्ष एक खलनायक के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। आज इस सँसार में प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्कपटल पर श्रीकृष्ण के दुष्ट मामा कंस की खलनायिकी छवि ही अँकित है। कंस का नाम सुनते ही हमारे मन में उसके प्रति घृणा के भाव जागृत हो जाते हैं। आज तक हमें जितने भी ग्रन्थ देखने-पढने को मिले हैं उनमें कंस का आततायी, खलनायिकी एवं दुष्टात्मा स्वरूप ही देखने को मिलता है। यह भी सत्य है कि आज तक शायद किसी ने कंस के जीवन से सम्बन्धित अच्छे पक्षों की ओर ध्यान ही नहीं दिया अत: साहित्य की किसी भी विधा में ऐसा कोई सर्जनात्मक कार्य नहीं किया गया जो कंस के जीवन के अच्छे पक्षों को उजागर करता हो।

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि युवा साहित्यकार, संगीतज्ञ, रंगकर्मी एवं त्रिवेणी कला संगम जयपुर के संस्थापक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने इस दिशा में अपनी लेखनी से नया कुछ लिखा है। उन्होंने कंस के जीवन से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन करके एवं इस क्षेत्र के विज्ञ जनों से सम्पर्क करने के उपरान्त अपनी इस कृति को रचा है।

*रासेश्वरी पीठाधिकारी, एवं श्री राधावल्लभ मन्दिर, वृन्दावन के सेवारत आचार्य, श्रीधाम, वृन्दावन

1 नवम्बर 2003, गोपाष्टमी के दिन आप इस नाटक की पाण्डुलिपि लेकर वृन्दावन आये और अगले दिन 'त्रिवेणी कला संगम' की ओर से वृन्दावन में 'वर्तमान समय में संगीत एवं नाटक की दशा, दिशा एवं संभावनाएं' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ जिसमें शर्मा जी के नाटक कंस की पाण्डुलिपि का वाचन भी हुआ।

डॉ. शर्मा ने लोकनाटक शैली में लिखे अपने इस नाटक में कंस के जीवन के अच्छे पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया है। उनके इस तर्क से मैं भी इस आधार पर सहमत हूँ कि प्रत्येक बुरे व्यक्ति में भी अच्छाई का अंश अवश्य रहता है और यह देखने वाले पर निर्भर करता है कि वह व्यक्ति विशेष के अच्छे पक्षों पर दृष्टि डाल पाता है या नहीं।

डॉ. शर्मा ने अपने इस नाटक में बताया है कि कंस वसुदेव जी का अच्छा मित्र था और चूँकि वह अपनी चचेरी बहन देवकी के प्रति बहुत अधिक ोह रखता था अत: देवक के समक्ष रखे गये उसके प्रस्ताव के परिणामस्वरूप ही वसुदेव जी के साथ देवकी का विवाह तय हुआ था। विवाह में देवकी को दिये जाने वाले दहेज आदि की प्रत्येक व्यवस्था में कंस ने व्यक्तिगत रूप से इस बात का ध्यान रखा था कि कहीं किसी बात की कमी न रह जाय। उसके पश्चात् वर-वधू के रथ का सारथी बनना आदि सभी बातें इस नाटक में इस प्रकार बताई गई हैं कि हमारे धार्मिक ग्रन्थों में उल्लखित संकेतों-प्रमाणों के आधार पर यह बात स्वत: प्रमाणित हो जाती है कि कंस में स्नेह-भाव था। वह एक वीर योद्धा था जो अपने भाई-बहनों के प्रति अपार स्नेह रखता था तथा बुजुर्गों का आदर करता था। जब किसी भी जीव को अपने पर प्रहार का आभास होता है एवं उसे अपने जीवन के खतरे का पूर्वाभास हो जाता है तो वह अपने आपको बचाने का पूर्ण प्रयास करता है। कंस भी आकाशवाणी होने के पूर्व तक देवकी से अपार स्नेह रखता था परन्तु जब उसे अपनी बहन के आठवें गर्भ से अपने जीवन की असुरक्षा का भय हुआ तभी से उसके मन में खलनायिकी भावों का उदय हुआ जो कोई असामान्य बात नहीं थी क्योंकि कंस के स्थान पर यदि और कोई व्यक्ति भी होता तो संभवत: वह भी ऐसा ही करता।

यह बहुत ही प्रसन्नता का विषय है कि डॉ. शर्मा ने कंस के जीवन की अच्छाइयों को इस नाटक के माध्यम से उजागर करने का साहस किया है।

नाटक में जमूरे, कजरी एवं उस्ताद के माध्यम से जनसामान्य में कथा सुनने की लालसा पैदा करने का प्रयास सराहनीय है। भाषा सरल है तथा बीच-बीच में संगीत एवं नृत्य को समाहित करके लेखक ने अपनी सांगीतिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका यह प्रयास विश्वपटल पर अंकित कंस के खलनायिकी स्वरूप से संघर्ष करके उसके अच्छे स्वरूप को भी जनसामान्य के मस्तिष्क पर अंकित कर सकेगा ऐसी मेरी शुभकामनाएं हैं।

❑❑❑

14

कंस नाटक (एक अभिनव स्तुत्य प्रयोग)

डॉ. रामकृष्ण शर्मा

हिन्दी साहित्य जगत् के जाने-माने लेखक, कवि एवं विचारक श्री डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। वे मूलरूप से एक संवेदनशील कवि हैं। साथ ही एक सफल व ख्यातिप्राप्त रंगकर्मी भी हैं। डॉ. शर्मा द्वारा लिखित कंस नाटक उनके मौलिक चिन्तन व उनकी सकारात्मक सोच का उत्कृष्ट निदर्शन है। किसी पौराणिक पात्र की युग-युगों से नि:सृत एवं निर्मित-स्थापित छवि को बदलने का प्रयास बहुत कठिन काम है। जन-मानस पर रावण, हिरण्यकश्यप, बाली एवं कंस की छवियां खलनायकों के रूप में ही अंकित हैं। किन्तु यह भी निर्विवाद है कि इनमें से प्रत्येक में कुछ अच्छाइयाँ भी थीं। उन अच्छाइयों को सामने लाकर किसी कुख्यात पौराणिक पात्र को विख्यात बना देना तथा जन-हृदय में दृढ़ीकृत जुगुप्सा को सहानुभूति और प्रशंसा में परिवर्तित कर देना बहुत बड़ी बात है जो लेखकीय कौशल एवं मौलिक सूझ-बूझ से ही संभव है।

'कंस' नाटक में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने इस दुरूह लेखकीय दायित्व को सफलतापूर्वक निर्वाहित कर दिया है। कंस द्वारा देवकी-वसुदेव-उत्पीड़न एवं उनकी संतति के निर्मम वध जैसे कुकृत्यों से तो सभी सुपरिचित हैं, किन्तु कंस के हृदय में स्नेह, दया, मानवीय सौजन्य, सदाशयता जैसे महान् गुण भी विद्यमान थे- इस तथ्य का उद्‌घाटन - स्थापना इस नाटक में ऐसी सरस कलात्मकता से हुआ है कि लोक-न्याय की तराजू स्वत: कंस के पक्ष में मुड़ जाती है। कंस ने देवकी- संतति का विनाश तो किया, किन्तु स्वरक्षा की विवशता थी। पाठक एवं दर्शक सोचने को विवश हो जाता है।

*पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय महारानी श्री जया महाविद्यालय, भरतपुर(राज.)

नाटक विधा को आचार्यों ने दृश्य काव्य के अन्तर्गत लिया है। दृश्यकाव्य तभी सफल माना जाता है जब रंगमंच के अनुकूल हो। श्री जयशंकर प्रसाद जैसे कालजयी लेखक के अधिकांश नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल नहीं रहे हैं। केवल ध्रुवस्वामिनी ही इस निष्कर्ष पर खरा उतरा है। कंस नाटक रंगमंचीय निष्कर्ष पर पूर्ण सफल है। लेखक स्वयं मंच-कुशल हैं, अभिनय की बारीकियों को जानते हैं, इसलिए 'कंस' को मंचीय रचना बनाने में सफल रहे हैं।

दृश्य काव्य में अभिनय के साथ-साथ नृत्य एवं संगीत का विशेष महत्व होता है। नाटककार ने बीच-बीच में जो गीत दिये हैं, उनमें भी मौलिकता एवं औचित्य है। वे रंगमंच की दृष्टि से ही लिखे गये हैं। लेखक नृत्य-संगीत निष्णात् भी हैं। इसमें नाटकीय तत्व (कथानक, कथोपकथन पात्र ,चयन व चरित्रांकन, देशकाल एवं वातावरण, भाषा - शैली एवं उद्देश्य) का भी यथोचित विकास हुआ है। कंस नाटक अवश्य ही हिन्दी के नाट्य साहित्य में अपना स्थान बना लेगा।

❑❑❑

15

सबला को मिलती है मंज़िल

डॉ. पूर्णिमा केडिया 'अन्नपूर्णा'

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी की कुल ग्यारह कहानियों का संकलन है 'अबला की मंज़िल'। संग्रह की पहली कहानी का शीर्षक भी यही है। इसमें एक ऐसी नारी नीलम की कहानी है, जिसका विवाह दहेज की समस्या के कारण एक विक्षिप्त पर धनी व्यक्ति से हो जाता है।

कहानी का नायक अमर अपनी पढाई के लिए गाँव से शहर आकर एक किराये के कमरे में रहता है। धीरे-धीरे मकान-मालिक के पुत्र पंकज से उसकी मित्रता हो जाती है। पंकज का विवाह तय हो जाता है। विवाह में सम्मिलित होने के लिए पंकज की मौसी नीलम विवाह के दो माह पूर्व ही उदयपुर से आ जाती हैं। अमर सीढ़ियों में आते-जाते जान-बूझकर मौसी से टकराता है। एक दिन वह उन्हें अपने कमरे में आने का आमन्त्रण देता है। मौसी कमरे के एकान्त में जब अमर से मिलती है तो रो-रोकर अपनी दु:ख भरी कहानी सुनाती है। वह कहती है-

'हाँ अमर! मेरी कहानी में यही सब कुछ है। आज तक कोई सुनने वाला न था, कोई हितैषी न था। तुमने मुझे जिस रूप में देखा वह मैं नहीं हूँ।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ. 23 पैरा 1)

अमर का नीलम मौसी के प्रति रूपाकर्षण सहानुभूति में बदल जाता है। बाद में वह पंकज के साथ मौसी की ससुराल उदयपुर जाता है। वहाँ वह उस घर की सारी आधुनिक सुख-सुविधाओं के साथ-साथ मौसी के अर्द्धविक्षिप्त पति को भी देखता है। यह भी पता चलता है कि नीलम मौसी के जीजागण तथा देवर लोग उस पर कुदृष्टि रखते हैं। वह इस जीवन से ऊब गयी है। आत्मघात

*105, फिकॉन पैलेस जे.सी.रोड, लालपुर, राँची (झारखण्ड)

की बात मन में आने पर अपने बच्चे के भविष्य का ख्याल करके रुक गयी थी। अब वह अपने पति से संबंध-विच्छेद करके एक नौकरानी की हैसियत से कहीं भी रहने को तैयार है। किन्तु अमर उसे ऐसा करने से मना करता है और सलाह देता है कि वह परिस्थितियों का मुकाबला करे तथा पारिवारिक सम्पत्ति का बँटवारा करवाकर, अपने हिस्से के धन से स्वयं का कोई कारोबार शुरु करे।

कई वर्षों के बाद अमर पास के ही एक शहर में जिला-मैजिस्ट्रेट बन जाता है। एक दिन एक महिला अमर के सेवक को 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज' की एक्सपोर्ट यूनिट के शुभारम्भ का कार्ड देकर जाती है जिसमें अमर को मुख्य-अतिथि बनाया गया है। निवेदिका के नीचे 'नीलम' नाम देखकर वह उद्घाटन में जाता है और उसे यह जानकर खुशी होती है कि उसकी प्रेरणा से ही नीलम मौसी आज अपनी इस संस्था की प्रबन्ध-संचालिका है। वह अमर से निवेदन करती है कि वह वेतनभोगी कर्मचारियों की मदद से इस संस्था को संभालने में असमर्थ है, अत: अमर इसका प्रबन्ध-संचालक बन जाय। अमर जिला-मैजिस्ट्रेट के पद से इस्तीफा देकर परिवार सहित नीलम मौसी की सहायता करने चला जाता है।

कहानी के प्रारंभ में अमर एक लम्पट युवक सा प्रतीत होता है जो जान-बूझकर सीढ़ियों में नीलम से टकराता है और रात्रि के एकान्त में पत्र लिखकर उसे अपने कमरे में आने को कहता है, किन्तु मौसी की दु:ख गाथा सुनकर उसमें परिवर्तन आता है। कहानीकार के शब्दों में- ' अमर को अब उससे सहानुभूति होने लगी । उसके रूप-सौन्दर्य की चकाचौंध में जो भावनाएँ भड़की थीं, वे धीरे-धीरे लुप्त होने लगीं।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ. 24 पैरा 5)

वही उसे सलाह देता है कि वह तलाक न ले, वरन् सम्पत्ति का बँटवारा कर अपना हिस्सा अलग करवा ले। उस हिस्से से अपना व्यापार आरम्भ कर वह उसे स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार अमर का रूपान्तरण एक मनचले युवक के स्थान पर एक सच्चे सलाहकार और प्रेरक के रूप में हो जाता है। अपनी पत्नी-बच्चों और उच्च पद की नौकरी के साथ वह सुखी और सम्मानित जीवन जी रहा था कि फिर नीलम मौसी का उसके जीवन में आगमन होता है। मौसी के अनुरोध पर वह अपने पद से इस्तीफ़ा देकर परिवार सहित चला जाता है उसकी कम्पनी का प्रबन्ध-संचालक बनने। अब वह सलाहकार

और प्रेरक से भी एक कदम आगे बढ़कर कम्पनी के संचालन में मददगार बन जाता है।

नायिका के चरित्र में भी रुपांतर होता है। शुरु में जो नीलम दु:ख से सिसक रही थी। अपने पाँवों पर खड़ी होकर अबला से सबला हो जाती है। अमर की सलाह मानकर वह अपने जीवन को एक नया मोड़ देती है। निर्धनता के कारण उसका सगा जीजा ही एक अयोग्य पात्र से उसका विवाह करवा देता है। जीजाओं और देवरों की कुदृष्टि और देवरानियों की फटकार से उसमें पलायनवादी प्रवृत्ति जागती है, पर अपने बच्चे का मोह अर्थात् उसका मातृ हृदय उसे आत्महत्या के कायर कदम बढ़ाने से रोक लेता है। वह अपने दु:खमय जीवन से संघर्ष करते-करते थक चुकी है, अत: तलाक लेकर नौकरानी का जीवन जीने को तैयार है। अमर की प्रेरणा से उसको नयी चेतना मिलती है। वह अपने विशाल वैभव के साम्राज्य का बँटवारा करवाकर अपने पति और बच्चे की देखभाल करते हुए 'शोषित महिला ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्री' कायम कर लेती है जिसका उत्पादन निर्यात भी होने लगता है। अपने अन्दर छुपी प्रतिभा को पहचानने के बाद दबी-कुचली दुखियारी नारी नीलम एक सशक्त-सबल स्वावलम्बी नारी बन जाती है।

कहानी के प्रारंभ की अबला नायिका अन्त में सबला बन जाती है और आत्म निर्भरता की मंजिल प्राप्त करती है, इस दृष्टि से कहानी का शीर्षक 'अबला की मंज़िल' एक सही शीर्षक है।

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यह बतलाना चाहा है कि 'अबला' कही जाने वाली नारी स्वावलम्बन के द्वारा ही 'सबला' बनने की मंज़िल प्राप्त कर सकती है। सामान्यत: नारी का मूल्यांकन उसके बाह्य सौन्दर्य के आधार पर ही किया जाता है जबकि आवश्यकता है उसके आन्तरिक गुणों, उसकी कार्य-क्षमताओं और उसमें छुपी प्रतिभा को पहचान देने की। अर्थात् बाह्य नहीं आन्तरिक सौन्दर्य के आधार पर विशुद्ध मानवीय ढंग से उसके मूल्यांकन की जरूरत है। अपने इस उद्देश्य को पाठकों तक संप्रेषित करने में रचनाकार सफल रहा है।

कहानी की भाषा-शैली भी सहज संप्रेषणीय है। मनुष्य की जीवन यात्रा की तुलना कठपुतली के तमाशे से करके कहानीकार ने एक अछूता और अनूठा प्रतीक बिम्बग्राही भाषा में प्रस्तुत किया है- ' मनुष्य की जीवन यात्रा भी तो कठपुतली के तमाशे की भाँति है। व्यक्ति स्वयं ही अपने हाथों का खिलौना

होता है। उसके द्वारा की जा रही क्रियाएँ पुतली से बंधी हुई डोर हैं। वह जितनी कुशलता से डोर का संचालन करेगा, तमाशबीनों को उसके खेल में उतना ही मजा आयेगा। तमाशा जमाने या बिगाड़ने का हेतु वह स्वयं ही तो है।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ. 13 पैरा 2)

कहानीकार के इस कथन से एवं नायिका के जीवन-संघर्ष से यह स्पष्टत: ध्वनित हो जाता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। उसके कुशल या अकुशल जीवन-संचालन पर ही उसकी सफलता अथवा असफलता निर्भर करती है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'माधवी' एक प्रेमकथा है। नायक अरुण विवाहित एवं दो बच्चों का पिता है। उसकी पत्नी सीमा एक आदर्श पत्नी है जो पति की हर सुख-सुविधा का ध्यान रखती है। प्रारंभ में वह अपने लेखक पति की रचनाओं में भी रूचि लिया करती, लेकिन बाद में घर-गृहस्थी में ही उसका अधिक समय बीतता।

चिल्ड्रन्स स्पोर्ट्स क्लब में अपने बच्चों को प्रशिक्षण दिलवाने के दौरान अरुण का परिचय माधवी से होता है, जो वहाँ अपने बहन-भाई को प्रशिक्षण दिलवाने लाती थी। माधवी के घर के लोगों और अरुण की पत्नी का भी वहीं परिचय हुआ। वे एक-दूसरे के घर भी आते-जाते। माधवी अरुण एवं सीमा को 'अंकल' 'आंटी' कहकर पुकारती। अरुण के बच्चे माधवी को 'दीदी' कहकर पुकारा करते। धीरे-धीरे दोनों परिवारों में प्रगाढ़ता बढ़ती गयी। अरुण माधवी से उम्र में पन्द्रह वर्ष बड़ा था, फिर भी दोनों का मूक प्रेम एक-दूसरे के प्रति उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होने लगा।

अरुण अपने बच्चों को बोर्डिंग स्कूल में डालकर स्वयं विदेश नौकरी करने चला जाता है, जहाँ से सीमा को खर्च भेजता रहता है।

माधवी कम उम्र की सौन्दर्यवती किशोरी है। उसे अरुण का अता-पता नहीं पता था, किन्तु संयोग से वह भी विदेश में वहीं नौकरी के लिए साक्षात्कार देने पहुँच जाती है और दोनों मिलकर वहाँ पति-पत्नी रूप में रहने का निर्णय लेते हैं।

माधवी के बाल-कवि-हृदय का दूसरे कवि की ओर आकर्षित होना उतना असहज नहीं लगता। लेकिन अरुण उससे पन्द्रह वर्ष बड़ा, विवाहित और दो बच्चों का पिता है। वह अपने मन के भटकाव के लिए यह तर्क देता है,

".....जब कोई ऐसा पुरुष किसी कला से जुड़ा हो, उसका मन कोमल और संवेदनशील हो, तो यह संभावना और अधिक बढ़ जाती है।"

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ. 35)

किन्तु यह तर्क तो मन के दूसरी ओर भटकाव का बहाना भर है। क्या तुलसीदास और मीराबाई कला से जुड़े हुए या संवेदनशील नहीं थे?

'अबला की मंज़िल' कहानी के नायक अमर के मुकाबले अरुण एक कमजोर नायक है। उसकी पत्नी सीमा उसकी अपेक्षा एक अधिक संतुलित और समझदार है, माधवी उसकी उदारता के समक्ष नादान और बौनी लगती है। कुल मिलाकर इस कहानी में सीमा का चरित्र ही सर्वाधिक उदात्त एवं पाठकों की संवेदना का हकदार है।

अगली कहानी 'साक्षात्कार' भी एक त्रिकोणात्मक प्रेम कथा है। नायक है डॉ. बादल। उसकी पत्नी सुरभि की मृत्यु हो जाती है, जो जोधपुर में एक अस्पताल चलाती थी। उस अस्पताल की देखभाल के लिए एक महिला डॉक्टर की आवश्यकता थी, जिसके लिए साक्षात्कार लिया जा रहा था। साक्षात्कार में डॉ. बादल की पुरानी प्रेमिका अलका भी आती है जो डॉ. बादल के प्रोत्साहन से ही डॉक्टर बनी थी। स्व. डॉक्टर सुरभि के चित्र के हिलने और गिरने से डॉ. बादल को मानो मृत पत्नी की आत्मा की ओर से संकेत मिलता है कि डॉ. अलका को अस्पताल और बादल दोनों को संभालने की जिम्मेदारी दे दी जाय।

'साक्षात्कार' शीर्षक इस कहानी के लिए सार्थक है, क्योंकि साक्षात्कार के माध्यम से ही डॉ. बादल और डॉ. अलका का पुनर्मिलन होता है और अस्पताल चलाने की समस्या का भी समाधान हो जाता है। चूँकि नायक की पहली पत्नी का निधन हो चुका है और उनकी मृतात्मा की ओर से दिशा-निर्देश के बाद ही साक्षात्कार में डॉ.अलका के चुनाव का कदम उठाया जाता है, इससे डॉ. बादल और डॉ. अलका के चरित्र पर दाग़ नहीं दिखलायी देता, वरन् चारित्रिक उज्ज्वलता ही सामने आती है। मृतात्मा डॉ. सुरभि के चरित्र की गरिमा भी रोशनी से मण्डित होती है, क्योंकि वह प्रेरणा देकर डॉ.बादल को दुविधा से उबार लेती है।

चौथी कहानी 'मौन समर्पण' नवीन और मालिनी के मौन प्रेम की कहानी है। उन दोनों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण अवश्य है, पर दोनों ने ही अपने प्रेम को शब्दों के माध्यम से कभी व्यक्त नहीं किया है। मालिनी एक

सम्पन्न बाप की बेटी है, जबकि नायक नवीन की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं है। आर्थिक विषमता के कारण ही यह ब्याह नहीं हो पाया।

वर्षों बाद नायक को मालिनी की बड़ी बहिन डॉ. भारती से पता चलता है कि मालिनी की उम्र बत्तीस वर्ष हो जाने पर भी उसने अब तक विवाह नहीं किया है। डॉ. भारती उसे अपने पीहर का पता देती है और एक बार वहाँ जाने का अनुरोध करती है।

नवीन सोचता है - 'क्या मालिनी अभी तक संयोगवश कुँवारी है या उसने मेरे लिए त्याग किया है?' पहले तो वह सोचता है कि वह वहाँ नहीं जाये क्योंकि अब वह विवाहित एवं बाल-बच्चों वाला सफल गृहस्थ है, अत: वहाँ जाना उचित नहीं होगा। लेकिन बाद में वह सोचता है कि अब वह अच्छी नौकरी में है, शिक्षित एवं सम्पन्न है, अत: मालिनी के आततायी पिता को उसकी भूल का एहसास करवाने उसे वहाँ जाना चाहिए और वह चल पड़ता है।

कहानी के नायक नवीन का वर्णन कहानी में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है, नायिका मालिनी का कम। नवीन एक व्यवहार कुशल और समझदार पात्र है, जबकि मालिनी भावुक और त्यागनिष्ठ।

कहानी का नामकरण 'मौन समर्पण' कथावस्तु के अनुरूप है, क्योंकि यह पूरी कहानी नायिका मालिनी के मौन समर्पण पर केन्द्रित है। समर्पण का पता कहानी के अन्त में होता है, शुरु में तो यही लगता है कि डॉ. भारती ही कहानी की नायिक है। बाद में पता चलता है कि वह नायिका नहीं, नायिका की बड़ी बहन है और कथा को एक मोड़ पर लाने का साधन है। भारती के पति विवेक का वर्णन एवं प्रतीक्षारत नवीन का वर्णन भी सजीव बन पड़ा है। कुल मिलाकर यह कहानी मौन प्रेम की पीड़ा से जुड़ी है। पिता के बड़प्पन के अहंकार के कारण ही बेटी का घर नहीं बस पाता, ऐसे पिताओं पर यह एक करारा व्यंग्य है। व्यंग्य-प्रकटीकरण के उद्देश्य में लेखक सफल रहा है।

प्रेम कथाओं की अगली कड़ी है, 'चेहरे असली नकली'। इस कहानी का नायक अनिल एक अमीर बाप का बेटा है। उसकी दौलत से आकर्षित होकर सुधा नाम की एक लड़की उससे प्रेम करने लगती है। अमर और सुधा एक दिन स्कूटर पर बैठकर फ़िल्म देखने जा रहे थे कि वर्षा नाम की लड़की की साईकिल से उनका स्कूटर टकरा जाता है। चोट लगने से कराहती हुई वर्षा बतलाती है कि वह अनिल के पिता की फैक्ट्री में ही पार्ट-टाईम काम करती है। जब वह कहती है कि, '.....अनिल बाबू आपको इतना लापरवाह नहीं

होना चाहिए।' तो सुधा कहती है कि 'अनिल डार्लिंग इस चुड़ैल के मुँह न लगो। जल्दी चलो, अपने शो का समय हो रहा है।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ.74)

कहानी के ऐसे संवाद कहानी को आगे भी बढ़ाते हैं और पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डालते चलते हैं। सुधा के कथन से ज्ञात हो जाता है कि वह एक मतलब परस्त लड़की है। उसे किसी के सुख-दुःख से कोई लेना-देना नहीं। घायल वर्षा के प्रति संवेदना दिखलाने के बदले उसे वह 'चुड़ैल' कहकर और आहत करती है। वर्षा के संवाद से पता चल जाता है कि वह साहसी, निर्भय और सच्चाई से दो-टूक कहने वाली है। अनिल के पिता की फैक्ट्री में काम करने के बावजूद वह बिना डरे अनिल को टक्कर मारने की लापरवाही के लिए खरी-खरी सुना देती है।

दौलत और प्रेम के नशे में डूबा हुआ अनिल सहानुभूति के बदले उल्टे वर्षा को अपनी फैक्ट्री से निकाल देता है। सुधा की क्रूरता की तो तब हद हो जाती है, जब रोती गिड़गिड़ाती वर्षा को दो-तीन ठोकर मारकर वह फैक्ट्री से निकालकर ही दम लेती है।

समय पलटा खाता है। सुधा के पिता का तबादला हो जाता है और वह जयपुर चली जाती है। इधर अनिल के पिता एक कार-दुर्घटना में मारे जाते हैं और सारी सम्पत्ति मैनेजर हड़प लेता है।

अनिल बड़ी कठिनाई से अपनी छोटी बहन कंचन को पढ़ा रहा था और उसके भविष्य के बारे में चिंतित था। नौकरी के लिए एक साक्षात्कार देने वह जयपुर गया और वहाँ सुधा के घर ठहरा। पहले दिन तो बड़े उत्साह से उसका स्वागत हुआ, लेकिन उसकी गरीबी के बारे में जानते ही रंग बदलने लगा। पीएच.डी. नहीं होने के कारण उसे वह नौकरी नहीं मिल पायी।

अचानक उसकी भेंट वर्षा से हुई। वर्षा बतलाती है कि अब वह एक कॉलेज में व्याख्याता है, साथ ही उसने अपना मकान भी ले लिया है। अनिल भी अपने अमीर से गरीब बनने की सारी कहानी उसे सुनाता है। वह अनिल के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखती है। यह भी कहती है कि वह उसे पीएच.डी. करवायेगी। विवाह हो जाता है।

सुधा के चरित्र से कहानी के शीर्षक 'चेहरे असली नकली' की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। अनिल की दौलत के लालच में सुधा पहले उसके

प्रति प्रेम दिखलाती है, किन्तु जैसे ही उसे पता चलता है कि अनिल की दौलत जा चुकी है, वैसे ही उसका असली चेहरा सामने आ जाता है। उसमें ईर्ष्या की भावना बहुत अधिक है, क्योंकि अनिल एवं वर्षा के विवाह का कार्ड पाकर उसका रोम-रोम ईर्ष्या से जल उठता है और वह उस कार्ड को फाड़कर फेंक देती है।

सुधा के मुकाबले वर्षा एक सत्यनिष्ठ और ईमानदार लड़की है, साथ ही समझदार भी। पहले जब अनिल का स्कूटर उसकी साईकिल से टकराता है, तब वह बेबाकी और निडरता से उसे भला-बुरा कहती है। बाद में जब उसे पता चलता है कि अनिल की दौलत जा चुकी है और पीएच.डी. नहीं होने के कारण उसे नौकरी भी नहीं मिल रही है, तब वह उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है एवं अपनी नौकरी के बल पर उसे पीएच.डी. करवाने का भी वादा करती है। शीर्षक का औचित्य अनिल के चरित्र में भी दिखलायी देता है। उसे पॉलिस की हुई सभ्यता के असली भावों की पहचान दौलत का नशा उतरने के बाद ही होती है।

कहानी पूर्व दीप्ति शैली में है। अनिल की गरीबी का पता चलते ही किस तरह स्थितियों में बदलाव आता है और किस तरह उसे अपमान का घूँट पीने पर मजबूर होना पड़ा, इसका चित्रण कहानीकार ने बहुत ही यथार्थपरक शब्दों में किया है। '.....मेरा सामान उठाकर बाहर गैराज में डाल दिया गया और एक टूटी सी चारपाई दे दी गयी। मुझे वहाँ रहना बुरा लगता था। ऐसा-वैसा आदमी होता तो इस मेहमानवाजी को तिलांजलि देकर यहाँ से खिसक लेता, पर मैं मजबूरी का पुतला तो कहाँ जाता?' भाषा भावनाओं की अभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम है।

'नवजीवन' कहानी विधवा-विवाह की समस्या से जुड़ी एक प्रेम कहानी है।

सोनपुर की 18 वर्षीय, ग्रेजुएट अंजू का विवाह अवधेश नगर के दीपक से हो जाता है। विवाह के रीति-रिवाजों के बाद पत्नी से मिलने के पूर्व ही आँगन में दीपक पर बिजली गिर जाती है व उसकी मृत्यु हो जाती है। विधवा अंजू को उसके एम.ए. पास 21 वर्षीय देवर सुशील से सहानुभूति मिलती रहती है। वह उसे पुनर्विवाह की सलाह देता है, पर अंजू समाज के भय से नहीं मानती। अन्त में वह अपनी भाभी से प्रतिज्ञा करवाता है कि समय आने पर वह इस सामाजिक बुराई को मिटाने की पहल करने की हिम्मत दिखलायेगी।

सुशील का गहरा मित्र संजीव उर्फ संजू किसी कारणवश दीपक एवं अंजू के विवाह में नहीं आ सका था। वह खुशखबरी लेकर आता है कि वह तथा सुशील, दोनों आई.ए.एस. के इन्टरव्यू में पास हो गये हैं। अंजू संजीव के लिए चाय लेकर आती है, तो उसे देखते ही उसके हाथ से ट्रे छूट कर गिर पड़ी, क्योंकि वे दोनों एक-दूसरे से पहले से ही परिचित थे। अंजू के पिता स्कूल के हैडमास्टर थे और संजीव उनसे कुछ पूछने के बहाने उनके घर आया करता। संजीव और अंजू मन-ही-मन एक-दूसरे को चाहने लगे थे। संजीव भी खड़े होकर उसे फटी-फटी आँखों से देख रहा था। दीपक की माँ स्थिति को भाँप कर अंजू का हाथ संजू के हाथ में देते हुए प्रसन्नतापूर्वक कहती है, 'सुशील आज का दिन हमारे लिए बहुत खुशी का दिन है, आज मेरा दीपक वापस आ गया है।'

इस प्रकार विधवा-विवाह की समस्या से जुड़ी यह एक प्रेम कहानी है।

प्रारम्भ में सुशील की अंजू के प्रति सहानुभूति देखकर यह लगता है कि वे दोनों आपस में विवाह कर लेंगे, किन्तु संजीव के अचानक आगमन से कहानी एक नया मोड़ लेती है। अंजू और संजीव के पूर्व परिचय की बात पूर्व दीप्ति शैली में कही गयी है।

संजीव को अंजू के विवाह के बारे में नहीं मालूम था। उसने पहले से ही सुशील के सामने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह विवाह करेगा तो सिर्फ उसी लड़की से, वरना आजीवन कुँवारा रहेगा।

अंजू एक आदर्श नारी की भूमिका में है, जो अपने मन के प्रेम को कभी व्यक्त नहीं करती।

सुशील एक आदर्श देवर ही नहीं समाज-सुधारक भी है। माँ पुराने ज़माने की होकर भी विधवा-विवाह में कोई बुराई नहीं समझती और संजू को अपने मृत पुत्र दीपक का स्थान देती है।

'कर्ज' कहानी से रचनाकार प्रेम-कथाओं से उभरकर जग-जीवन की ओर दृष्टि डालता है। यह कहानी नायक सौरभ की सदाशयता तथा बैंक मैनेजर की महासदाशयता से जुड़ी है।

सौरभ अपने हिस्से की ज़मीन गिरवी रखकर बड़े भाई राकेश को विदेश भेजता है। फिर राकेश विदेश से जो रुपये ब्याज सहित लौटाता है, उनसे वह

उसी भाई की नीलाम होती जमीन बचाकर उसके परिवार को राहत पहुँचाता है।

जब वह गाँव आता है, तो वह घर में अपने दूसरे बड़े भाई मनोज को माँ पर हाथ उठाते देखता है। इस घटना से दु:खी होकर वह शहर वापस लौट आता है। गाँव के बैंक मैनेजर का तबादला शहर में हो जाता है। जाते-जाते वह सौरभ की रेहन रखी ज़मीन अपने पैसों से छुड़वा देता है और नायक सौरभ को शहर में अपने घर रहकर आगे की पढ़ाई करने का आमन्त्रण देता है। सौरभ सोचता है, एक तो अपने सगे भाई अपने होकर भी कितने पराये हैं, दूसरी ओर यह बैंक मैनेजर पराया होकर भी कितना अपना है।

सौरभ गाँव का वह मेधावी युवक है जो राष्ट्रीय छात्रवृत्ति और ट्यूशनों के सहारे शहर के एक प्रसिद्ध कॉलेज में पढ़ता है। उसकी प्रतिभा के कारण गाँव में उसका नाम था। उसकी नेकनामी और परोपकारिता के कारण ही गाँव का बैंक मैनेजर पहले उसे कर्ज देता है, फिर उसकी गिरवी रखी हुई ज़मीन अपने रुपयों से छुड़वाता है और अन्त में शहर में उसे अपने साथ अपने घर रखकर पढ़ाई करने का आमन्त्रण देता है। अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण ही वह सबसे मान-महत्व प्राप्त करता है। उसका रोना उसके कोमल हृदय को व्यक्त करता है।

माँ का बेईमान बंशी को बेईमान कहना, उसकी सत्यनिष्ठा को अभिव्यक्त करता है। सौरभ के बड़े भाई मनोज का माँ पर हाथ उठाना और पिता का उसको माँ को मारने के लिए प्रोत्साहित करना, उन दोनों की अत्याचारी प्रवृत्ति का परिचायक है।

गाँव से शहर जाने के रास्ते में खेत-खलिहानों और किसानों के सुखमय जीवन का सजीव वर्णन कहानीकार ने बोलचाल की चित्रमय भाषा में किया है- 'कितना सरल जीवन होता है इन किसानों का। न पैसे की फिक्र, न उसकी सुरक्षा की और न ही आधुनिक दिखावे को बनाये रखने की। जैसा मिला वैसा ही खा और पहन लिया। फसल अधिक अच्छी हुई तो सभी घरवालों ने एक-एक कपड़ा बनवा लिया और यदि फसल खराब हुई तो पुराने गाढ़े कपड़ों से ही काम चला लिया। .....गृहणियाँ छाछ-राबड़ी और रोटियाँ प्रेम से उन्हें जिमा रही हैं।'

नायक सौरभ बैंक मैनेजर के कर्ज तले दबा है, अत: कहानी की संज्ञा 'कर्ज़' एकदम सटीक नाम है।

'दीपक की रोशनी' कहानी में रामपुर की निकट के एक गाँव के जयराज और सोना का पुत्र अक्षय देश के लिये शहीद हो जाता है। इस कारण पूरा गाँव इस बार दीपावली नहीं मनाने का निर्णय लेता है। दीपावली की रात को सब अक्षय को याद करते हुए सो जाते हैं। अचानक आधी रात को कोई मुखिया का दरवाजा खटखटाता है और कहता है कि किसी ने जयराज के घर की ऊँची मुण्डेर पर शरारतवश दीया जलाकर रख दिया है। मुखिया निर्णय लेता है कि '.....जिस किसी ने भी यह दीया जलाकर जयराज और सोना के दिल को दु:खी किया है और अक्षय की आत्मा को दु:ख पहुँचाया है, हम उसे पकड़कर गाँव से बाहर निकाल देंगे।'

रात के वक्त ही पंचायत बैठती है। जयराज भी पंचों के बीच बैठा। सहसा अक्षय की माँ सोना भी पंचायत की ओर आती दिखलायी दी। वह बतलाती है कि वह दीया उसी ने जलाया है। जो सजा देनी हो, उसे ही दी जाय। उसके शब्दों में, '..... मुझे तो खुशी है इस बात की कि मेरा अक्षय देश के लिए शहीद हो गया।.....अगर मैं आपकी जगह होती तो कभी गाँव को दीपावली मनाने से नहीं रोकती।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृ.99-100)

वह यह भी कहती है कि गाँव के हर घर में इतने अधिक दीये जलने चाहिएं कि उनकी रोशनी गाँव से बाहर दूर-दूर तक पहुँच कर अक्षय के बलिदान को अमर कर दे। उसकी बात मानकर अर्द्ध रात्रि को ही गाँव में दीपावली का आयोजन होता है और मिठाइयाँ बँटती हैं।

शहीद की माँ सोना इस कहानी की मुख्य पात्र है। यों तो वह अक्षय को याद करके दिन में कई बार रो लेती है, पर उसमें देशप्रेम की भावना है, इसीलिए वह देश के लिए निछावर हुए पुत्र की याद में चुपचाप अपने घर की सबसे ऊँची मुण्डेर पर दीया जलाती है। उसके शब्दों में, ' मेरा अक्षय भी तो इस दीपक की भाँति जलता रहा था और तब तक जलकर मातृभूमि को रोशनी देता रहा जब तक कि उसमें प्राण रहे।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 100)

ऊँचाई पर दीया जलाने का कारण उसका मातृगौरव है-

'यह दीया मैंने इतनी ऊँचाई पर इसलिए जलाया है, क्योंकि यदि नीचा होता तो आप उसे ठोकर मारकर चूर-चूर कर देते। और फिर मेरा अक्षय भी तो ऊँचाई पर पहुँचकर ही जलता रहा था।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 101)

देश-गौरव के लिए ही वह दीवाली नहीं मनाने के बदले जोर-शोर से दीपावली मनाने की बात कहती है।

शहीद अक्षय का पिता जयराज सोना के मुकाबले एक कमजोर पात्र है। यों तो वह अपने पुत्र-शोक को हुक्का गुड़गुड़ाने की ध्वनि में विलीन कर देता है, किन्तु पंचायत में बैठकर वह भी दीपक जलाने वाले को दण्डित करने के लिए तैयार हो जाता है।

इस कहानी का उद्देश्य यह बतलाना है कि देश के लिए अपने प्राण निछावर करने वालों के लिए शोक की भावना नहीं अपितु गौरव की भावना होनी चाहिए।

देश-हेतु शहीद होने वाला व्यक्ति दीपक की तरह होता है, जिसके उत्सर्ग की रोशनी से देश दुश्मनों को पराजित करता है। इस दृष्टि से इस कहानी का शीर्षक दीपक की रोशनी एकदम सही और उचित है।

सोना द्वारा चुपचाप दीया जला दिया जाना और अन्त में इस रहस्य का खुलना, कहानी को रहस्यमय और नाटकीय बना देता है। देश-प्रेम से सराबोर यह एक श्रेष्ठ कहानी है।

'पैमाना' कहानी का नायक कुणाल गाँव से शहर आकर विश्वविद्यालय में अध्ययनरत है। उसके कमरे की दीवार पर एक आदर्श परिवार के चित्रवाला कैलेण्डर टँगा है, जिसके नीचे लिखा है 7 और 6 इंच। कैलेण्डर देख-देखकर उसे अपने परिवार अर्थात् भाई-भाभी, भतीजे बबलू और भतीजी दीपा की याद आती रहती है। कॉलेज के अन्य मनचले लड़के छह या सात बजे लड़कियों से मिलने का प्रस्ताव करते और बदले में उनसे झिड़की या थप्पड़ खाकर खुश होते। लेकिन कुणाल अपने भैया जी की सीख याद कर मेहनत से पढ़ाई करता। कैलेण्डर के नीचे लिखे 'सात' और 'छह' से पाठक भ्रम में पड़ जाता है कि कहीं नायक कुणाल भी 'सात' या 'छह' बजे लड़कियों से मिलने का प्रस्ताव रखने की योजना तो नहीं बना रहा। रहस्योद्घाटन तब होता है, जब विश्वविद्यालय में कुणाल को प्रथम स्थान मिलता है तथा आई.ए.एस. की परीक्षा में भी वह सफल हो जाता है और वह बबलू व दीपा के लिए क्रमश: सात एवं छह ईंच के जूते खरीदकर गाँव ले जाता है।

जब कुणाल गाँव पहुँचता है, तब सेठ जीवनदान कर्जा न चुका पाने के कारण घर का सामान बाहर निकलवा रहा था। कुणाल बबलू और दीपा को

जूते पहनाता है, तो सेठ के हाथ उन जूतों को भी अपने बच्चों के लिए उतारकर ले लेने के लिए बढ़ने लगे। तभी कुछ लोग संगीत बजाते, गुलाल उछालते आकर कुणाल और उसके भैया भाभी को मुबारकबाद देते हैं तथा माला पहनाते हैं। गाँव के स्कूल के मास्टर जी कुणाल के कलैक्टर बनने की खबर सुनाते हैं। यह सुनते ही सेठ चुपके से खिसक लेता है।

कहानी में चरित्र-विकास बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। स्थितियों का वर्णन भी यथार्थपरक है। उदाहरण के लिए बबलू और दीपा का जूतों के बिना चलने का वर्णन देखा जा सकता है 'नन्हें-नन्हें, गोरे-गोरे नंगे पैर जब धरती पर पड़ते हैं, तो धरती का दिल भी धक् से रह जाता है कि कहीं उसकी कठोरता से इनके कोमल पैरों में मोच न आ जाय।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 103)

इस उदाहरण से भाषा का दृश्य बिम्ब सामने आ जाता है। सीधे-सादे शब्दों में लेखक अपनी बात सहजता से अपने पाठकों तक संप्रेषित कर देता है।

कहानी में नायक कुणाल के चरित्र का सुन्दर चित्रण है। वह एक आज्ञाकारी अनुज है जो अपने बड़े भाई का कथन मानकर पढ़ाई में अपना जी लगाता है व अन्य बातों की ओर ध्यान नहीं देता। उसे अपने परिवार से अथाह प्यार है, इसलिए वह पारिवारिक चित्र के कैलेण्डर को देखा करता है। भाई-भाभी के साथ-साथ उसे अपने भतीजे-भतीजी से भी बहुत ोह है। कठोर धरती पर उन मासूमों को नंगे पाँव चलना पड़ता है, यह याद कर उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। अपने हार्दिक ोह के कारण ही अपनी सफलता की खबर पाते ही वह सबसे पहले उन बच्चों के जूते खरीदता है। इसके ठीक विपरीत सेठ जीवनदास जैसे हृदयहीन व्यक्ति का चरित्र है, जो बच्चों के पाँव से जूते उतारने के लिए हाथ बढ़ाता है। वह एक लालची, अत्याचारी, सूदखोर महाजन वर्ग का चरित्र है, जिनके लिए पैसा मानवीयता से बढ़कर है। ऐसे लोग ऊपर से बहुत तेज-तर्रार और साहसी दीखते हैं, पर अन्दर से वे खोखले, कायर और डरपोक होते हैं, तभी तो कुणाल के कलैक्टर बनने की खबर सुनते ही वह वहाँ से खिसक जाता है। भाई-भाभी का चरित्र मेहनती किसान का चरित्र है।

कहानी का शीर्षक 'पैमाना' एक व्यंग्य शीर्षक है। इस शीर्षक के द्वारा रचनाकार कहना चाहता है कि आज के भौतिकवादी युग में पैसा और पद ही मनुष्य को नापने के पैमाने बन गये हैं। कुणाल के कलैक्टर बनने की बात सुनते

ही महाजन के बच्चों के जूते उतारते हाथ रुक जाते हैं और वह भागने को मजबूर हो जाता है।

यह एक मेहनत, लगन, सफलता एवं पारिवारिक प्रेम से जुड़ी मार्मिक कहानी है।

'भटकती आत्मा' अतीन्द्रीय जगत् से जुड़ी एक मनोहर कहानी है। इसमें एक ओर इस लोक का वर्णन है तो दूसरी ओर परलोक की भी झलक है। इन दोनों लोकों के बीच भटकती है एक वृद्ध गरीब व्यक्ति की आत्मा।

कहानी के नायक का वर्णन देखें-

'बेटे और बहुओं के कटु तीक्ष्ण व्यंग्य और उपहास भरे शब्दों की बौछारों के बीच अपने बुढ़ापे के दिन काट रहा था। उसे मुश्किल से सूखी रोटियाँ खाने को मिलती थीं और कभी-कभी तो ये भी नसीब नहीं होती थीं। बेचारा बुढ़ापे में भी काम करता रहा, और नहीं तो मूँज ही बाँटता रहता, चटाइयाँ बनाता रहता.....और जब मरा तो भूखों ही मरा।'

.....

गरीब बेटों को इलाज के लिए कर्ज़ न मिलने की विवशता कहानीकार की भाषा-शैली में दर्शनीय है, 'बेटे भी बेचारे गरीब थे, उसके मरने से पहले पैसे नहीं थे अत: किसी वैद्य, हकीम से दवा दारू न करा सकते थे। रिश्तेदार साहूकार और हितैषी लोग ऐसे समय में अपनी असमर्थता प्रकट कर देते थे।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 106)

यह कहानी उन सेठ-साहूकारों, रिश्तेदारों और हितैषियों पर करारा व्यंग्य है, जो बीमारी के इलाज के लिए कर्ज नहीं देते, पर मृत-भोज के लिए जितना चाहें ऋण दे देते हैं। तर माल खाते हैं व दिखावे का शोक प्रकट करते हैं।

कहानीकार एक रूपक खड़ा करता है कि यमलोक में जब वृद्ध की आत्मा की नाक में व्यंजनों की खुशबू पहुँची तो वह व्याकुल हो उठा। उसने देखा कि यमलोक के पहरेदार ताश खेलने में व्यस्त हैं, तो वह बिना चप्पल पहने ही चुपचाप खिसक लिया। पहले गाँव गया, फिर घर। वहाँ ज्यौंनार देखकर एक पेड़ पर जा बैठा। उस पेड़ के नीचे से कोई मृतभोज की मिठाइयों की टोकरी लेकर निकला तो मृतात्मा का मन हुआ कि एक-दो मिठाई उठा ले, लेकिन तब तक टोकरी वाला निकल गया।

मृतभोज के लिए ऋण देने वाले सेठ की गर्दन पंगत में सबसे ऊँची थी, क्योंकि ऋण देने के कारण सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे। वृद्ध की आत्मा

को सेठ पर बड़ा क्रोध आया और 'उसने सेठ की गर्दन पकड़ने के लिए ज्योंही हाथ नीचे किये त्यौंही दो सींगों वाले आदमियों ने उसके हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं, बुड्ढे ने विरोध किया तो उन्होंने उसे वारण्ट पत्र दिखाया जिस पर यमराज के हस्ताक्षर और मुहर लगी थी।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा पृष्ठ 107)

यहाँ सांसारिक 'वारण्ट' पर और उन्हें जारी करने वालों पर भी व्यंग्य है, जिनके सामने हथकड़ी और पहनाने वाले दोनों ही लाचार हैं, चाहे व्यक्ति ने अपराध किया हो या न किया हो। हस्ताक्षर और मुहर की माया पर भी चोट की गई है।

व्यंग्य की चोट पाठक के हृदय और मस्तिष्क पर एक साथ पड़ती है जब वह पढ़ता है कि लोग मृतभोज में व्यंजन खाकर तृप्त हो चुके हैं, फिर भी उन्हें जबरदस्ती मिठाइयाँ परोसी जा रही हैं। जूठन खाकर कुत्ते भी तृप्त हो रहे हैं। लेकिन जिस मृतात्मा की तृप्ति के लिए ये सारा आयोजन किया गया उसे कुछ चखने तक को नहीं मिला।

गाँव के मृतभोज का वर्णन भी कहानीकार ने बड़े सजीव रूप से किया है, '.....रेडियो बज रहे थे, रंग-बिरंगे, छैल-छबीले, विविध परिधान पहने हुए गाँव में फैले हुए थे। घर गया तो देखा सैंकड़ों आदमी जीमने में फटकारा लगा रहे थे, परोसाने वाले बड़े प्रेम से खिला रहे थे, चौकन्ने रहते थे कि किसी तरफ से कोई क्या बोलता है, किसी की फरमाइश का इंतजार अन्तर्मन से कर रहे थे। कुछेक तो आग्रहपूर्वक कह रहे थे 'साहब एक लड्डू और चलेगा।'

.....

छोटे-छोटे संवाद झूठ की नकाब उतारने में सफल रहे हैं, 'रामलाल कह रहा था - 'अरे बस क्या। मैं जब तुम्हारी उम्र में था तो अक्सर 10-10 लड्डू खा जाता था।' बुड्ढे की आत्मा तिलमिलाने लगी-'झूठा कहीं का। मेरे साथ तो हिसार में जिन्दगी भर बोरियां ढोता रहा।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 106)

कहानी का शीर्षक 'भटकती आत्मा' औचित्य की दृष्टि से खरा और सार्थक है। समाज में कर्मकाण्ड के दिखावे के लिए जिसकी आत्मा की शान्ति के लिए भोज होते हैं, वह आत्मा तो भटकती ही रह जाती है और तृप्त होते है दो मुँहे लोग। ऐसे दो चेहरे वालों की पोल रचनाकार ने बड़ी कुशलता से खोली

है, 'साहूकार आया- रोता सा चेहरा बनाया, मानो बुड्ढे के मरने का सबसे ज्यादा ग़म इसे ही हुआ हो। उसके बेटों को उलाहना दिया कि किसी अच्छे वैद्य, हकीम का इलाज़ क्यों नहीं कराया, अन्य हितैषी आये और ग़म प्रकट किया। और फिर सबके सब एक साथ पंगत में खाने बैठे। सबके सब व्याकुल हो रहे थे जीमने को। सबने व्यंजनों पर धावा बोल दिया।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 106)

अप्रत्यक्ष रूप से कहानी से एक संदेश उभरकर आता है कि ये दिखावे के मृतश्राद्ध बन्द हों और जीवित बुजुर्गों को परिवार में सम्मान मिलना चाहिए उनकी उचित देखभाल होनी चाहिए और हारी-बीमारी में उनका समुचित इलाज़ होना चाहिए। इसके लिए समर्थ लोगों को असमर्थ की आर्थिक मदद करनी चाहिए-उचित समय पर।

मृतभोज की सामाजिक कुरीति के माध्यम से रचनाकार ने हास्य व्यंग्य की शैली में समाज का खोखलापन दिखलाने के लिए पौने दो पृष्ठों की इस छोटी सी कहानी रूपी गागर में मानो चैतन्य विचारों का समन्दर भर दिया है।

संग्रह की अन्तिम कहानी 'ताबीज' एक लम्बी कहानी है। इसमें अनेकों पात्र हैं।

नायक कुलदीप को उसके माता-पिता ने एक महात्मा जी के ताबीज की कृपा से प्राप्त किया था। ताबीज कुलदीप को पहने रहना था। कुलदीप बड़ा होता है और उसका विवाह हो जाता है। पर उसकी पत्नी छवि को भी कोई संतान नहीं होती। बचपन में वह अपने माता-पिता के साथ महात्मा जी के आश्रम जाया करता था। अन्तिम बार आठ वर्ष की उम्र में वहाँ गया था। अब चालीस वर्षों के बाद यानी अड़तालीस वर्ष की उम्र में पुनः वहाँ जाता है। साथ में उसकी पत्नी छवि भी थी। तब तक महात्मा जी का स्वर्गवास हो चुका था। पर उनका शिष्य उन्हें एक ताबीज देता है, जिसे महात्मा जी देह-त्याग के पूर्व छवि के लिए बनाकर गये थे, साथ ही यह निर्देश भी देकर गये थे कि छवि को संतान होने के बाद कुलदीप और छवि दोनों के ताबीज तोड़कर गंगा में विसर्जित कर दिये जायें। ताबीज पहनने के नौ माह बाद छवि को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् दोनों ताबीज तोड़े गये, तो यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये कि दोनों ताबीजों के अन्दर की पर्चियाँ एक ही दिन, एक ही तारीख को लिखी गयी थीं। कुलदीप और उसके पुत्र के जन्म की तिथियों और समय तक का उन पर्चियों में सही-सही उल्लेख था।

इस कहानी में एक साथ तीन पीढ़ियों का वर्णन है-कुलदीप के माता-पिता व उसके दादा-दादी का। दादा-दादी धार्मिक स्वाभाव के तथा देशभक्त थे। अपने देशप्रेम के कारण वे कुलदीप के पिता, जो कि उस जमाने के तेजस्वी छात्र एवं इंजीनियर थे, को अंग्रेजों की नौकरी नहीं करने दी, तो वे राज्य सरकार की पी.डब्ल्यू. डी. में नौकरी कर लेते हैं।

कुलदीप के पिता ने जब इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की थी, तब पूरे जिले में उनका नाम हो गय था। स्टेट के महाराजा स्वयं उनके घर बधाई देने आये थे, क्योंकि उसके पिता स्टेट के प्रथम इंजीनियर थे। कुलदीप के पिता का विवाह हुआ, लेकिन संतान न होने के कारण उसकी माँ आशा को लोग बाँझ कहते। वह इस कारण दु:खी रहती थी, पर दादा-दादी और पिता ने सब ईश्वर पर छोड़ दिया था। पिता ऑफिस के कार्यों के सिलसिले में विभिन्न गाँवों में जाया करते, वहीं उन्होंने महात्माजी के बारे में सुना, जो झाड़-फूँक से लोगों का इलाज किया करते और भूत-प्रेत भी भगाते थे। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण कुलदीप के पिता अंधविश्वासों पर भरोसा नहीं करते थे। किन्तु लिछमा के भूत भगाने का विवरण सुनकर उनका मन महात्माजी की ओर खिंचता ही चला गया। फिर वे अपनी पत्नी आशा को महात्माजी के आश्रम में ले गये।

रचनाकार ने महात्माजी का वर्णन एक त्रिकालदर्शी ज्ञाता के रूप में किया है, जिनका नाम था गणपति दास। बाबा गणपति दास की दिनचर्या के विवरण में उनके चरित्र की दिव्यता उद्‌घाटित होती चली गयी है। सर्दी-गर्मी-बरसात, हर मौसम में वे जल्दी उठकर नदी जाकर स्नान करते और फिर ठाकुरजी की पूजा करते। ''उस समय छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चों को लेकर उनकी माताएँ मन्दिर के बरामदे में या फिर पानी की कुई के इर्द-गिर्द बैठी रहतीं। इन बच्चों में किसी को नज़र होती, कोई ठीक से खाना न खाने की वज़ह से, तो कोई सूखे के रोग से, कोई पीलिया से और अधिकांशत: फोड़े-फुंसियों से पीड़ित होते।'' पूजा के बाद चबूतरे पर बैठकर महात्माजी इन बच्चों की चिकित्सा झाड़-फूँक और मन्त्रों के द्वारा करते।

दोपहर में महात्मा जी दो मोटे-मोटे टिक्कड़ अपने हाथों से बनाकर मन्द-मन्द आँच में सेकते, उनका भगवान को भोग लगाकर स्वयं प्रसाद पाते और उस वक्त वहाँ जो भी रहता उसे भी देते।

शाम को गाय दुहने और पुन: नदी में स्नान करने के बाद वे संध्या आरती करते। इसके बाद वे ऊपरी हवा (भूत-प्रेत से पीड़ित) लोगों का इलाज करते।

रात्रि को भगवान को शयन कराकर वह बाहर दूब पर घण्टे-डेढ़ घण्टे भक्तों के साथ समय बिताते, 'हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ भक्तगणों को जीवन-दर्शन एवं नीति तथा ज्ञान की अनेक कहानियां ,घटनाओं व अन्तर्कथाओं के माध्यम से इतने सजीव चित्रण के साथ सुनाते कि सुनने वालों की जिज्ञासा बढ़ती ही जाती और वे उठने का नाम ही न लेते। तभी उनके प्रधान शिष्य की ऊँची आवाज तीसरी बार सुनाई देती-गुरुजी प्रसाद लगा दिया है।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 114)

तब वे उठते और प्रसाद पाकर शायन करते। वे भारतीय ऋषि-मुनियों की परम्परा से जुड़े हुए, मन्त्र शक्ति से सम्पन्न एवं उदार हृदय सिद्ध पुरुष हैं।

उनकी कीर्तन मण्डली के सदस्यों का भी कहानीकार ने इतना सजीव चित्र उकेरा है कि लगता है पाठक उनसे साक्षात्कार कर रहा है और आश्रम के वातावरण में पहुँच गया है, 'बाबा के प्रधान शिष्य संत जानकीदास संस्कृत के बहुत बड़े ज्ञाता थे। वे भजन जोड़-जोड़ कर बनाते और शास्त्रीय संगीत की धुन पर उन्हें गाते। उन्होंने कई कुत्ते पाल रखे थे। दूसरे भक्त सोना राम नायक पेशे से दर्जी थे, पर हारमोनियम अच्छा बजाते थे। तीसरे सुवा लाल अच्छे गायक थे। चौथे, ठाकुर साहब लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के कृपा पात्र होने पर भी सादगी से रहते और भजन गाते समय भावविभोर होकर नृत्य भी करते। कीर्तन में आने वालों में राजकीय औषधालय के भूरजी वैद्य भी थे, जो अपने पेशे के प्रति ईमानदार और वफादार थे। कोई रोगी यदि उन तक आने में असमर्थ होता, तो वे अपनी घोड़ी पर चढ़कर स्वयं उस तक जाते। बच्चे उन्हें चिढ़ाते, 'वैद्यजी की घोड़ी। बिना लगाम दौड़ी' पर वे उन पर कभी भी नाराज नहीं होते। छठे अछूत सद्दी लाल धानका उफ सद्दा बाबा पीछे कुछ हटकर बैठते। लोग उन्हें आगे सबके साथ बैठने को कहते, तो वह अपनी झुकी कमर और आँखों पर लगे टूटे चश्मे के फ्रेम में से इस प्रकार की दीनता दिखाता कि फिर कोई कुछ न कहता।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 122)

वे ढ़ोलक बजाने में निपुण थे। इन पात्रों से जुड़ी कई अन्तर्कथाएँ भी हैं जैसे, स्वयं द्वारा की गयी पत्नी की हत्या के गम में सन्तजी भक्त बन गये, तो सद्दा बाबा एकलौते बेटे की मौत के ग़म में।

रोगियों की अन्तर्कथा में कहानीकार ने लिछमा की रहस्य-रोमांच भरी कथा विस्तार से दी है, जिसे सुनकर ही नायक कुलदीप के इंजीनियर पिता संतान-प्राप्ति हेतु महात्माजी के पास आये थे। कथा इस प्रकार है-रुक्का और लिछमा पति-पत्नी हैं। वे दोनों दिसावर कमाने जाते हैं। वहाँ वे ईंट के भट्टे पर काम करते हैं। वहीं लिछमा एक भूत की चपेट में आ जाती है। रुक्का उसे इलाज के लिए महात्मा जी के आश्रम में लेकर आता है। महात्मा जी उस भूत को नष्ट न कर उसकी मुक्ति के लिए उसका परिचय पूछते हैं। लिछमा के मुँह से भूत बोलता है कि उसका नाम 'जैसा' है। उसका ब्याह लिछमा से तय था, पर विवाह से एक दिन पहले ही उसे नाग डस लेता है और वह भूत बन जाता है। वह लिछमा को अपनी पत्नी मानता है, इसलिए उसे नहीं छोड़ना चाहता। महात्मा जी बड़ी चतुराई से उसे गाँव का दामाद कहकर आवभगत के बहाने एक घड़े में बन्द कर देते हैं। फिर उसकी मुक्ति हेतु उस घड़े को गंगा में विसर्जित कर देते हैं।

सजीव वातावरण निर्मीति में भी कहानीकार की कुशलता दर्शनीय है, 'वहाँ का दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। नदी के किनारे पर बसा यह आश्रम असंख्य पेड़-पौधो ंसे आच्छादित था। पास में नदी का कल-कल करता स्वर चित्त को चँचल कर रहा था।'

(अबला की मंज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 119)

प्रकृति के चित्र ढ़ेरों हैं, जैसे-खरगोश के बच्चे का भागते हुए निकल जाना, मयूरों का नृत्य करना, झुरमुटों से आती कोयल की कूक, पेड़ों से साँपों का लिपटे रहना आदि आदि।

प्रकृति बिम्ब, गति बिम्ब, दृश्य-श्रव्य आदि बिम्बों से युक्त इनकी भाषा सहज, सरल, मनोरम, मधुर है।

कहानी का उद्देश्य प्राचीन महात्माओं की अतीन्द्रीय शक्तियों का महत्व प्रतिपादित करना है, जिसमें रचनाकार सफल रहा है।

कहानी का ताना-बाना दो ताबीजों के इर्द-गिर्द फैला हुआ है। एक ताबीज के प्रभाव से नायक कुलदीप का जन्म होता है और दूसरे के प्रताप से उसके पुत्र का। अतएव कहानी का नामकरण 'ताबीज़' सही और सार्थक है।

कहानी में घटनाओं का ऐसा रोमांचक वर्णन है कि इस नेट-जेट के युग में अविश्वसनीय लगने वाली घटनाएँ भी सच्ची-सी प्रतीत होती हैं। कहानी

समाप्त हो जाती है पर महात्मा गणपति दास का चित्र पाठक के मन-मस्तिष्क पर अंकित सा हो जाता है। बच्चों के इलाज के बाद उनके गाल पर गुल-गुल करते-'अले लेले, अले ले ले.....' बाबा की यह ध्वनि पाठक के कर्ण-कुहरों में गूँजती रह जाती है।

संग्रह की प्रथम कुछ कहानियाँ प्रेम से जुड़ी हैं, तो शेष जग-जीवन से सम्पृक्त हैं, जो पाठक को प्रभावित ही नहीं करती अपितु उसे अपने साथ प्रवाहित भी कर लेती हैं।

सभी कहानियों में उत्सुकता भरपूर है और इसी कारण पाठक को बाँधे रखने की क्षमता भी है।

संवाद जहाँ भी हैं, प्राय: वे कहानियों को आगे बढ़ाने में योग देते हैं तथा चरित्रों पर प्रकाश डालते चलते हैं।

कहानियों की वातावरण-निर्मीति में भी कहानीकार एक कुशल चितेरा लगता है। सभी कहानियों की भाषा बोलचाल की बोधगम्य जनभाषा है। कहीं-कहीं स्थानीय शब्दों के प्रयोग से भाषा की सौन्दर्य वृद्धि हुई है।

कुल मिलाकर यह एक हृदयग्राही पठनीय संग्रह है। तो आइए चलते हैं अबला से सबला बनने की मंज़िल तय करने।

❑❑❑

16

अबला की मंज़िल कहानी संग्रह

डॉ. सुमन मेहरोत्रा

कहानी के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं होता है कि वह मनोजगत् की अथवा मनोवैज्ञानिक यथार्थ की कोई एक ग्रन्थि, कोई एक दरार या कोई एक सन्धि का नक्शा प्रस्तुत कर दे। मनोवैज्ञानिक यथार्थ अनिवार्यत: गहरे जाने वाले विस्तीर्ण मनोभावों को तीखे प्रकाश में आलोकित करता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ के प्रति मानवीय दृष्टि उस सच को प्रकाशित करती है जो बाह्य भौतिक या सामाजिक से पहले अभ्यान्तर या मानस का यथार्थ होता है। इसी चुनौती को कहानीकार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने स्वीकार किया है।

यह अभ्यान्तर का यथार्थ ही वह शक्ति है जो खुद को बाह्य से जोड़ने से पैदा होता है। भीतर और बाह्य का सम्बन्ध इतिहास और परिवेश के रिश्ते से बदलता रहता है। इन परिवर्तित होते सम्बन्धों को तार्किक ढंग से औचित्यपूर्ण प्रमाणित करना ही कहानीकार के लिये अनिवार्य होता है। इसका परिणाम सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी। अत: कहानीकार दो धरातलों पर चलता है। जीवन और जगत् का चित्रण या मूल्यांकन वैयक्तिक धरातल पर निजी संवेदनाओं के साथ करता है और सामाजिक मान्यताओं या समय सापेक्ष धारणाओं को भी तौलता परखता चलता है। 'मौन समर्पण ', 'भटकती आत्मा', 'अबला की मन्ज़िल', 'माधवी' आदि कहानियाँ कभी भीतर की ओर लौटती हैं पर बाहर से सक्रिय और सजग भी हैं।

डॉ. शर्मा के इस संग्रह की कहानियाँ व्यक्ति-सत्य के स्तर पर जीवन की विषमताओं, जटिलताओं और संघर्षों से युद्ध करती हुई चलती हैं। नैतिकताओं और मूल्यों की परिभाषाएं भी अतीत और वर्तमान के संघर्षों में पात्रों के साथ-

*पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान लेखिका साहित्य संघ, जयपुर

साथ चलती रहती हैं। उनके भीतर का एहसास हर पल यह साँस लेता रहता है कि वैयक्तिक सीमा से परे उनका भाग्य दूसरों से जुड़ा है। यह दूसरों से जुड़ाव ही उन्हें जीवन-शक्ति प्रदान करता है। दरअसल वह यह जानता है कि व्यक्ति समूह के चक्रव्यूह के भीतर ही जीवन की आधारभूमि प्राप्त होती है। 'चेहरे असली नकली' कहानी में यह चक्रव्यूह वैयक्तिकता से सामूहिकता की ओर ले जाता है जो यथार्थ को पहचानने की शक्ति बन जाता है।

मूलत: सम्बन्धों को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में कर्तव्यों और मूल्यों के मध्य संघर्ष छिड़ा रहता है। इन राहों पर गुज़रते हुये पात्रों के भीतर एक आलोड़न और प्रत्याडोलन होता रहता है। कभी मन्ज़िल मिल जाती है कभी निराशा की गर्त में पाँव चला जाता है। यह व्यक्तिगत प्रश्न अवश्य है कि अन्तिम परिणति तक पहुँचकर उनको यह एहसास हो कि जो राह उसने स्वीकार की है वह परपीडन में परिवर्तित हो जाये और एक कुण्ठा, विवशता या असमर्थता की अनिवार्यता को भोगना पड़ जाए। डॉ. शर्मा की सम्बन्धों की कहानियों में यह अनुभव स्पष्ट है।

इस संग्रह की कहानियों में एक रेखा खींची जा सकती है- मध्य वर्ग का सजग तथा प्रबुद्ध व्यक्ति और सामान्य व्यक्ति के मानसिक जगत् का प्रारूप। सजग और प्रबुद्ध व्यक्ति अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रति जागरुक होकर सामान्य सुखों से मुँह मोड़ लेता है। ऐसी परिस्थितियों की चपेट में स्त्री पात्र अधिक हैं जो अपने संस्कारों से बाध्य हैं। परिस्थितियों से पलायन, आदर्शवाद और यथार्थ के ठण्डेपन के सन्तुलन पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है और अन्तत: किसी एक सत्य को नकारना ही पड़ता है।

सीधी सी सामान्य उक्ति, सपट बयान, सुलझी भाषा, कथ्य में दैनन्दनीय जीवन तथा एक साध्य को लेकर चलने वाले पात्र, यह सारे उपकरण कहानी के लिये न तो साध्य होते हैं और न सिद्धि। जहाँ सपटबयानी कारगर हो वहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि वह इकहरी नहीं है, इसके साथ इसका अलंकरण है। यहीं पर सपटबयानी सार्थक होती है। 'अबला की मन्ज़िल' कहानी संग्रह की इन कहानियों में सपटबयानी, अलंकरण और सार्थकता इन तीनों ही का संगम है। इस संग्रह की कहानियों में जीवन का यथार्थ एवं सत्यता बड़ी ईमानदारी से उभर रहे हैं।

❑❑❑

17

अबला की मंज़िल (कहानी संग्रहः एक चिन्तन)

डॉ. मुरलिया शर्मा

कहानी के कथानक का आधार कथ्य होता है। पारम्परिक तात्विक अनुबन्ध का यह एक तत्व है लेकिन वस्तुत: यह वह लक्ष्य है जिस पर सम्पूर्ण कहानी का ढाँचा तैयार होता है। शर्मा जी ने 'अबला की मंज़िल' कहानी संग्रह में इसे बखूबी निभाया है। रचनाधर्मिता का एक जुनून उनकी कहानियों में दिखाई देता है। आत्मबोध और आत्मतोष के उन्मोचन का यह साहित्यिक विग्रह पाठकों को सम्मोहित कर उन्हें अनुगामी बनने को विवश कर देता है। जीवन के मधुर, तिक्त, कषाय अनुभवों की भोक्ता रूप में साक्षी इन कहानियों में विषय वैविध्य है। लेकिन एक विशेषता जो इन कहानियों के मूल में आत्मगत रूप से अवस्थित है वह है जीवनानुभव से नि:सृत सूक्तिपरक अभिव्यक्तियाँ।

'माधवी' शीर्षक से रचित कहानी की यह पंक्तियाँ–

'प्रतिकार अस्वीकृति का सूचक है, पर स्त्री का प्रतिकार अस्पष्ट भी हो सकता है।' .....'और स्त्री अपने समर्पण हेतु पुरूष की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति की कामना करती है.....।'

इन पंक्तियों को पढ़कर कौन कह सकता है कि नारी चरित्र की पहचान सम्भव नहीं।

'पॉलिश की हुई सभ्यता हर भाव को ऊपर आने से रोक देती है।'

'चेहरे असली नकली' कहानी की यह सूक्ति रोजमर्रा के जीवन में आने वाले कई चेहरों को बेनकाब कर देती है।

*अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

'कर्ज़' कहानी की व्यंजना अभिप्रेत अर्थ श्रेय और प्रेम से हेय एवं अप्रिय प्रसंगों को आधार बनाकर अनेक सरोकारों को अर्थशून्य बताकर भी निर्णायक कर्मठता के अर्थ में परिभाषित हुई है। लेखक का कथन है – 'एकाएक बदलाव कहीं संभव है? जीवन के प्रारूप को बदलना आसान नहीं।' ..... 'जब बड़ों के सम्मान का हनन ऊँचाई की तरफ से होता है तो क्या दोष यदि छोटे स्तर से भी बड़ों का अपमान हो जाए।' और 'अब उसे किसी से शिकायत नहीं थी बस अपना कर्त्तव्य याद था और केवल अपनी मंज़िल।' जैसे सूक्त वाक्य सम्बन्धों के मूल में विद्यमान उस कृतज्ञता से परिचित करवाते हैं जिसका कि कर्ज़दार वह 'अर्थात् व्यक्ति' सदैव रहेगा।

ऐसे शाश्वत एवं चिरन्तन मूल्यों को आधार बनाकर किया गया यह महाप्रयाण नि:सन्देह प्रशंसनीय है और एक अध्येता के रूप में शर्मा जी की साधना स्तुत्य।

❑❑❑

18

कहानी संग्रह 'ओवरकोट': एक समीक्षा

विजय कदम

इस कहानी संग्रह में कुल नौ कहानियाँ हैं।

प्रथम कहानी 'ओवरकोट' पिता-पुत्र की संवेदनाओं को व्यक्त करने वाली एक मार्मिक कहानी है।

एक व्यक्ति कँपकँपा देने वाली सर्दी में अपने कार्यस्थल पर जाने हेतु रात्रि के नौ बजे अपने बेटे के साथ बाईक पर हाईवे के बस स्टॉप के लिए प्रस्थान करने वाला है। सर्दी से बचने के लिए वे एक ओवरकोट साथ में ले लेते हैं। कोट एक ही है और व्यक्ति दो। अत: पिता पुत्र से ओवरकोट पहनने को कहता है परन्तु पुत्र को अपने पिता से बेहद लगाव है अत: वह कहता है कि बाईक चलाते समय आपको सर्दी अधिक लगेगी और ओवरकोट को आप पहन लें। पिता का मन पुत्र की भावनाओं से आर्द्र हो जाता है और वह कोट पहनकर अपने पुत्र के साथ बस-स्टॉपेज पर पहुँच जाता है। जब पिता अपने पुत्र को घर जाने के लिए कहता है तो वह बस के आने तक पिता के साथ ही खड़े रहने की जिद करता है। तब जब पिता उसे ओवरकोट पहन लेने को कहते हैं तो पुत्र तर्क देता है कि आप लम्बी यात्रा पर जा रहे हैं अत: बस में बैठने से पहले तक आप ही इसे पहने रहें। पिता का मन पुत्र की भावनाओं से द्रवित हो उठता है और तब ओवरकोट को खोलकर उसे दोनों ओढ़ लेते हैं। बस आ जाती है। अब पिता पुत्र की जिद पर ओवरकोट पहनकर बस में जा बैठता है।

अगले दिन जब वह अपने ऑफिस का काम खत्म कर अपने कमरे में पहुँचकर अपने घर फोन करता है तो उसे पता चलता है कि उसका पुत्र सिरदर्द से पीड़ित है और सो रहा है।

*बिल्डिंग नं. एन 2 ए, फ्लैट सं. 34, कामां पार्क, कामां रोड, अँधेरी स्टेशन के सामने, मुम्बई 400058

उसका मन पीड़ा से कराह उठा। कभी वह रात्रि की तेज ठण्ड में वापस घर जाते हुए अभिनव को देखता, तो कभी खूँटी पर टँगे हुए ओवरकोट को। उसे लगता मानो वह भी अभिनव की बाईक पर उसके पीछे बैठा हुआ है। उससे अपने बेटे की कँपकँपी देखी न गई और खूँटी से ओवरकोट उतारकर अभिनव के कन्धे पर डाल दिया।

कहानी 'रींछ भगवान' के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन में अतिथियों के सत्कार की भारतीय परम्परा को दर्शाते हुए युग-परिवर्तन के कारण स्वार्थी एवं चालाक लोगों द्वारा भोले-भाले ग्रामीणों को ठगने की बात का खुलासा किया गया है, तथा साथ ही इसके दुष्परिणामों को उजागर करते हुए ग़लत काम न करने की सीख दी गई है।

'बोरे की लाश' कहानी लेखक के एक संस्मरण पर आधारित है। एक दिन एक बिल्ली एकाएक घर में अपने तीन नवजात शिशुओं को ले आती है जो कहानी के नायक के पूरे परिवार के लिए खुशी एवं मनोरंजन का विषय बन गया है। घर के बच्चे एवं बड़े भी कभी तो उन्हें दूध पिलाते हैं, कभी रोटी खिलाते हैं और जब वे म्याऊं-म्याऊं करते हैं तो खुश होते हैं। कई बार तो उनके लिए विशेष तौर से बाजार से बिस्कुट भी मंगवाये गये थे। एक दिन एकाएक बिल्ली का एक बच्चा बीमार हो जाता है और उसे तड़पता हुआ देखकर सबका मन आहत होता है। बच्चे के मर जाने की स्थिति का आभास होने पर एवं पड़ौसियों के समझाने पर उस बीमार बच्चे को घर के दरवाजे के बाहर बैठा दिया जाता है। इससे बच्चों का कोमल मन द्रवित हो जाता है और वे मरणासन्न अवस्था में बैठे बिल्ली के बच्चे के आगे दूध भरा मिट्टी का पात्र रख आते हैं। तड़पता हुआ बच्चा पास ही घास-फूस मिले काँटों में जा गिरता है और अन्त में मर जाता है। पूरा परिवार इस घटना से व्यथित है। गृह प्रमुख अगले दिन प्रात:काल मरे हुए बच्चे को एक खाली बोरे में लकड़ी की डण्डी से ठेलकर कचरा पात्र में डालकर आता है। इस सम्बन्ध में उसके मन में उठे भावों का इस कहानी में मार्मिक चित्रण किया गया है।

कहानी 'खान दोस्त' में स्कूल के विद्यार्थियों के दैनिक क्रिया-कलापों एवं घटनाओं का विवरण है कि किस प्रकार छोटी क्लास के बच्चों में गुटबाजी हो जाती है और अंग्रेजी के मीनिंग याद न होने पर जब अध्यापक जी द्वारा दूसरे गुट के विद्यार्थियों से चाँटे लगवाये जाते हैं तो चाँटा खाने वाला छात्र अपने मन में बदले की भावना समाये हुए अगले दिन विरोधी गुट के किसी

कमजोर छात्र से किस प्रकार जान-बूझकर जोर से एवं अपने गुट के सदस्य के किस प्रकार धीरे से चाँटे लगाता है। चाँटे खाने से बचने के लिए प्रत्येक दल का सदस्य अपने साथियों को अंग्रेजी के मीनिंग याद कराने का किस प्रकार प्रयास करता है, विद्यार्थी जीवन के पश्चात् छात्र-जीवन के ये साथी किस प्रकार अपने-अपने जीवन में स्थापित हो जाते हैं और अपने पुराने कटु सम्बन्धों में भी आत्मीयता अनुभूत करते हुए किस प्रकार एक-दूसरे से गुंथे रहते हैं, ये सभी बातें इस कहानी से उजागर होती हैं।

कहानी के नायक का बालसखा 'खान' तहसील कार्यालय में चपरासी नियुक्त हो जाता है और इसी कार्यालय का तहसीलदार केदार भी कहानी के नायक का कॉलेज का साथी रहा है। केदार के वहाँ होने की बात उसे तब पता चलती है जब वह अपने बालसखा खान से मिलकर तहसील कार्यालय से बाहर निकलता है। उसका कॉलेज का सहपाठी केदार उसे वहाँ पाकर प्रसन्न होता है परन्तु जब कहानी का नायक उसे बताता है कि वह उससे नहीं अपितु तहसील में चपरासी के रूप में कार्यरत अपने बालसखा 'खान' से मिलने आया है तो केदार को अपना अपमान महसूस होता है परन्तु कुछ वर्षों बाद कहानी के नायक को केदार का एक पत्र मिलता है जिसमें वह लिखता है—'मुझे जीवन में एक और अच्छा दोस्त मिला है और वह है तुम्हारा बचपन का साथी खान दोस्त'।

इस प्रकार यह कहानी सामान्य कथावस्तु से प्रारम्भ होकर मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर अपना विराट स्वरूप प्रकट करती है।

'भिखारिन माँ' इस संग्रह की सबसे छोटी कहानी है जिसमें परिस्थितियों की मारी एक बुढ़िया के अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु भीख माँगने की विवशता का चित्रण किया गया है। जब बुढ़िया माँ भीख माँगने हेतु गीत गाती है तो हर किसी का मन उसकी पीड़ा से किस प्रकार द्रवित हो जाता है यह इस कहानी में देखने को मिलता है।

'बछडे की अरदास' कहानी में मानव के पशुओं से सम्बन्धों को संवेदनाओं के धरातल पर बडी ही कुशलता से प्रस्तुत किया गया है।

कहानी 'उपकार का बदला' में लेखक द्वारा बाल-मन की भावनाओं को उजागर किया गया है। कोई शिकारी आसमान में उड़ रही किसी परी को तीर मार देता है और वह गिरकर घायल हो जाती है। वहाँ से गुजर रहा किशोरवय का एक राजकुमार उसके तीर को निकालकर उसका उपचार कर उसके प्राण बचाता है और परी राजकुमार को अपना भाई मान लेती है तथा संकट के समय

उसे याद कर लेने की बात कहकर परीलोक को प्रस्थान करती है। कई वर्षों तक भी जब उस प्रान्त का राजा (जो कहीं चला गया था) वापस नहीं लौटता तो वह राजकुमार अपने पिता की राजगद्दी पर बैठता है। उसे पता चलता है कि उसके पिता कई वर्षों पूर्व दक्षिण दिशा की ओर शिकार खेलने गये थे और शायद वहीं किसी के चंगुल में फँस गये हैं। राजकुमार अपने पिता को ढूंढ़ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करता है और उन्हें ढूंढ निकालता है जहाँ पर राक्षसों ने उन्हें कैद कर रखा था। वह अपनी परी दीदी को याद करता है। परी प्रकट होती है और पिता-पुत्र को बचाने के प्रयास में अपनी जान गँवा देती है।

इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से बच्चों को त्याग एवं बलिदान की शिक्षा मिलती है।

'सवारी का मोह' में गाँव के खेत में खाली पड़े खलिहानों में घूमते आवारा गधों पर किशोरवय के विद्यार्थियों द्वारा सवारी करने का वृत्तान्त है जिसमें समूहबद्धता के अनुकूल परिणामों का संदेश दिया गया है। कहानी में व्यंग्य दृष्टांतों से रोचकता आयी है जो हास्य उत्पन्न करने में सक्षम है।

खलिहानों में घूम रहे पन्द्रह-बीस आवारा गधों में से चार-पाँच तन्दुरुस्त गधों को एक गहरे-ऊँचे रास्ते में ठेलकर पकड़ा जाता है और फिर उन्हें एक पेड़ से बाँध दिया जाता है, फिर दल के सदस्यों द्वारा उन पर बारी-बारी से सवारी कर आनन्द लिया जाता है परन्तु इस बीच एक अछूता गधा रस्सी तुड़ाकर भाग जाता है जिस पर सवारी न कर पाने की व्यथा कहानी के नायक की 'सवारी का मोह' है जो आज भी उसे व्यथित किये देता है।

कहानी 'कार्य का प्रतिफल' एक कर्मठ व्यक्ति की सफलता एवं एक अकर्मण्य व्यक्ति के जीवन में आगे बढ़ने के असफल प्रयासों का ताना-बाना है। दो सहपाठियों में से एक कर्मठ एवं ईमानदार है जो जीवन में आगे चलकर एक डेयरी का प्रबन्धक बनता है। दूसरा सहपाठी प्रारम्भ से ही आलसी एवं अकर्मण्य प्रवृत्ति का था अत: उच्च शिक्षा हासिल न कर सका। डेयरी का प्रबन्धक बना साथी चपरासी के पद हेतु साक्षात्कार ले रहा है। जब उम्मीदवार के रूप में वह अपने पुराने सहपाठी को सामने पाता है तो उसे नौकरी देना चाहता है परन्तु उसका साथी बिना साक्षात्कार दिये ही लौट जाता है, शायद उसका स्वाभिमान जागृत हो गया था।

❑❑❑

19

अभिव्यक्ति एक सार्थक प्रयास

डॉ. ऋता शुक्ल

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक संवेदनशील रचनाकार हैं। उन्होंने अपने जीवन के दैनन्दिन अनुभव सत्य को अपनी रचनाओं में समेटने का प्रयास किया है। 'अभिव्यक्ति' उनकी एक औपन्यासिक कृति है, जिसके माध्यम से उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार के जीवन-संघर्ष को बड़ी गम्भीरता के साथ उठाया है। गाँव से महानगर की ओर अपनी जीवन-यात्रा का क्रम सुनिश्चित करने वाला विस्वास संकल्पबद्ध है, उसे पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनना है, अपने परिवार का दु:ख दारिद्र्य मिटाना है। अमूमन गाँव में किसी के भी नाम को बिगाड़कर बोलने की परिपाटी है इस लिहाज़ से देखा जाय तो 'विस्वास' शब्द एक गँवई उच्चारण का बोध कराता है जिसमें आत्मीयता एवं सहजता अधिक है क्योंकि जिस गाँव से अपनी रुख़सत का सामान लेकर यह नायक आगे बढ़ता है उसमें आटे का कनस्तर, घी का डिब्बा, बबूल की दातुन का गठ्ठा और रोज़ाना इस्तेमाल की छोटी-छोटी चीज़ें शामिल हैं।

'विस्वास' को अपने जीवन का निर्माण करना है। उसकी संवेदनशीलता उसके नाम के अनुरूप नगरीय जीवन में अपने लिए आधार खोजना चाती है। उसका सम्पर्क अनेक स्त्रियों से होता है, जो उसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहती हैं लेकिन विस्वास के सामने उसका लक्ष्य है और वह जीवन के अनचाहे प्रेम-प्रसंगों से मुक्ति की राह ढूँढ ही लेता है। उसकी जीवन-कथा में अंजाने में सरला की जीवन-गाथा जुड़ जाती है। इस उपन्यास का मनोविज्ञान अजीबोग़रीब दांव-पेंच के साथ आगे बढ़ता है। उसके सामने जो स्त्री केवल दैहिक-सुख के लिए आती है, उसके चरित्र को वह समझना चाहकर भी समझ

*पूर्व संकायाध्यक्ष एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची

नहीं पाता। लेकिन उसके मन में इन स्त्री पात्रों के लिए एक संवेदना है और वह नैतिकता तथा मनोवैज्ञानिक सत्य के बीच एक मानसिक द्वंद्व का अनुभव करता हुआ कथा के अंत में परित्यक्ता सरला को पत्नी के रूप में स्वीकारने का प्रस्ताव सामने रखता है जिससे उसके चारित्रिक विकास का अनुभव होता है।

यह उपन्यास अपने छोटे से कलेवर में एक बड़े कथाक्रम को अनेक घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। एक ओर भारतीय समाज में नारी की आंतरिक-दशा तो दूसरी ओर मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर उभरने वाली ऊहापोह है और इन सभी परिस्थितियों में एक बड़ी बात उभरकर सामने आती है कि डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने सामाजिक रूढ़ियों की बंदिशों को बड़ी सच्चाई के साथ स्वीकार किया है और कहीं-कहीं वे उनसे जूझने का मनोबल जुटाते हुए भी दिखाई देते हैं।

जहाँ गंभीर वैचारिक भाव हैं, वहीं नारी-सौंदर्य की सम्मोहकता भी है, जहाँ पलायन है वहीं विपरीत परिस्थितियों में गहरे आत्मविश्वास का एक भाव भी है। आशा है लेखक की इस यात्रा में कई नए पड़ाव भी आयेंगे और उपन्यास रचना के क्षेत्र में किये जा रहे अभिनव प्रयोगों की दिशा में यह एक सार्थक प्रयास सिद्ध होगा।

❑❑❑

20

'अभिव्यक्ति' ने साहित्य पढ़ने की रुचि लौटा दी

रेणुका इसरानी

प्रथम बार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की दो लिखित कृतियाँ पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। बचपन में साहित्य पढ़ने व लिखने की रुचि जो मुझमें थी वो कहीं न कहीं धूमिल होती जा रही थी पर जब मैंने डॉ. साहब का उपन्यास 'अभिव्यक्ति' पढ़ा तो स्तब्ध रह गई।

मानव अपनी मौलिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में अपने आप को शर्मसार महसूस करता है परन्तु इस कृति में किसी प्रकार का ओछापन न होकर मौलिक भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप में लिखा गया है तथा उपन्यास को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि ये केवल कागज़ पर लिखे शब्द हैं, वरन् हम सिनेमा तक पहुँच जाते हैं जहाँ कि भूत से वर्तमान के सफर को बहुत ही ख़ूबसूरत तरीके से बार-बार जोड़ा गया है। ये कागज़ पर उतारना अत्यन्त कठिन है। सराहनीय है ये।

जहाँ तक सवाल उठता है 'आधुनिक यमलोक' कृति का तो डॉ. साहब ने आज के सत्य पर एक कटाक्ष किया है जो कि हास्य के रूप में उभरा है। इसे पढ़कर या नाटक के रूप में देखकर मानव जाति को अपने कर्मों के प्रति कहीं न कहीं सचेत होना पड़ेगा जिससे कि हम एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकें।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी इस योगदान के प्रति बधाई के पात्र हैं।

❑❑❑

*रंगकर्मी-अभिनेत्री, 101ए, पर्ल अपार्टमेन्ट, थर्ड क्रॉस लोखण्डवाला कॉम्पलैक्स, अंधेरी (पश्चिम), मुम्बई-400053

21

अभिव्यक्तिः समीक्षा के आईने में

डॉ. विजय बहादुर सिंह

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, निर्धन कृषक परिवार में जन्मे और निर्धनता के कारण माध्यमिक शिक्षा को बीच में छोड़कर कलकत्ता की एक कैण्टीन में बैरे की नौकरी की। उसके बाद वे पुनः अपने शहर जयपुर लौट आये। उन्होंने कच्ची बस्ती की झुग्गी झोंपड़ियों में रहकर दीपक एवं लालटेन की रोशनी में अध्ययन करके एम.कॉम. तक की शिक्षा ग्रहण की। 1982 में उन्होंने पंजाब नैशनल बैंक में लिपिक के रूप में स्थायी रूप से कार्य आरम्भ किया।

डॉ. शर्मा से मेरी मुलाकात राँची विश्वविद्यालय में प्रो. नागेश्वर सिंह (प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय) के यहाँ हुई। डॉ. शर्मा ने राँची विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की और मैं इनका परीक्षक था। उस समय मुझे इनके संघर्षपूर्ण जीवन का रंच मात्र भी आभास नहीं था। ठेठ ग्रामीण परिवेश से आये और अपनी पहचान बनाने वाले डॉ. शर्मा एक दृढ़-इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति हैं। वे उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका समूचा साहित्य, ग्रामीण परिवेश से लेकर आज के भौतिकवादी जीवन के पड़ाव में उन्हें जो अनुभव हुआ है उनका समग्र चित्र, उनके साहित्य में देखने को मिलता है।

'अभिव्यक्ति' उपन्यास डॉ. शर्मा के निजी जीवन एवं उनके इर्द -गिर्द सामाजिक जीवन में घटने वाली घटनाओं का दस्तावेज है। यह उपन्यास मानव की मानसिक वृत्तियों की सही तस्वीर पेश करता है। कथा कहने की शैली और कथा सूत्रों को जोड़ने में उपन्यासकार को महारथ हासिल है। सम्पूर्ण कथा के केन्द्र में डॉ. विस्वास और सरला हैं। उपन्यास के अन्त में डॉ. विस्वास

*प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त होते हैं और वहीं उनकी मुलाकाल सरला से होती है जहाँ उन्होंने सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

डॉ. विस्वास जिस किराये के मकान में रहते थे उस मकान मालिक की लड़की सरला थी। सरला की आयु सोलह वर्ष और विस्वास की आयु बीस वर्ष थी। विस्वास उसे पढ़ाता था और परिस्थितियों एवं उम्र के कारण सरला उसके निकट आ जाती है। वह अपने आपको विस्वास को समर्पित करना चाहती है क्योंकि वह विस्वास के सरल एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित थी। उसकी भावना विस्वास के व्यक्तित्व से सम्मोहित थी। उपन्यास में एक स्थल पर वह कहती है –'बड़ा अजीब व्यक्ति है यह, टस से मस नहीं होता, पता नहीं किस मिट्टी का बना है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 28–29)

उपन्यास का बीज और बिन्दु और महत्वपूर्ण स्थल मेरी दृष्टि में है–

सरला द्वारा स्नानगृह में स्नान करना और अवसर का लाभ उठाते हुए विस्वास को अपनी बाहों में जकड़ लेना। यही बिन्दु है जिसका स्मरण विस्वास और सरला को सदैव रहता है और अन्त में विस्वास सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है।

सरला सत्रह वर्ष की आयु में विधवा हो गयी। उसके सगे मामा का लड़का आशीष उसके साथ बलात्कार करता है और आशीष में विस्वास की छाया देखते वह परिस्थितियों के अनुसार समर्पण कर देती है और बाद में उसे पछतावा होता है। इसके बाद भी सरला को डॉ. विस्वास द्वारा पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेना एक नयी सामाजिक दृष्टि है। इससे डॉ. विस्वास के चरित्र का मानवीय औदात्य प्रकट होता है। सरला द्वारा यह कहना कि – 'मैं तो आज तक तुम्हें न भुला पाई, बहुत पहले ही अपना चुकी थी तुम्हें तो।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 125)

उपन्यास का यह अन्तिम वाक्य सरला के स्नानगृह का दृश्य और उसके पूर्व के सम्बन्ध को पुष्ट करता है।

डॉ. विस्वास का मिसेज घोष के साथ सम्पर्क, पूना छात्रावास के संरक्षक की विधवा पुत्रवधू जिसे वह भाभी कहता था और जो आयु में उससे दस वर्ष बड़ी थी उसका खुला आमन्त्रण, शयन कक्ष में विस्वास और मिसेज घोष को

आपत्तिजनक स्थिति में घोष की लड़की माला द्वारा देख लिया जाना, विस्वास का माला से सम्बन्ध, विस्वास और मनीषा का सम्बन्ध, आभा और विस्वास का सम्बन्ध, पूजाघर का प्रकरण, आभा द्वारा खुला आमंत्रण देना –'सब कुछ वहीं मिल जायेगा।' ये सभी घटना चक्र डॉ. विस्वास के साथ घटित होते हैं और उसमें कहीं न कहीं वह सरला की छवि देखता है। आशीष और सरला का जो सम्बन्ध है वह भी समाज में देखने को मिलता है। उपन्यासकार ने बड़े ही बेबाक ढ़ंग से इनका यथार्थ चित्र खींचा है। कथा कहने की शैली और सूत्रों को जोड़ने की उनमें अद्भुत क्षमता है। भाषा बहुत पैनी है।

उपन्यास में मिसेज घोष, आभा, माला, पूना वाली भाभी का प्रसंग। इस सन्दर्भ में केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि हवा को बदलते देर नहीं लगती और न ही औरत के लिये आदमी को बदलते । यह बात उपन्यासकार स्थापित करना चाहता है। लेखक के शब्दों में– 'व्यक्ति का मन उसकी भावनाओं का यथेष्ठ संवाहक है। यह तो एक वैदिक काल से ही चला आ रहा अनुकरणीय सत्य है कि आत्मा ईश्वर का प्रतीक है और स्वयं की आत्मसन्तुष्टि के लिये किया गया कोई कार्य कदापि दुष्कृत्य नहीं हो सकता।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा पृष्ठ 98)

प्रेमचन्द युग में पारिवारिक उपन्यासों के दौर में शिक्षक और छात्रा के सम्बन्ध को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है जिसमें उपन्यासकारों की दृष्टि आदर्शोन्मुख रही है। युवकोचित वासना की शक्ति को स्वीकार करते हुए उपन्यासकारों ने शिक्षक और शिक्षिकाओं के प्रेम की परिणति विवाह में कर सामाजिक मर्यादा की मुहर लगाने की बराबर चेष्टा की। स्वभावत: ऐसे उपन्यासों का क्षेत्र सपाट और सीमित रहा। न तो वे मन की गहराइयों में उतर सके और न कोई यथार्थ सामाजिक दृष्टि देने में सफल हुए। 'अभिव्यक्ति' उपन्यास कुछ इसी ज़मीन पर लिखे जाने के बावजूद एक नये सामाजिक आयाम की ओर संकेत करता है।

स्त्री और पुरूष के बीच संचित वासना शक्ति को नियन्त्रित कर पाना बड़ा कठिन कार्य होता है जिसकी पुष्टि करने के निमित्त ही उपन्यासकार ने 'अभिव्यक्ति' की सृष्टि की है। आरम्भिक दौर में उपन्यास का नायक छात्र के रूप में जिस सरला को शिक्षा देता है उससे बराबर दूरी बनाकर एक आदर्श

चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिस वासना का सूत्रपात उसके मन में हुआ उसे वह अपने आगे आने वाले जीवन में दबा नहीं पाया। आगे जितनी भी लड़कियों के सम्पर्क में विस्वास आता है किसी न किसी रूप में वह उनसे प्रभावित ही नहीं होता बल्कि वह विचलित भी होता है। यह युवकोचित कुण्ठा है जिसे दिखाने के लिये उपन्यासकार ने ताना बाना बुना है पर अन्त में एक विचित्र स्थिति और अवस्था में विधवा सरला को पत्नी के रूप में स्वीकार कर जिस आदर्श की सृष्टि करता है वह सराहनीय और स्वागत योग्य है।

एक लम्बे दौर की जीवन गाथा को समेटने में उपन्यासकार को उपन्यास के शिल्प से कहीं न कहीं समझौता भी करना पड़ा है जो घटना प्रधान उपन्यास लेखन की औपन्यासिक असफलता है। उदाहरणस्वरूप सरला का स्नानगृह में रहना और उसी समय विस्वास का आ जाना एक घटना ही है जिसे स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। इस तरह की शैलीगत विवशता को स्वीकार कर लेने के कारण उपन्यास की शिल्पगत औपन्यासिक मर्यादा धूमिल हुई है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र विस्वास और सरला के माध्यम से उपन्यासकार ने जो सन्देश देना चाहा है उसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। निश्चित रूप से इस दृष्टि से उपन्यासकार ने एक नयी ज़मीन तोड़ी है।

❑❑❑

22

अभिव्यक्ति उपन्यास में मनोवैज्ञानिक यथार्थ

डॉ. गीता सक्सेना

मनोवैज्ञानिक यथार्थ गहन एवं विस्तीर्ण मनोभावों को अन्तस से बाह्य जगत् में लाने की प्रक्रिया है। यह किसी ग्रन्थि का सुलझाव, दरार को पूरना अथवा सन्धि की प्रस्तुति मात्र नहीं है अपितु उस सत्य का प्रकाशन है जो बाह्य परिवेश की अपेक्षा अभ्यान्तर को प्रकट करता है। यह अभ्यान्तर का यथार्थ मन के कोने में दमित चेतना के घूर्णन से नहीं अपितु बाहरी जगत् से स्वयं को संलग्न करने से जन्म लेता है। भीतरी मनोभाव जब बाह्य सत्ता से जुड़ते हैं तो परिवेश के अनुकूल सम्बन्धों का निर्माण होता है जो अतीत की घटनाओं से कहीं न कहीं अपना सूत्र जोड़े रखता है। आन्तरिक मनोभाव, जो जीवन के केन्द्र बिन्दु होते हैं, उनका और जगत् का चित्रण निजी संवेदनाओं एवं अनुभूतियों के द्वारा सामाजिक स्थापनाओं एवं धारणाओं के आधार पर करके रचनाकार अपने कथाक्रम को विकसित करता है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के उपन्यास 'अभिव्यक्ति' में इसी मनोवैज्ञानिक यथार्थ को अपनी सम्पूर्ण शिद्दत के साथ उकेरा गया है। विस्वास के सरला के प्रति वे मनोभाव जो अबोधता में व्यक्त नहीं हो पाए थे, मन के गहरे कोने में जाकर कहीं दब गये थे वही समय-समय पर जीवन-यात्रा में आये विभिन्न सहयात्रियों के साथ भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त होने के लिए तत्पर रहे जिन्हें सहजता एवं पूर्ण ईमानदारी से कलमबद्ध करने का अभूतपूर्व कार्य उपन्यासकार ने किया है जो उनकी जीवन की व्यावहारिकता के प्रति गहरी पैठ को इंगित करता है।

विस्वास की मन:स्थिति आर्थिक विषमताओं एवं पारिवारिक द्वन्द्वों के कारण एक ऐसे प्राणी की बन गयी थी जो इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक

*उपाचार्य, मोदी महिला पी.जी. महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

स्थितियों से व्याकुल सा रहता है। उसकी बेचैनी ग्रीष्म के ताप से झुलसी धारा के समान शीतल बयार सदृश कोमल स्पर्श एवं वर्षा की बूँदों की तरह मानस को तपन से मुक्ति देने वाली मधुर वाणी की प्रतीक्षा में टकटकी बाँधे बादलों के आगमन को निहारा करती थी।

इस उद्विग्नता को परिलक्षित करती यह पंक्तियां हैं- 'इण्टर करने के बाद ही विवश होकर उसे एक प्राईवेट सर्विस करनी पड़ी। जहाँ भगत जी को इससे राहत मिली, वहीं विस्वास को उसकी इन्जीनियर बनने की इच्छा अन्दर ही अन्दर पीड़ित करती। वह उस पीड़ा को अभिव्यक्त न कर पाता, परन्तु मन ही मन कुछ निश्चय करके साधना में लग जाया करता।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 10)

विस्वास की निर्धनता, विषम परिस्थितियों एवं प्रगति-पथ के अवरोधकों ने उसके लक्षित तथा विकास के मार्ग को और भी अधिक प्रशस्त किया। आम तौर पर ऐसी स्थितियों में व्यक्ति की इच्छा शक्ति कमजोर हो जाती है और वह दुर्बल प्राणी की भाँति थककर अपनी यात्रा केा विराम दे देता है किन्तु विस्वास इनके विपरीत अपनी इच्छा शक्ति को दृढ़ता देता रहा और अथकित मंज़िल की ओर अग्रसर होता रहा।

यह भी सत्य है कि कमजोर इच्छा शक्ति के कारण व्यक्ति विभिन्न चक्रव्यूहों में घिरता चला जाता है जबकि दृढ़ इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति कठिन से कठिन पडावों को पार करते हुए जीवन में आगे बढ़ता जाता है। विस्वास के प्रारम्भिक जीवन में विषमताएं ही उसके आगे बढ़ने की प्रेरणा बनीं और फिसलन भरी राहों पर ही वह अपने को थामे रहा। लहराता बलखाता, गिरता-उठता आगे बढ़ता रहा। अपने कदमों को मजबूती से जमाये रहा और बहाव से सुरक्षित अनुकूल परिस्थितियों में यात्रा को गति देता रहा। सतत् प्रवाहित जल में अथवा जल के विशाल स्रोत में उठने वाली तरंगें मानव-मन को अभिभूत करती हैं क्योंकि उसमें अन्तस के भावों का प्रतिबिम्ब दिखाती हैं। अत: यह भी मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बाह्य और आन्तरिक परिवेश में साम्य संकल्प को और अधिक शक्तिशाली बनाता है। विस्वास के मनोभावों को ज्योंहीं अनुकूल उर्वरा भूमि मिलती वह अपनी कमनीय अभिव्यक्ति रूपी पत्तियों को लेकर प्रस्फुटित हो जाता। मनुष्य के विचारों का उसके जीवन की विभिन्न गतिविधियों

में दिग्दर्शन होता है। नकारात्मक दृष्टिकोण विकास को अवरूद्ध करता है और सकारात्मक भावों से व्यक्ति अपने सर्वस्व के साथ प्रगति करता है। किन्तु इस धारणा के विपरीत विस्वास विषमताओं में भी सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है अत: उसकी प्रगति निरवरोध जारी रही।

सूर्य के डूबते दृश्य से अभिभूत विस्वास कल्पना सागर में स्वयं को आनन्दानुभूति में डूबते अनुभव करता है और उस अनुभूति से अपने को पल-भर के लिए भी विलग नहीं करना चाहता। सूर्य का डूबना उसे वेदना की सघनता का अहसास कराता है और वेदना स्मृतियों के सहारे उसे लक्ष्य तक पहुँचने में प्रेरक का कार्य करती है। मैथिलीशरण गुप्त ने प्रबन्ध काव्य 'साकेत' में उर्मिला की मन:स्थिति को इसी प्रकार व्यक्त किया है-

वंदने तू भी कली बनी।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
नई किरण छोड़ी है तूने,.....
सजग रहूं मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशख-अनी।
ठंडी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु-सनी,
तू ही उसे उष्ण रक्खेगी मेरी तपन मनी।
ओ अभाव की एक आत्मजे और अदृष्टिजनी,
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचित स्तनी।
अरी वियोग-समाधि अनोखी, तू क्या ठीक ठनी,
अपने को, प्रिय को, जगती को देखूं खिंची-तनी ।
मन सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल-खनी,
तुझे तभी छोडूं जब सजनी, पाऊं प्राण-धनी।

इस सृष्टि का आधार अथवा केन्द्र बिन्दु सृष्टिकार है इस दार्शनिक सर्वमान्य सत्य पर विस्वास का विश्वास पुष्ट हो जाता है जब उसे सूर्य के डूबने और बाबा के प्राणोत्सर्ग के साम्य की अनुभूति होती है।

इस तरह उपन्यासकार जीवन से जुड़ी दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों को व्यक्त करता हुआ रचना को यथार्थवाद से जोड़ता जाता है। जब किसी प्राणी का अपने प्रिय से विछोह होता है तो उसे प्रिय द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक वस्तु, स्थिति अथवा स्मृति से सुख की अनुभूति होती है। वह उसे इस तरह

सहेजकर रखता है मानो वह उसके शरीर का अभिन्न अंग हो। विस्वास भी अपने गाँव के दृश्यों में बाबा की स्मृति संचित पाता है और उन्हें देखकर शीतलता की अनुभूति करता है। वह गाँव के कच्चे मकान, पेड-पौधे आदि को निहारता जाता है। आर्थिक अभावों से ग्रस्त विस्वास का मन मिस्टर घोष के आलीशान बँगले को देखकर गहरी पीडा से भर उठता है। वह मानव-मन की सहज अभिव्यक्ति 'काश मैं भी सम्पन्न परिवार में जन्मता तो मुझे भी आज आलीशान बँगला एवं कार के अधिकार की आनन्दानुभूति होती।' को आह के साथ व्यक्त करता है। लेकिन विस्वास का चरित्र अप्राप्ति की निराशा से शिथिलता धारण करने वाला नहीं था। वह तो इन स्थितियों से अपने अन्दर दृढता और जीवन शक्ति का संचरण अनुभव करता था। अपनी कमजोरी के उभरते स्वरूप को दमन के लिए वह दोनों मुट्ठियों को कसकर भींच लेता है। यह क्रिया उसके संकल्पित मन के अनुकूल है। वह अनुभव करता है कि उसे और अधिक प्रयासों, दृढ़ निश्चय और एकाग्रता की आवश्यकता है।

यद्यपि विस्वास सरल हृदय, स्थिर चित्त एवं अबोध स्वभाव वाला प्राणी है किन्तु सौन्दर्य की ओर उसका मन सदैव उन्मुख होता रहा है। वह मिसेज घोष के आकर्षक व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हो जाता है कि उसका मन अस्थिर हो जाता है। वह रूप माधुरी का रसपान करता भी है और यह भी अहसास करना चाहता है कि किन्हीं भी रूपाकृतियों का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता। इसीलिए वह मिसेज घोष के 'नोमोस्कार' शब्द से झेंप जाता है। यहाँ पर विस्वास के झेंपने की क्रिया में उसका ग्रामीण संस्कार है साथ ही नवीन परिस्थिति से रुबरू होने की अनुभूति भी है।

रूप के प्रति आकर्षण मानव मन का सहज स्वभाव है लेकिन उसका वासनाजन्य रूप तभी बन पाता है जब उसके मन के किसी कोने में कोई भाव अथवा पूर्वाग्रह रहा हो।

कभी-कभी परिवेश अथवा संस्कारों के वशीभूत जब दृष्टि नारी अथवा पुरुष सौन्दर्य को देखने की चेष्टा अपने अन्दर नहीं संजोती तो शारीरिक क्रियाएं सामान्य ही रहती हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। अवसर पाते ही यह चेष्टाएं ठीक उसी तरह अँकुरित हो जाती हैं जैसे वर्षा के जल से मिट्टी में दबा हुआ बीज प्रस्फुटित होकर धरती के ऊपर अपना मुख ऊँचा कर देखने लगता है।

विस्वास के चित्त में भी मिसेज घोष के रूप आकर्षण का जल बरसकर दबे हुए वासनाजन्य प्रेम को अँकुर को प्रकट कर रहा था। जब वासना की

हवा ने उसके प्रेम के अँकुर को सहलाया तो उसकी बुद्धि ने अतीत में व्यतीत क्षणों को टटोलना प्रारम्भ कर दिया। उसे हॉस्टल के वार्डन की पुत्रवधू के मन की रागजनित चेष्टाएं समझ आने लगी। यह भी मनोविज्ञान का एक प्रकार है कि जब मन विषयानुकूल परिस्थितियां पाता है तो इन्द्रियां उसी के अनुरूप क्रियाशील होती हैं और व्यक्ति स्वयं को उन विचारों से घिरा पाता है जो पूर्व में उसके मन में कभी उद्दीप्त नहीं हुआ हो। क्योंकि उसके भाव अथवा विकार प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस में गहरे दबे हुए होते हैं इसलिए उनका प्रस्फुटन तो स्वाभाविक है। यह भी सत्य ही है कि मानव मन की दशाओं के अनुकूल ही व्यक्ति को बाहरी परिवेश, प्रकृति, पदार्थ तथा प्राणी की उपस्थिति लगने लगती है। विस्वास को हॉस्टल वार्डन की पुत्रवधू की भावनाओं एवं व्यवहार को लेकर यह अहसास होता है कि यह सब विरोधी परिस्थितियों के कारण दमित इच्छाओं का परिणाम है। विवाह के पश्चात् अल्पकाल में ही युवावस्था के दौर में पतिवंचिता नारी जिसका पति दुर्घटना का शिकार हो गया हो तथा जिसने अपने जीवन के रंगीन स्वप्न उसके साथ देखे हों वह पेड़ से टूटी साख की तरह हो जाती है तिस पर भी परिजनों का दुर्व्यवहार अथवा उपेक्षा जीने की रही सही साध को भी समाप्त कर देती है।

जिसका चमन उजड़ गया हो तथा जिसे उस हादसे का अथवा उजाड़ का कारण मान प्रताड़ित किया जा रहा हो उसकी मन:स्थिति की तो कल्पना ही की जा सकती है। ऐसे में यदि कहीं से ाोह भरी दृष्टि मिल जाय या ऐसा लगने लगे कि कोई हमें समझकर हमारे अन्दर के ताप को हर लेगा तो उस शीतल बयार के प्रति लगाव अथवा झुकाव तो संभव होगा ही ना। यह परिस्थितिजन्य मनोविज्ञान है जिसकी आश्रय सुलभा भाभी और आलम्बन परिस्थितिजन्य अनुभूति है।

उपन्यास में माँ के ममत्व के मनोविज्ञान के साथ यौवन के उद्दाम आवेग को टकराते हुए भी दिखाया गया है। सुलभा भाभी केवल यही विचार कर कि वह अपनी पाँच वर्षीया अबोध पुत्री का जिसके जिम्मे उसके दादा भी ाोह रखते हैं, पालन-पोषण भली-भाँति कर ले, अपनी काम की तरंगों को भावी जीवन की तपती रेत में खो देती है। किन्तु मनुष्य के हृदय में बसे स्थायी भाव कभी दबते नहीं वरन् अवसर पाकर उद्‌भूत अवश्य होते हैं। यही हुआ जब सुलभा भाभी ने विस्वास को देखा तो उसका लगाम कसा कामतुरंग बरबस विस्वास की ओर दौड़ने लगा। वह विस्वास को भी अपने साथ यात्रा का सहभागी

बनाने के लिए तत्पर हो गया। अर्थात् विस्वास में भी सुलभा भाभी के प्रति काम का भाव उत्पन्न हुआ और सहज आकर्षण ने जन्म लिया। विस्वास के काम का अँगारा संस्कारों की परतों में दबा तत्क्षण प्रतिक्रियास्वरूप नहीं भड़कता वह शैनै शैनै उसके इर्द गिर्द की राख को हटाता अपनी चमक को उद्‌भाषित करता है। इन सब में भी सहायक उसकी परिस्थितियां ही होती हैं। सो विस्वास के साथ ऐसा ही हुआ। मनोनुकूल वातावरण से जब भावना की लहरें टकराती हैं तो उसका प्रभाव चेहरे की कान्ति से प्रकट होता है और मन जब अपनी इच्छित वस्तु अथवा अपने प्रिय के क्रिया-कलापों को निकट से अनुभव करता है तथा उसकी गतिविधियों से संलग्न होता है तो यह चमक आँखों के पानी में तैरने लगती है। इस सूक्ष्म अनुभूति को भी वही अनुभव करता है जो उससे अतिशयता से जुड़ा हो।

उपन्यास में मनोविज्ञान की तलहटी में बहने वाली धारा का प्रवाह विस्वास के विचारने की प्रक्रिया में निम्न शब्दों से अनुभूत होता है - 'जिस दिन से उसने उनके यहाँ ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ किया था , भाभी की आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक आ गयी थी। सादगी एवं निर्मलता की प्रतिमूर्ति भाभी को सुन्दरता ने आलिंगनबद्ध करने में लोकलाज की जरा भी परवाह न की थी।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 19)

जहाँ मन के तार जुडते हैं सहज आकर्षणरूपी विद्युत तरंगें वहाँ प्रभावित होकर चमक सी उत्पन्न करती हैं। यह आकर्षण का ही प्रभाव होता है जब रोजमर्रा की सामान्य वस्तुएं अथवा क्रियाएं अपनी सी अच्छी सी लगती हैं ।जिन बातों से अथवा जिन वस्तुओं पर पूर्व में कभी ध्यान नहीं गया हो या जिन्हें उपेक्षित कर दिया गया हो वही छोट-छोटी सी बातें भी ध्यान आकर्षित करती हैं, मन को जोडती हैं। जैसे, विस्वास का भाभी के कमरे तक आकर्षण के तहत खिंचकर चला जाना और उस जाने में आनन्दानुभूति करना। दूसरी तरफ भाभी का दरवाज़े की चौखट पर खडे होकर विस्वास की प्रतीक्षा करना या विस्वास द्वारा उन्हें प्रतीक्षा करते पाया जाना। यह स्थितियां सामान्य से विशेष की ओर संकेत करती हैं।

मन चमगादड़ की भाँति होता है जो यह नहीं जानता कि वह अपने निश्चित स्थान पर है अथवा अनिश्चित जगह मँडरा रहा है। वह तो आँखें बन्द किये उडान भरता रहता है, दीवारों से टकराता है और चिपक जाता है। विस्वास और सुलभा भाभी के बीच भी उम्र की दूरी है लेकिन आकर्षण में बँधे प्राणी

को यह दूरी का पैमाना नहीं दिखायी देता वह तो सिर्फ और सिर्फ अपने इच्छित को ही तलाशता है। इच्छित की अभिव्यक्ति का माध्यम कभी तो लोक लाजरहित प्रत्यक्ष निवेदन अथवा प्रस्तुतीकरण होता है, कभी वह अप्रत्यक्ष योजनाबद्ध तरीके का रूप अख्त्यार कर लेता है। ऐसी स्थिति में जो घटनाचक्र बनाया जाता है वह ठीक इस प्रकार होता है कि जैसे जल के प्रवाह को कोई लक्षित दिशा दे दी गयी हो।

सुलभा भाभी का अपने कमरे में आपत्तिजनक स्थिति में द्वारा खोलकर वहाँ रहना मनोविज्ञान के इसी सत्य को उद्‌घाटित करता है। विस्वास के 'सॉरी भाभी, मुझे दरवाज़ा खटखटाकर अन्दर आना चाहिए था' कहने के प्रतिउत्तर में सुलभा भाभी का यह कथन तो उसकी मन:स्थिति का सहज अभिव्यक्तिकरण ही है कि 'नहीं विस्वास, तुमने कोई गलती नहीं की। और तुम बडे भोले हो विस्वास। अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि मैं क्या चाहती हूँ। खैर छोडो इस बात को, पर इतना याद रखना कि इस घर के दरवाजे तुम्हारे लिए सदा खुले हैं और तुम जब चाहे आ-जा सकते हो। तुम्हें आने के लिए कभी दरवाज़ा खटखटाने की आवश्यकता नहीं।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 92)

स्त्री-पुरुष देह के मध्य संस्कारों का आवरण ही उनकी दूरी को बनाये रखता है। जहाँ यह आवरण हटा अथवा अनावृत्त हुआ फिर वहाँ कोई सामाजिक रिश्ता नहीं रह जाता। रह जाता है तो केवल शारीरिक सम्बन्धों का अहसास। इसीलिए सम्बन्धों की शृंखला से पहले मानव-मन में स्थापित नैसर्गिक वृत्तियाँ अपने मूलरूप में रहती हैं लेकिन सामाजिकता के क्षेत्र में आ जाने पर वह रिश्तों के प्रभाव से दमित हो जाती हैं। यही गाहे-बगाहे अपनी मूलता को उभारती जब बाह्य परिवेश से जुड़ती हैं तो सच्चरित्रता के दायरे को तोड डालती हैं। सुलभा भाभी की नग्न देह को देखकर विस्वास के शरीर में गुदगुदी होना इसी अनुभूति का परिचायक है। और फिर तुरन्त स्वयं को दोषी मानना इस भय का प्रतीक है कि कहीं भाभी ने तो उसे गलत नहीं समझ लिया। कहने का अभिप्राय यह है कि दोनों ही मानसिक धरातल पर एक-दूसरे का जान रहे हैं लेकिन सामाजिक स्थिति में आने पर उसके उद्‌घाटन से कतराते हैं।

चरित्रहीन की परिभाषा क्या है? सामान्य अर्थ में जो श्रेष्ठ आचरण से रहित हो वही चरित्रहीन है। किन्तु मनोवैज्ञानिक धरातल पर किसी के मनोनुरूप आचरण नहीं करना अथवा उसकी भावनाओं से खिलवाड़ करना चरित्र रहित

स्थिति है। देह का प्रदर्शन यदि साशय किया जाये, विपरीत लिंगी को आकर्षित करने के लिए किया जाए तो यह चरित्रहीनता है। अन्जाने में अनावृत्त देह दर्शन को चरित्रहीनता का द्योतक नहीं माना जा सकता।

मानव मन दुर्बलता का प्रतीक है। यह चँचल भी है। मनोविज्ञान के अध्ययन के उपरान्त यह तथ्य सामने आता है कि मन का चांचल्य ही प्राणी को अपने उदस्त स्वरूप से भटकाता है। इस मन को ही योगी साधना द्वारा निरत करते हैं। अत: जिस मन पर समस्त जीवन की साधना टिकी है वह मन चाहे विस्वास का हो या किसी अन्य पात्र का, परिस्थिति की दासता अवश्य स्वीकार करता है। 'विस्वास दृढ चरित्र पात्र है। वह सरला में ही अपने प्रेम के सच्चे स्वरूप को प्राप्त करता है।' यह कहना विभिन्न नारी पात्रों रूपी सुरंग से होकर निर्लिप्त भाव से लौट आने की स्थिति में तो संभव हो सकता था। किंतु जैसा कि मन दौर्बल्य से भरा होता है और सत्य अथवा यथार्थ भी यही है कि स्त्री का कमनीय रूप सदैव से ही पुरुष को लुभाता रहा है। स्त्री देह की दर्शनीय तपन ही उसके मोम से मन को पिघला देती है। विस्वास का सुलभा भाभी के मन के भावों को यथासमय नहीं समझ पाने की स्थिति को नासमझी बताना पुरुष की इसी मानसिकता का परिचायक है। यूं भी किसी के सांसारिक दु:खों के निवारण की औषधि देह की एकता में नहीं है। नारी भी पुरुष द्वारा उसके आमंत्रण के प्रति दर्शाये गये भाव से ठीक इसी प्रकार छिटककर दूर हो जाती है जैसे कोई कीट मनचाही जगह नहीं मिलने पर उछलकर इधर-उधर हो जाता है। यहाँ नारी मनोविज्ञान का एक पहलू है जो पुरूष के मन को टटोलकर उसकी अनभिज्ञता अथवा उपेक्षा से त्रस्त मौन धारण कर लेने के अर्थ में है। मन जब चिन्तन की अवस्था में हो और जिस विषय पर चिन्तन के लिए प्रस्तुत तथा क्रियाशील हो उस स्थिति में उसे तत्क्षण कहे गये शब्द या वाक्य उन्हीं मन:स्थिति के अनुरूप लगते हैं जिनके इर्द-गिर्द उसका मन भ्रमण कर रहा होता है। मिसेज घोष का यह वाक्य कि 'विश्वास दिलाकर जा रहे हैं, कहीं विश्वासघात मत कर देना।' विस्वास को सुलभा भाभी के साथ हुआ संवाद-सा लगता है।

सीधी-सरल पगडण्डी से समय की गति जब व्यक्ति को टेढ़े-मेढे रास्तों की ओर ले जाती है तो उसे अपने स्वभाव और भावनाओं में बदलाव दिखायी देने लगता है। ऐसे में उसे लगता है कि उसकी चेतना का प्रवाह जो कोई राह नहीं देख पा रहा था अब राह को जानने, समझने लगा है।

नवीनता मनुष्य के मन को आह्लादित कर देती है। विस्वास की मन:स्थिति में आये बदलाव से जो उसके परोन्मुखी होने के सन्दर्भ में है, होने वाली आनन्दानुभूति इसी परिवर्तन की द्योतक है।

काम का स्वप्न और उससे तरंगायित चित्त प्रत्येक मानव मन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। इससे वह चाहकर भी नहीं छूट पाता । चाहे यह उसे भटकाव ही क्यों न प्रदान करे। यहाँ प्राणी अपने अपयशी पूर्वाभास के उपरान्त भी उसी स्थिति में खोया रहता है उस परवाने की तरह जो शमा से जल जाने की स्थिति को जानने के बाद भी उसकी लौ में लिपटा रहता है। अत: मधुमक्खी की तरह मधु से लिपटा मन अपने प्राण रहते उस प्रक्रिया से मुक्त होना नहीं चाहता।

अवचेतन में सरला, सुलभा भाभी की छवि को गहरे उतारे हुए विस्वास श्रीमती घोष में उनका ही बिम्ब देखकर प्रसन्न होता रहता है। इस अवस्था में मन चलायमान हुआ अतीत से स्मृतियों की सीपियों को उठाता और उनमें से बिम्बों के मोती चुनता अपने को एक अलौकिक नगर के इर्द-गिर्द अनुभव करता है। यह अलौकिकता उसके सामान्य जीवन को उसी की दृष्टि में विशेष बना देती है।

विपरीततर का आकर्षण और अपनी चाहना की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति किशोरवय में झलकने लगती है। इस अवस्था में शारीरिक और मानसिक बदलाव इस आकर्षण और लगाव की अनुभूति का कारण बनता है। ऐसी स्थिति में एक-दूसरे के सामिप्य के लिए अभिव्यक्ति प्रत्यक्षत: किये गये क्रिया-कलापों में दिखलायी देती है। सरला का विस्वास के प्रति प्रेम नहीं वय का उन्माद है, सहज आकर्षण है जिसके तहत वह अपनी बुद्धि को गौण और भटका हुआ पाती है। वह सिर्फ विस्वास के इर्द-गिर्द ही अपनी चेतना का घूर्णन देखती है।

कोई भी शारीरिक चेष्टाएं यदि वह निरूद्देश्य हैं तो वह अपने विपरीत लिंगी को अपने आकर्षण के पाश में नहीं बाँध पाती किन्तु शारीरिक चेष्टाएं प्रेम को दृढता देने वाले उद्देश्य से की जाएं तो वह जुड़ाव का कारण बन जाती हैं।

सरला का आँख में कुछ गिर जाने का बहाना बनाना तथ विस्वास द्वारा तिनका निकालने का प्रयास सरला के उद्देश्यपूर्ण क्रियाकलाप से विस्वास की सहज भावनाओं में हलचल सा उद्वेलन करना है। मन पर बुद्धि का नियन्त्रण

उसे भावनाओं के प्रवाह में बहने से रोकता है। दृढ़ चरित्र प्राणी वासना के गहन जल में भी अपने आपको उसी तरह निर्लिप्त पाता है जैसे चन्दन विषैलो भुजंगों के प्रभाव से तथा कपूर हींग की सुगन्ध से। अत: विस्वास भी सरला की आँख में उस 'कुछ' को देखने लगता है जिसकी पीड़ा से सरला आँख मसलती दुखी होती है।

वासनारहित मन सामने वाले की उद्देश्यपूर्ण क्रिया को भी शरारत समझकर अपने चित्त में स्थापन नहीं देता। दूसरी तरफ उद्देश्यपूर्ण क्रिया-कलाप छोटी सी अभिव्यक्ति में आनन्द की अनुभूति देते हैं। विस्वास द्वारा सरला की चोटी खींचे जाने से सरला को हुई आनन्दानुभूति इसकी प्रतीक है।

वयनुसार भावनाओं का अस्थिरीकरण दु:स्साहसी कृत्य तो व्यक्ति से करवा लेता है किन्तु चोरी पकड़ी जाने की अथवा व्यर्थ वाद किए जाने की भयानुभूति उसे कातरता के भाव के लिए अवश्य विवश कर देती है।

सरला विस्वास के मन को टटोलने लगती है क्योंकि उसकी धारणा है कि पुरुष, वह भी यौवनावस्था से गुजरने की स्थिति में हो तो नारी-मन की उथल-पुथल को समझ लेता है या वह भी उसी के समानान्तर भावों से गुजर रहा होता है।

विस्वास द्वारा माँ को वास्तविकता के स्थान पर केवल पढ़ाई सम्बन्धी बात का बताया जाना सरला को अपनी विजय लगती है और वह विस्वास के और अधिक निकट आने की चेष्टा करती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य ही है कि जब भावनाओं के ज्वार पर किसी तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता तो वह बहुत वेग के साथ उठती है और येन-केन-प्रकारेण अपने उद्देश्य को पाना चाहती है। संयोग से अवसर की उपलब्धता उद्देश्य प्राप्ति की राह सुगम कर देती है। सरला के परिवार का नजदीकी रिश्तेदार के यहां शादी में जाना और सरला का परीक्षा के बहाने से नहीं रुकना इसी अवसर की ओर संकेत करता है।

चरित्र में दोष व्यक्ति की स्वभावगत विशेषता है। उम्र का आदेश और परिवर्तन की स्थिति में एक अन्जाना आकर्षण उसे अपनी ओर खींचने लगता है। ऐसे में किये गये क्रिया-कलाप चरित्रहीनता की परिधि में ले आते हैं। इससे बचाव के लिए ही माता-पिता अतिरिक्त सचेत होकर अथवा कठोर अनुशासन से भावनाओं के आवेग पर कठोर नियन्त्रण स्थापित करते हैं। जहां कहीं इस अनुशासन की लगाम में ढ़ील हुई, कुछ हादसा अकस्मात् घटित हो जाता है

जो जीवन के भविष्य में उस व्यक्ति की स्थिति निर्धारित कर देता है। जो इस दौर से नहीं गुजरते वह जीवन की उथल-पुथल की स्थिति से बच जाते हैं।

किशोरवय में होने वाले परिवर्तन लड़की को आत्ममुग्धा बना देते हैं। वह अपने रूप-सौन्दर्य से प्रभावित हुई स्वप्रशंसा की आकांक्षी बन जाती है। पुरुष की देहदृष्टि उसे लुभावनी और उसका सान्निध्य सुहावना लगता है। ऐसे में यदि आग और घी का सम्पर्क नजदीक हो जाये तो उसके द्रव्य को फैलने में समय नहीं लगता। सरला भी विस्वास के सान्निध्य से पिघलने लगी थी और अपने को अस्तित्वहीन पा रही थी। उसे लगा मानो विस्वास ही उसका सब कुछ है वह दृढ़ निश्चयी थी कि विस्वास के मन को अवश्य अपनी ओर मुखातिब कर लेगी। किन्तु विस्वास की हरकतें उसकी आकांक्षा के विपरीत होने पर वह खीझ जाती है। यह खीझ भी स्वाभाविक है और तब उत्पन्न होती है जब प्रयत्नपूर्वक भी कार्य मनोनुकूल न हो।

बहते पानी पर यदि बाँध नहीं बाँधा जाये तो उसका रूप उग्र हो जाता है। सरला की भावना की नदी भी इसी तरह उफन रही थी। उस पर अंकुश लगाना आवश्यक था। सरला के द्वारा किये गये व्यभिचारी व्यवहार ने यह अंकुश लगाने के लिए विवश कर दिया।

अपने चरित्र की उज्ज्वलता चाहने वाला अथवा सच्चा हितैषी वही होता है जो भटके हुए को राह दिखाये और कलुषितता से अपने प्रिय के दामन को पाक साफ रखे।

विस्वास सरला की गलती को क्षमा करते हुए उसके भटकाव को स्थिरता प्रदान करने की चेष्टा में रत उसे छोडकर दूसरे स्थान पर जाकर रहने में ही अपना व सरला का हित समझता है। वह तत्काल यह निश्चय करता है कि वह अब अधिक समय तक आग के नजदीक नहीं रहे क्योंकि वासना की यह आग सुलगकर उसको व स्वयं को जलाकर राख कर देगी।

यह भी मनोविज्ञान का सत्य ही है कि जो जितना प्रिय होता है वह उतना ही दूर चला जाता है या अलभ्य रहता है तथा ज्यादा लगाव अथवा आकर्षण प्रेम की डोर को तोड़ डालते हैं क्योंकि इससे या तो वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है या विषम परिस्थितियों का प्रभाव इसकी सघनता को विरल बना देता है।

व्यक्ति के स्वभाव में आया बदलाव भी परिस्थितिजन्य होता है। सम परिस्थितियां व्यक्ति को सहज बना देती हैं और विषम परिस्थितियां असहज,

क्रूर या एकदम शान्त। सरला भी विस्वास के जाने के पश्चात् असहज होकर मौन हो गयी। ऐसी स्थिति में प्राणी लक्ष्य का निर्धारण कर लेता है। सरला भी एयर हॉस्टेस बनना चाहती है और इसके लिए प्राणपण से तैयार रहती है। एयर हॉस्टेस बनने के स्वप्न के पीछे विस्वास का हाथ है अत: अपने हृदय में बसी विस्वास की छवि को ही वह अपनी प्रेरणा मानती है।

दृढ़ निश्चयी व्यक्ति अपने सपनों को साकार करते हैं। और दृढ़ निश्चय की नींव प्रेम के आधार पर रखी गयी हो तो उसकी मजबूती विलक्षण होती है। वह अनुभूति का विषय होती है अभिव्यक्ति का नहीं। सरला भी अपनी हर सफलता में विस्वास की स्मृति को संलग्न पाती है और विस्वास की प्रेरणा के पँख लगाकर उड़ना चाहती है।

प्रेम और जंग में डूबा व्यक्ति सामाजिक क्रिया-कलापों से कट सा जाता है क्योंकि दोनों ही क्षेत्र उत्साह के धारक हैं और लक्षित दिशा का संधान कर अपनी गतिविधियों को अंजाम देते हैं।

विवाह एक ऐसी संस्था है जिसमें व्यक्तिगत जीवन के साथ सामाजिक जीवन भी जुड़ा होता है। अत: बच्चों के किशोरवय को पार करते ही सामाजिक उनकी दिशा निर्धारित करने लगते हैं। माता-पिता का अधिकांश समय अच्छे रिश्तों की तलाश में निकल जाता है। यह संस्था समझौतों पर आधारित होती है। समझौते में यदि प्रेम का समावेश हो तो जीवन सँवर जाता है। प्रेम के अभाव में इनकी स्थिति एक-दूसरे को झेलने मात्र की रह जाती है। यह ठीक उसी प्रकार होती है जिसमें कि बिना ग्लू के लगाये सुन्दर कलाकृतियों का एक सामूहिक रूप बनाना जो प्रयत्नपूर्वक एक बार चिपक तो जाता है किंतु कुछ समयोपरान्त ही अनमने व्यक्ति सा उखड़ने लगता है।

सरला के विवाह प्रस्तावों में बिना दान-दहेज के सम्बन्धों का आना और सरला द्वारा इन्कार कर दिये जाने की प्रतिक्रियास्वरूप सामाजिक लोगों की कटाक्ष करने वाली उक्तियां सामाजिक मनोविज्ञान के यथार्थ को उकेरती हैं। जैसे पड़ौस की औरतों का सरला की माँ को यह कहना कि 'अरी बहना, अपनी लाड़ली को समझाओ जरा कि झोंपडी में रहकर महलों के ख्वाब न देखा करे। अरी आज पढ़े-लिखे लड़कों के रिश्ते बिना दान-दहेज के आ रहे हैं, कल कहीं ऐसा न हो कि झोली लेकर निकलना पड़े समाज में।' तथा सरला के पिता के मित्रों का सरला के पिता से कहना - 'अरे भैया, यह बेचारा जीपों

की स्टेपनी बदलते-बदलते ही बूढ़ा हो जायेगा, परन्तु इसकी बेटी तो हवाईजहाज की सैर करेगी दिन भर.....'

अन्यों से अलग दिखना और प्रगतिशील धारा में अवगाहन करना एक सुखद सी अनुभूति का अहसास कराता है। औरों की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति भी मनोविज्ञान का ही एक हिस्सा है। सरला की माँ मोनी चाची के प्रतिउत्तर में जब यह कहती है कि 'लेकिन तुम्हारी श्यामा केवल आठवीं तक पढी थी। और आज पढी-लिखी लड़कियां हैं हीं कितनी हमारे मोहल्ले में?' तो इसमें मनोविज्ञान का उपरोक्त पहलू ही झलकता है। सरला की माँ की आँखों में गर्व की चमक इसका ही परिणाम है। दूसरी तरफ प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति में दूसरे को पराजित करने से मिली हर्षानुभूति भी इसी मनोवृत्ति की परिचायक है कि पढे-लिखे होने से अधिक महत्वपूर्ण भाग्य का धनी होना है।

भाग्यवान लोग ही जीवन का सम्पूर्ण सुख भोग पाते हैं। जैसे श्यामा को सुन्दर और समर्थ पति मिला साथ ही प्यारा सा बच्चा भी। यह उपलब्धियां भी जीवन की सुखद अनुभूतियों में महत्वपूर्ण हैं। 'नारी ही नारी की दुश्मन है।' तथा 'रूढ़िग्रस्त समाज व्यक्ति के लिए अभिशाप है।' इन वाक्यों में भी मनोविज्ञान की धारा ही प्रवाहमान है। जब तक समग्र प्राणी अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं को दूसरों पर थोपते रहेंगे तब तक उद्देश्यहीन जीवन जीना ही व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में आता रहेगा। सरला का अन्ततोगत्वा विवाह का निर्णय करना इसी कशमकश का परिणाम रहा।

किसी भी व्यक्ति के जीवन में कोई घटना, हादसा या व्यक्ति अपनी अप्रत्यक्ष उपस्थिति से यह अहसास कराये कि उसका होना ही उसके जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है तो मन इसे ही विजय का मूल मंत्र मानकर सभी अनइच्छित प्रकरणों पर पटाक्षेप कर देता है। तथा केवल उसी रौ में बहता रहता है जो सीधे-सीधे उसके मूलमंत्र से जुड़ी रहती है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दोराहे या चौराहे अवश्य आते हैं वहाँ उसकी जीवन की गाड़ी अपनी गति को विराम देती चयन की स्थिति में विवशता की अनुभूति करती है। 'कैरियर या गृहस्थी' (माता-पिता को जिम्मेदारी से मुक्त करना)सरला भी यह सब सोचती है।

किसी भी व्यक्ति की जिन्दगी में प्रेम का अंकुरण एक बार होता है। जो वास्तविक होता है उसके पश्चात् किये गये प्रेम के स्वरूप परिस्थितिनुरूप

बनते-बिगडते रहते हैं। सरला का मनरूपी पक्षी विस्वास के प्रेम के पिंजरे में कैद था। विस्वास ने उस पिंजरे के द्वार खोल रखे थे किन्तु वह उससे दूर अन्यत्र नहीं जाना चाहता था।

कभी-कभी परिस्थितियां सच्चे प्रेम को (जो आत्मा का आत्मा से किया गया प्रेम है, देह या मन से किया हुआ नहीं) अवचेतन की ओर धकिया देती हैं। ऐसे में चेतन के क्रिया-कलाप बाह्य जगत के सरोकारों (व्यक्ति और समाज) के साथ इस प्रकार जुड जाते हैं कि लगता ही नहीं कि यह व्यक्ति प्रेम के सागर की गहनता को स्पर्शित कर आया है। वह एक सामान्य से प्राणी के जैसी गतिविधियों में संलग्न लगता है। सरला भी माँ के कामों में हाथ बँटाती हुई सामान्य व्यक्ति की तरह ही विचार करती है कि जिस माँ ने कष्ट सहकर मेरा पालन पोषण किया है तथा जिन्हें मेरे विवाह प्रसंग के कारण समाज की प्रताडनाओं को सुनना पड़ता है ऐसी परिस्थितियों में मुझे कैरियर से मोह त्यागकर विवाह के पक्ष को स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन उसका अन्तर्मन पुन: उसे प्रिय की आकांक्षाओं पर खरा उतरने के लिए कैरियर के मार्ग पर ले जाने के लिए प्रेरित करता है क्योंकि दुविधायें किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति के जीवन में आती हैं। कभी दो पक्षों में से चयन तो कभी अनेक राहों की चकाचौंध लक्ष्य को दिग्भ्रमित कर देती है।

देह का विज्ञान स्त्री और पुरुष के रूप में एक-दूसरे की आकांक्षा का कारण रहा है। इसमें चुम्बकीय तत्व आकर्षण का कारक है। शुद्ध देह के केन्द्र में तो सम्बन्ध शारीरिक आकृति विशेष रहते हैं जो स्त्री-पुरूष के रूप में चिन्हित होते हैं। किन्तु इससे आगे जब सामाजिकता का इसमें समावेश होता है तो मन पर बुद्धि का नियंत्रण विभिन्न सम्बन्धों के निर्वहन का सूचक बनता है अत: रिश्तों में पवित्रता तभी संभव है जब व्यक्ति मन के दायरे से ऊपर उठकर बुद्धि से प्रेरित अपनी मर्यादाओं को समझकर कार्य करे। आशीष जो कि सरला का ममेरा भाई है, सरला में नारी सौंदर्य को प्राथमिकता देता बहिन के रिश्ते की पावनता को सामाजिक स्तर पर बाह्य रूप में ही देखता है अत: रिश्ते की आड़ में वह उसकी निकटता की पहुँच बनाता है। उसकी मानसिक स्थिति को यदि जाँचा जाये तो वह मात्र शारीरिक आकर्षण से बँधा है। न वह प्रेमी है और न ही प्रतिशोधी। वह तो सौंदर्य से भरपूर देह का चाहने वाला लगता है।

सरला को तिरछी निगाहों से, चोर निगाहों से देखना उसकी नारी देह लोभी दृष्टि का ही परिचायक है। सरला के हाथ से चाय का प्याला लेते हुए

मन में अस्थिरता आना भी आशीष का सम्बन्धों से परे देह के दायरे में कैद होने का ही सूचक है। वह सरला के शारीरिक सौंदर्य पर मुग्ध है। यदि सामाजिक सम्बन्धों के धरातल पर विचारा जाये तो आशीष की दृष्टि जो प्रेयसी के लिए होनी चाहिए उसका बहिन के प्रति होना उसके मानसिक दिवालियेपन की निशानी है। सरला के विवाह में उसके द्वारा धन-दौलत की वर्षा किए जाना यूं तो उसकी उदारता कहा जा सकता है किन्तु उसके पीछे छिपी मनोभावना एक ऐसे व्यक्ति के मनोविज्ञान की गाथा कहती है जो डोर में काँटा डालकर मछली को अपनी ओर खींचना चाहता है, उसे प्राप्त कर अपना बनाना अथवा उसके बन्धन की डोर से बँधना नहीं चाहता। यह भी कहा जा सकता है कि सरला के दैदीप्यमान रूप को निहारने और उसे आत्मसात् करने के अवसरों के लोभ में आशीष सरला के विवाह की जिम्मेदारी निभाता है। वह सरला से पन्द्रह वर्ष बड़ा है किंतु दैहिक आकर्षण में वय की लम्बाई-चौड़ाई कोई मायने नहीं रखती। अर्थ रखता है तो स्त्री का स्त्रीत्व और पुरुष का पुरुषत्व। जो उन्हें शरीर के माध्यम से शारीरिक सुख प्रदान करता है।

शिक्षा और मनोविज्ञान का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो मनोविज्ञान जीवन के व्यावहारिक पक्ष से अधिक संलग्न है और शिक्षा सैद्धान्तिक पक्ष से। शिक्षा से व्यक्ति बहुआयामी क्षेत्रों से जुड़ सकता है और बाह्य जगत् से अधिक से अधिक ज्ञानार्जन कर सकता है। सरला की माँ जिसने चार कक्षा तक भी शिक्षा न पायी थी जीवन के अनुभव से जो सीख सरला को दे रही थी यह उसके व्यावहारिक ज्ञान का ही द्योतक थी जिसे उसने अपने आस-पास के परिवेश और घटित घटनाओं के आधार पर प्राप्त किया था।

❑❑❑

23

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की 'अभिव्यक्ति' का यथार्थ : एक विहंगावलोकन

डॉ. मीनू अरविन्द

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक यथार्थवादी लेखक हैं जिन्होंने यथा सम्भव जीवन के विवध पक्षों को अपनी लेखनी से साकार किया है। उनका उपन्यास 'अभिव्यक्ति' उनके मन के दीर्घकालीन आलोड़न-विलोड़न की उत्पत्ति है और उपन्यास जगत् में मानव जीवन के भावनात्मक यथार्थ को उकेरने वाला सम्भवत: यह उनका विशिष्ट प्रकार का सृजन है।

यह उपन्यास मात्र एक प्रेम विषयक उपन्यास न होकर व्यक्ति की अभिव्यक्तिहीन अवस्था की छटपटाहट में उसकी जीवन यात्रा का वृत्तान्त है जो उसके पथ की इस आशा के साथ प्रशस्ति की व्याख्या करता है कि कभी न कभी तो उसके आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति होगी ही और वह उस सन्तुष्टि को अवश्य प्राप्त करेगा जो उसकी प्रेरणा है।

उपन्यास केवल प्रेम या आकर्षण को ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु आधुनिक युग में मूल्यों की विशृंखलता एवं व्यक्तित्व के विघटन को भी प्रस्तुत करता है। आज जीवन में सामान्यत: घटनाएं घटती हैं, परन्तु उनके घटने का कारण कभी -कभी अप्रत्याशित रूप से उत्पन्न होने वाली स्थितियां भी होती हैं। प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि व्यक्ति के लिये ये घटनाएं कष्टकारी हों तो जिम्मेदार किसे ठहराया जाये, व्यक्ति को, घटनाओं को या उन स्थितियों को जिनके कारण यह सब घटित हुए? इन पेचीदा प्रश्नों की जानकारी भी इस उपन्यास में मिलती है। सम्भवत: इसी अर्थ में उपन्यास की नायिका सरला एवं

*प्रवक्ता (मनोविज्ञान), रामेश्वरी देवी कन्या महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

विस्वास, जिनके चारों ओर कथा घूमती है, अगत्या उस स्थिति में खड़े होते हैं, जहाँ ऐसी स्थितियों के कारण घटनाएं घटती हैं। उपन्यास की नायिका सरला को विधवा हुए पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये हैं। उसके ममेरे भाई आशीष के उसके प्रति किसी प्रकार के अन्यथा भाव हैं, सरला इस ओर से अनभिज्ञ है और इसी क्रम में किसी स्थितिजन्य घटना को उपन्यासकार ने अपने लेखनी से बड़ी ही जीवन्तता के साथ उकेरा है।

'आशीष ने पलंग पर पड़ी रजाई को खोल लिया था और पास जाकर बैठ गई सरला को भी अपनी रजाई में ले लिया। सरला को जब आभास हुआ तो चौंक पड़ी- 'भईया खाना लाऊं आपके लिए?'

'अरे भई बैठो अभी तो, फिर पता नहीं कब मिलेंगे।'

फिर सरला की ओर साशय ताकते हुए पूछा था उसने- 'एक बात पूछूं सरला?'

'क्या? उसने आशंकित होकर पूछा था।'

'क्या तुम बिना ब्याह के अपना जीवन बिता सकोगी?'

आशीष के इस प्रश्न से सरला चेतनाशून्य होकर विगत में खो गई-

उसे लगा, विस्वास उसे गणित के सवाल समझा रहा है और उसे परखने के लिए कोई प्रश्न पूछ रहा है। परन्तु उसका ध्यान पढ़ाई में न था। उसने दो-तीन बार जम्हाई ली और विस्वास की ओर लुढ़क गई पलंग पर।

विस्वास ने उसे गोद में उठाया और उसके कमरे की ओर चल दिया। उसने उसे ले जाकर बिस्तर पर पटक दिया और सरला ने विस्वास को अपनी बाँहों में भर लिया।

इस अप्रत्याशित घटना से आशीष को लगा मानो सरला उसे बहुत दिनों से चाह रही थी और आज अवसर का लाभ उठाकर उसने अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया।

यहाँ पर घटित घटना की पृष्ठभूमि में एक स्थिति थी- सरला का उपन्यास के नायक विस्वास के प्रति अनभिव्यक्त प्रेम एवं आकर्षण जिसके संचारी भावों ने सरला के मस्तिष्क को चेतनाशून्य कर दिया और उसे आशीष में अपने प्रेमी विस्वास की छवि का भ्रम हो गया जिसने एक स्थिति को जन्म दिया और सरला के जीवन में एक अप्रत्याशित घटना घटित हो गई। यहाँ यदि सरला को

दोष दिया जाए तो ग़लत है, क्योंकि यहाँ प्रश्न मनोवैज्ञानिक धरातल पर परिस्थितियों के विश्लेषण की मांग करता है। कोई व्यक्ति एकाएक पागल नहीं हो जाता है। उस पर उन अनभिव्यक्त भावनाओं का प्रभाव होता है, जो उसे कोई अप्रत्याशित कृत्य (जिसे नासमझी में दुष्कृत्य मान लिया जाता है) करने हेतु बाध्य करता है। सरला के ममेरे भाई आशीष द्वारा किया गया यह आचरण भी इसी मनोवैज्ञानिक पक्ष का विषय है और जो अनादिकाल से मानव जीवन में होता आया है। इस बात के प्रमाण इतिहास में यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। इस प्रकार डॉ. शर्मा ने स्थितियों एवं घटनाओं की मनोवैज्ञानिक धरातल पर बड़ी ही सूक्ष्म और यथार्थपरक व्याख्या निर्भीकता एवं लेखकीय ईमानदारी से की है।

एकाएक विस्वास ने मिसेज घोष की ओर देखते हुए आह भरकर कहा था- 'हाय, तुम कितनी सुन्दर हो।'

मिसेज घोष विस्वास की इस प्रकार की स्पष्ट अभिव्यक्ति से अधीर हो उठीं और उन्होंने तुरंत विस्वास का हाथ पकड़कर उसे अपने अंक में समेटते हुए कहा था- 'मेरा विश्वास करना विस्वास, मैं तुम्हें चाहती हूँ अपने अकेलेपन का साथी चाहती हूं जो समाज की मर्यादाओं के झूठे आवरण में भी मेरे अकेलेपन का साथ दे सके, यह सौदा ही सही पर तुम इसे निभाओगे। आशा है कि तुम मुझे निराश न करोगे।'

विस्वास अपने आपको रोक नहीं पाया और मिसेज घोष को अपने आगोश में लेकर किसी कल्पना को मूर्त रूप देने में सुख का आनंद लेने लगा। उसे लगा मानो आज एक लम्बे अरसे के पश्चात् उसे किसी असहनीय पीड़ा से मुक्ति मिल गई है। (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 60)

यहाँ भी विस्वास के साथ ऐसी ही घटना घटित होती है जो पूर्व में सरला के साथ घटित हुई थी। वहाँ पर सरला को आशीष में विस्वास होने का भ्रम हो गया था और यहाँ पर विस्वास को मिसेज घोष में अपनी प्रेमिका सरला होने का भ्रम हो गया और एक घटना घटित हो गई। लेखक ने विस्वास के माध्यम से इसे स्पष्ट किया है- 'विस्वास को लगा मानो उसे मिसेज घोष के रूप में सरला मिल गई है। उसकी आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी और मिसेज घोष को बार-बार अँक में भींचता हुआ प्रायश्चित करने लगा।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 60)

अपनी प्रेमिका सरला को पूर्व में न की गई अभिव्यक्ति एवं इससे उसको पहुँची पीड़ा से पीड़ित हो अपनी सरला के इस मिलन को पुष्टता देने को वह प्रायश्चित मानता है।

'अभिव्यक्ति' उपन्यास मानव-जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करता है -

अंध विश्वासों का नि:रूपण

हमारे समाज में नारी कितनी ही शिक्षित एवं सुसंस्कृत हो जाए, परन्तु रूढ़ियों के प्रति आज भी वह उतनी ही संवेदनशील रहती है। आस-पड़ौस की औरतें जब भी शोक संवेदना के लिए अभय की माँ के पास आती तो जाते-जाते कह ही जाती-'बहन जी बहू का पगफेरा ठीक नहीं है।'

कोई-कोई औरत उदाहरण देती- 'अरी, जड़ी बुआ के बेटे को खा नहीं गई थी उसकी दुल्हन शादी के अगले ही दिन?'

'हाँ भईया, डायन थी डायन। अरे शकुन-अपशकुन, गृह-नक्षत्र सब कुछ झूठे थोड़े ही होते हैं?' कोई और औरत उसकी बात को समर्थन देती-

'बहन जी, बुरा मत मानना, परन्तु हमारे अभय की मौत का कारण इस अपशकुनी सरला का इस घर में आना ही है।'

गुट्टन बुआ की बात से सरला की सास का माथा ठनका। उसके दिमाग में रह-रहकर शादी के बाद की समस्त बातें, सरला का व्यवहार और खोया-खोयापन चक्कर काटने लगा। वह सोचने लगी-

'यह लड़की जरूर अपशकुनी है तभी तो इतना बड़ा हादसा हुआ हमारे घर में। अब मेरे घर में इसके लिए कोई स्थान नहीं। कल ही मैं इसके घर कहला भेजूंगी कि इस डायन को कोई आकर ले जाए यहाँ से।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 50)

अभिव्यक्ति का अधूरापन

अभय ने आँखें खोल ली थीं। समस्त परिजनों के हर्ष का पारावार न था। उसने नजरें घुमाकर अपने माता-पिता को देखा और अन्त में निगाहें सरला पर आकर टिक गई मानो वह अपने अन्तर में संजोए मन के भावों की उसके समक्ष अभिव्यक्ति करना चाह रहा हो। सरला भी अपने पश्चाताप की, अपने

गुनाहों की आज अभय के समक्ष स्पष्ट अभिव्यक्ति कर देना चाहती थी। आज न उसे सासू माँ का डर था और न ही लोक-लाज एवं समाज की चिन्ता। बस वह तो उतावली हो रही थी अपने मन के भावों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर देने को। उसे लगा जैसे यही वह उपाय है जिससे वह सदा-सदा के लिए अपने मन का बोझ हल्का कर सकती है।

मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर कभी-कभी ही आते हैं जब वह अपने मन के भावों को किसी के समक्ष अभिव्यक्त करना चाहता है और उसे इसका अवसर मिल ही नहीं पाता। सरला के जीवन में भी ऐसा एक अवसर आकर निकल चुका था और आज वह इस अवसर को अपने हाथ से निकलने देना नहीं चाहती थी।

उसे यह भी लगा कि अभय अपने मन की कोई बात उससे कहना चाहता है परन्तु पीड़ा के मारे कह नहीं पा रहा।

वह उसके सिरहाने जाकर बैठ गई। अभय की आँखों में आँसू देखकर वह भी अपनी रुलाई को न रोक पाई।

अभय ने उससे कुछ कहने का प्रयास किया, परन्तु अपने मन की बात वह अपनी जीवन संगिनी को कह नहीं पाया। उसने विवशता के साथ एक बार पुन: सरला को देखा और उसकी आँखें सदा-सदा के लिए बंद हो गईं।

जीवन एवं दर्शन की अभिव्यक्ति

जब व्यक्ति को किसी की उपलब्धि हो जाती है, उसका सामिप्य उसे मिलने लग जाता है, तो कुछ समय पश्चात् वही उपलब्धि उसके लिए कांतिविहीन हो जाया करती है, इसमें व्यक्ति का दोष कम और मानव स्वभाव का प्रभाव अधिक होता है।

मनुष्य का जीवन भी मृग मरीचिका के सदृश होता है। जो वस्तु उसे मिल जाती है उससे वह संतुष्ट नहीं होता और वह उसे अन्यत्र पाने के भ्रम में दिशाविहीन एवं विवेकशून्य होकर अबाध गति से भागता रहता है।

मानव स्वभाव से ही अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर की वस्तुओं को प्राप्त करने हेतु लालायित रहता है। और स्त्री के विषय में तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सुर-असुर और रावण जैसे विद्वान पंड़ित तक नीति-अनीति की परवाह किए बिना भ्रमित होते देखे गए हैं।

मनुष्य के जीवन में अनेक घटनाएं घटती हैं और उसे नये-नये अनुभव होते हैं जिनके कारण वह अपने अतीत में इन घटनाओं एवं अनुभवों में जीवन के सूत्रों को महसूस करता है। इसे उपन्यासकार ने यत्र-तत्र दर्शाया है- 'कभी-कभी हम अपने जीवन की बीती हुई परिस्थितियों का साक्षात्कार दुबारा नहीं करना चाहते हैं। इसका कारण भले ही स्वयं को जीवन के अतृप्त विषयों से उत्पन्न होने वाली वेदना से अपने आपको मुक्त रखना हो या स्वजनों के हितार्थ अपनी भावनाओं का बलिदान। परन्तु विगत के कथासूत्र, बेमन से विस्मृत कर दिए गए आलम्बन आदि व्यक्ति के जीवन में किसी न किसी रूप में अवतरित होते ही रहते हैं, और जो व्यक्ति इनसे दूर भागकर भी आत्मिक संतुष्टि प्राप्त न कर पाया हो उसे इनके पुनर्दर्शन से आत्मसंतुष्टि होती है। वह इनके दर्शन में अपनी किसी भूल का प्रायश्चित जान, तद्नुसार आचरण करने से अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रख पाता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 80)

'और वह उस दिन विस्वास के कन्धे पर आश्रित होकर की गई अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति को भी अनुचित मानते हुए पीड़ा से आहत हो गई। परन्तु उसके मन का एक पक्ष उसे आश्वस्त करता- 'तुमने कोई ग़लत काम नहीं किया मनीषा। तुमने वही किया जो तुम्हारे मन ने कहा। व्यक्ति का मन उसकी भावनाओं का यथेष्ठ संवाहक है। यह तो एक वैदिक काल से ही चला आ रहा सत्य है कि आत्मा ईश्वर का प्रतीक है और स्वयं की आत्म संतुष्टि के लिए किया गया कोई कार्य कदापि दुष्कृत्य नहीं हो सकता। और क्या कोई कार्य केवल इसलिए ही बुरा मान लिया जाए कि वह एक स्त्री द्वारा किया गया है। और वह अपने मन के निर्णय से आश्वस्त हुई कि उसके द्वारा किया गया कार्य अनुचित नहीं है।

वह इसी तर्क-वितर्क में दिग्भ्रमित सी हो गई थी और इसी कारण से अपनी भावी गति को ठोस दिशा देने में वह अपने आपको असमर्थ पा रही थी। ऐसी दशा में व्यक्ति किसी उचित को भी स्वीकारने से कतराता है। प्रकट में भले ही वह इसका प्रतिरोध करे, परन्तु स्पष्ट एवं प्रभावी अभिव्यक्ति की दशा में वह अप्रत्यक्ष एवं मौन अभिव्यक्ति के रूप में अपने आपको पूर्णरूपेण समर्पित करने हेतु सदैव तैयार रहता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 97-98)

शब्दों की नवीन परिभाषा - बेमेल विवाह : बलात्कार

सरला विश्वास को चाहती थी और उसे अपने जीवन साथी के रूप में अपनाना चाहती थी परन्तु वह अपने भावों की उसके समक्ष स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं कर पाई और कालान्तर में उसका विवाह अनचाहे ही सेना के एक अधिकारी अभय के साथ हो गया। न चाहते हुए भी उसे एक पत्नी के रूप में अपने आपको अभय को समर्पित करना पड़ा। यह उसके शरीर की अपने अनचाहे पति को अनचाही प्रस्तुति थी, अत: लेखक ने सरला के मुख से इसे बलात्कार कहलवाया है और जब उसका ममेरा भाई एक अप्रत्याशित स्थितिवश उसके शरीर को भोगता है तो सरला उसे अपने शरीर से दूसरी बार बलात्कार मानती है। अर्थात् अपने पति अभय द्वारा विवाहोपरान्त किए गए भोग को भी वह बलात्कार ही मानती है।

'सरला के साथ आज जीवन में दूसरी बार उसकी अनभिव्यक्त भावनाओं का बलात्कार हो गया था और वह तड़पकर विवश हो गयी थी चुप रहने को।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 56)

भारतीय नारी की विवशता का चित्रण

'ऐसा कितनी ही अबलाओं के साथ होता है जीवन में, जब वह अपनी अस्मत लुटाकर भी केवल मूक बनी चुप रह जाने को विवश होकर रह जाया करती हैं। ऐसी स्थिति में क्या वे इसे बलात्कार साबित कर सकती हैं? कभी नहीं। कौन मानेगा उनकी इस बात को, उन विषम परिस्थितियों को जिनके कारण उनके साथ ऐसा दुष्कृत्य हुआ। और यदि उनकी बात मान भी ली जाए, तो क्या हमारा समाज ऐसी स्त्री को एक भद्र महिला के रूप में स्वीकार करेगा? कदापि नहीं। उन पर इस सत्य के उजागर हो जाने के कारण और अधिक अत्याचार होंगे और समाज के तथाकथित भद्र और सफेदपोश लोग उन्हें संरक्षण की आड़ में सदैव नोचते रहेंगे। क्या पता हमारे देश में अकारण एवं अनिच्छापूर्वक कोठों और आधुनिक होटलों में हमारी कितनी ही माताएं एवं बहनें इस दलदल में फँसती चली गई होंगी।'

सरला को अब आशीष से घृणा हो गई थी, परन्तु इससे भी अधिक घृणा उसे अपने आप से हो गई थी। वह सोचने लगी-

'इसमें मेरा दोष अधिक है। क्यों बहकी मैं विस्वास के आलम्बनों में, उसके प्रेम में?'

फिर उसे निश्चय किया- 'अब मैं जीवन में कभी आशीष के सामने न पड़ूंगी। मैं शहर चली जाऊंगी अपनी पढ़ाई पूरी करने और फिर यहाँ कभी नहीं लौटूंगी।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 56)

भाषा का अलंकरण

उपन्यासकार की भाषा काव्यमय है जो उनके कवित्व-भाव को प्रकट करती है- 'दीदी की चूड़ियों की खनखनाहट आज इतने वर्षों के पश्चात् उसे व्यथित किए दे रही थी। आज उसे लग रहा था मानो दीदी किसी सरगम का स्वर हो। और सरगम के बिना सार्थक स्वरों का मिलन न हो तो राग की उत्पत्ति की कल्पना तक करना व्यर्थ है। उस समय सुशीला के स्वरों को वह अपने में समाहित न कर पाया था, परन्तु आज वह उसकी सरगम का स्वर बन गई थी और उसमें राग परिलक्षित हो रहा था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 69)

विवाहोत्सव बड़ी ही धूमधाम से सम्पन्न हुआ। दीदी ने खूब गहनें पहन रखे थे और आसमानी रंग की साड़ी में तो उनका मुख सन्ध्या के सूरज का सा आभास दे रहा था। सन्ध्या पूर्व का सूरज आज सन्ध्या का सूरज बन गया था। दीदी हौले-हौले अपने करोड़पति पति के साथ फूलों से सजी हुई एक बहुत ही आलीशान कार की ओर चली जा रही थी। उसे लगा, मानो सूरज तीव्रता से अस्ताचल की ओर बढ़ता जा रहा है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 75)

'दुबली-पतली मनीषा ईश्वर द्वारा निर्मित सुंदरता की ऐसी प्रतिमूर्ति थी जिसकी ओर विस्वास का मन खिंचता ही चला गया। उस मौन प्रतिमा के थिरकते केश विस्वास को चन्द्रमाँ के बादलों की ओट में होने का आभास दे रहे थे। उसके गले में फहरी चुनरी ऐसे प्रतीत हो रही थी मानो अभी-अभी बारिश हुई हो और चन्द्रमा इन्द्रधनुष के आगोश में आ मदमस्त हो गया हो। बारिश के थमने की बाट जोहते विस्वास का मन इन्द्रधनुष की सतरंगी छटा में चन्द्रमाँ के धरातल पर से हटने का नाम ही ना ले रहा था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 94)

यहाँ पर उपन्यासकार के कवि हृदय ने नारी-सौन्दर्य का उन्मुक्त वर्णन किया है। गले से लिपटी चुनरी को सतरंगी इन्द्रधनुष के रूप में देखकर वे नारी मुख को ऐसे चन्द्रमा के रूप में देखते हैं जो इन्द्रधनुष के आगोश में आ और अधिक सुन्दरता का आभास दे रहा है।

लेखक की कल्पना शक्ति और भाषा का अलंकरण, वह भी लकीर से हटकर। तभी तो उन्होंने नारी के सुन्दर मुख को न तो उदित होते हुए और न ही अस्ताचल की ओर जा रहे सूरज की उपमा दी है अपितु उसे चन्द्रमा की उपमा दी है जो अपने आप में अद्वितीय है।

नारी-सौन्दर्य का नवीन उपमाओं के साथ इस उपन्यास में जो सूक्ष्म चित्रण किया गया है वह साहित्य जगत् में सर्वथा नवीन है।

'गीले कपड़ों में लिपटी आभा की दमक से वह अधीर हो उठा था। आज उसे विस्वास ही नहीं हो रहा था कि जो उसके समक्ष सम्पूर्ण रूप में भीगी खड़ी है यह वही आभा है जो सदैव सहज रूप में उसके सम्मुख रहा करती थी। उसे लगा मानो वह किसी अकल्पनीय एवं अलभ्य प्रतिमूर्ति से साक्षात् कर बैठा है। आभा के आंगिक उभार जो भीगे कपड़ों में बाहर आ जाने को व्याकुल हो रहे थे, उसके धैर्य को चुनौती दे रहे थे।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 104-105)

आभा बाथरूम में कपड़े धो रही थी इसलिए उसने साड़ी उतारकर बाथरूम में एक ओर पटक दी थी। कपड़े धोने से उसके स्वयं के पहने हुए कपड़े भी भीग गए थे। आभा के आंगिक उभारों को भीगे कपड़ों में देखकर उपन्यास के नायक विस्वास के मन में जो भाव आए उन्हें लेखक ने विशेष प्रकार की उपमा दी है। अनोखी उपमा-

'विस्वास बाल्टी लिए हुए बोझिल कदमों से सीढ़ियाँ चढ़ रहा था परन्तु भीगी हुई आभा के तराशित गात का आकर्षण उसे नीचे की ओर खींचे जा रहा था। उसने पलटकर एक बार नीचे बाथरूम में झाँका। उसे लगा मानो बारिश अभी-अभी होकर थमी है और आकाश की नीलिमा के उस पार असंख्य सितारे, भीगा हुआ स्वच्छ चन्द्रमाँ उसे आमंत्रण दे रहे हैं।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 105)

यहाँ लेखक नारी मुख को एवं उसके आंगिक उभारों को आकाश की नीलिमा के पार झाँककर भी चाँद-सितारों के रूप में देखता है।

घटनाओं की पुनरावृत्ति

विस्वास के अध्ययनकाल में, जब वह बम्बई के एक छात्रावास में रहता था एक घटना घटित होती है- वार्डन की विधवा पुत्रवधू, जिसे विस्वास भाभी कहता था, उसके मन में भी कुछ भावनाएँ थीं, और संभवत: अब तक उसकी ये भावनाएं अभिव्यक्तिहीन अवस्था में करवटें बदल रही थीं। वह नित्य भाभी की नन्हीं बेटी को ट्यूशन पढ़ाने जाया करता था। एक दिन ज्यों ही उसने दरवाज़ा खोला तो भाभी की स्थिति को देखकर हतप्रभ रह गया- 'दरवाजा हल्का सा उढ़का हुआ था। गुड़िया उसे हॉस्टल के लॉन में बच्चों के साथ खेलते हुए पहले ही दिखाई दे गई थी। वह अपने नियत समय पर प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी कमरे में दाखिल हुआ। भाभी ड्राईंग रूम में ही कपड़े बदल रही थी। उसकी आँखें भाभी को इस दशा में देखकर चौंधिया गईं। एक क्षण के लिए उसे लगा मानो यह अलौकिक दृश्य उसे संजीवनी प्रदान कर रहा है। भाभी के उभरे हुए वक्ष एवं गोल-मटोल देह उसके सारे शरीर में गुदगुदी पैदा कर रहे थे। उसे लग ही नहीं रहा था कि यह वही भाभी है जो प्रतिदिन उसके पास बैठी बतियाती रहती थी। उसे लगा मानो वह स्वर्गलोक में आ गया है। उसे सामने पा भाभी की नज़रें उससे मिलीं जो उसे अनोखा आमंत्रण दे रही थीं।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 20)

जीवन का लम्बा सफर तय कर चुका होता है विस्वास, परन्तु उसकी मनोवैज्ञानिक भावनाओं एवं किसी अभिव्यक्तिहीन अवस्थाओं को अभी तक पूर्णता नहीं मिली है। उसके जीवन में पुन: इसी प्रकार की एक घटना की पुनरावृत्ति होती है। उसकी मकान मालकिन आभा बाथरूम में कपड़े धो रही थी। विस्वास इस बात से अनभिज्ञ दरवाज़े को धक्का मारकर ज्यों ही घर में प्रविष्ट हुआ दाँयें हाथ को स्थित बाथरूम में भीगे कपड़ों में खड़ी आभा को देखकर चौंक पड़ा- 'बाथरूम में जीरो का बल्ब जल रहा था। आभा की भीगी हुई साड़ी एक कोने में पड़ी हुई थी। कपड़े धोने से उसके शरीर के सारे कपड़े भीग जाने से पारदर्शी परिदृश्य उसे एक शीतल आमन्त्रण दे रहा था। विस्वास की दृष्टि जो एक बार उस ओर जाकर टिकी तो वहाँ से हटने का नाम ही न ले रही थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 104)

गीले कपड़ों की निर्मलता, और जब उसमें आर्द्रता भी मिल जाए तो एक विरहोत्कण्ठिता की क्या दशा-व्यथा हो सकती है, इसे समझ पाना बड़ा ही कठिन है, और उतनी ही कठिन व्यथित हेतु इसकी अभिव्यक्ति होती है और अभिव्यक्तिहीन दशा का आभास करना तो और भी कठिन कार्य है।

आभा स्तम्भित सी खड़ी विस्वास को अपलक निहार रही थी। वह भी अवाक् सा स्तब्ध ही खड़ा रहा। उसे लगा मानो अभी-अभी उसने बाथरूम की कुण्डी बन्द की है और सरला ने अँधेरे में उजाला पैदा कर दिया है।

'गीले कपड़ों में लिपटी आभा की दमक से वह अधीर हो उठा था। आज उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जो उसके समक्ष सम्पूर्ण रूप में भीगी खड़ी है यह वही आभा है जो सदैव सहज रूप में उसके सम्मुख रहा करती थी। उसे लगा मानो वह किसी अकल्पनीय एवं अलभ्य प्रतिमूर्ति से साक्षात् कर बैठा है। आभा के आंगिक उभार जो भीगे कपड़ों से बाहर आ जाने को व्याकुल हो रहे थे, उसके धैर्य को चुनौती दे रहे थे। '

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 104-105)

इस प्रकार इस उपन्यास में घटनाओं एवं स्थितियों की जो पुनरावृत्ति दर्शायी गई है वह इस उपन्यास को यथार्थपरक मनोवैज्ञानिक उपन्यास की कोटि में ले जा खड़ा करती है। उपन्यास के नायक विस्वास के मन में कोई मनोवैज्ञानिक व्यथा-अतृप्तता है जिसे वह जीवन के विभिन्न स्तरों पर अनेक स्थितियों में उसी रूप में देखता है और इस प्रकार उपन्यास में घटनाओं एवं स्थितियों की पुनरावृत्ति देखने को मिलती है। यह व्यक्ति विशेष का उन्माद नहीं अपितु एक अभिव्यक्तिहीन अवस्था का परिणाम है जो समय-समय पर व्यक्ति के मन के भावों के प्रस्फुटन के रूप में प्रकट होता है। सही मायने में यही तत्व इस उपन्यास को गति प्रदान करते हैं और शीर्षक 'अभिव्यक्ति' की सार्थकता भी सिद्ध करते हैं।

'बाथरूम की लाईट बन्द थी अत: वह सामान्य भाव से अन्दर प्रविष्ट हो गया और ज्योंही कुण्ड़ी लगाकर मुड़ा तो सामने किसी को पा हड़बड़ा गया। इतने में सरला ने बत्ती जला दी। विस्वास सरला को अर्द्धनग्नावस्था में देखकर हतप्रभ रह गया, परन्तु सरला ने अवसर का लाभ उठाते हुए विस्वास को अपनी बाँहों में जकड़ लिया।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 29)

संभवत: इसी प्रथम घटना ने विस्वास के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ा। उस समय वह सरला की अभिव्यक्ति को समझ नहीं पाया, परन्तु एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् जब उसने उसकी भावनाओं को समझा तो सब कुछ पीछे छूट चुका था। आज वह सरला के समक्ष अपने इन भावों को, अपनी स्वीकृति को अभिव्यक्त करना चाहता था, परन्तु सरला खो गई है। विस्वास पर इसी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। वह अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं में अपने विगत की पुनरावृत्ति देखता है, यही उसके विकास का बीज-बिन्दु है और यह उपन्यास श्रृंखलाबद्ध रीति से एक सम्पूर्ण चक्र को पूरा कर अन्त में अभिव्यक्ति की पूर्णता में लक्ष्य की प्राप्ति करता है। लेखक द्वारा घटनाओं, स्थितियों, भाषा, अलंकरणों आदि के पुष्पों में पिरोकर एक पुष्पाहार का निर्माण किया गया है।

वात्सल्य का चित्रण

हमारा देश पारस्परिक प्रेम, भाईचारे, त्याग एवं समर्पण भावना का एक ऐसा उदाहरण है जिससे समूचा विश्व प्रभावित है। भारत की यह छवि अकारण ही नहीं है। हमारे यहाँ माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति अपार ोह एवं उनके भविष्य निर्माण हेतु त्याग भावना देखने को मिलती है जिसका उपन्यासकार ने कुशलता से चित्रण किया है- 'अब उसका मन विरक्त हो गया था। होता भी क्यों न, कितना प्यार करते थे बाबा उसे। जब वह स्कूल की छुट्टियों में गाँव जाया करता था तो बाबा उसे एक महिने में वे सब चीजें खिला-पिला देना चाहते थे, जो पूरे साल में घर में बनी थीं। कभी चूरमा बनता, कभी चावल बनते, तो कभी बाबा स्वयं खीर बनाया करते। कैसी गाढ़े दूध की हुआ करती थी खीर। बाबा स्वयं परोसते और उसके ना ना करने पर भी दो चमचे खीर डाल ही देते-

'ले ले बेटे खा ले, पूरे साल तो वहाँ चटनी-रोटी ही खाई होगी तूने।'

कितनी चिन्ता रहती थी बाबा को उसकी। एक दिन जब वह छुट्टियाँ खत्म करके शहर रवाना हो रहा था तो उसकी घर पर ही रह गई कमीज़ को कैसे बस रुकवाकर दे आए थे बाबा।

थैले में सामान रखते समय उससे एक-एक सामान का नाम पूछते -

'आटे का कनस्तर, घी का डिब्बा और घासलेट लाने के लिए खाली पीपी ले ली विस्वास?'

'हाँ बाबा सब रख लिया।' वह आँखें बन्द कर सब कुछ याद करते हुए बाबा को आश्वस्त करता।

'और वो बबूल की दाँतुन का गट्ठा?' बाबा फिर पूछते।

'अरे बाबा, कहाँ रखा है? वो तो रह ही गया।'

अपनी भूल को विशेष हँसी के साथ स्वीकारता वह।

बाबा बताते- 'बेटे वो परीण्ड़े के नीचे मिट्टी में दबा रखी है, जा ले आ।'

फिर स्वगत ऊँची आवाज में विस्वास को सुनाकर कहते-

'बहुत ही उत्तम रहती हैं ये बबूल की दाँतुन। कहीं भी जाओ, भई अपनी हुई तो किसी के मोहताज नहीं हुए और सुबह-सुबह मुँह माँज लिया, वर्ना कहाँ भागोगे शहर में लेने।'

विस्वास को यह बात आज स्पष्ट रूप से समझ में आ रही थी कि बाबा को उसकी छोटी से छोटी आवश्यकता का भी कितना ध्यान रहता था।

उसे ध्यान ही न रहा कि उसकी खादी की कमीज़, जो उसने धोकर सुखायी थी, वह पीछे बाड़े में सूखे अरण्ड़ के पेड़ के ऊपर ही सूखती रह गई। उस ओर न बाबा का, और न ही उसका ध्यान गया था। और वह बाबा के पैर छूकर, आशीर्वाद लेकर चल दिया था घर से। उसका घर गाँव से एक किलोमीटर पहले पड़ता था। बस में बैठने के लिए एक किलोमीटर पैदल चलकर गाँव के बस स्टैण्ड तक जाना पड़ता था.....'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 14-15)

बाल सुलभ भावनाओं की अभिव्यक्ति

मनुष्य के जीवन में बाल्यकाल वह अवस्था होती है जिसमें हुई अनुभूतियों को व्यक्ति दीर्घकाल तक मन में संजोए रखता है और कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जिन्हें वह आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता और उस काल की कुछ घटनाएं तो व्यक्ति के जीवन के प्रवाह को ही मोड़ देती हैं- 'वह सड़क के किनारे स्थित कच्चे मकानों, पेड़-पौधों आदि को निहारता जा रहा था। जिन चिर-परिचित स्थलों, वस्तुओं एवं व्यक्तियों से बिछुड़ने का व्यक्ति को जब आभास हो जाता है तो उनको देखने मात्र से, उसकी कल्पना मात्र से, उसकी आत्मा

को ठण्डक मिलती है। उसे यहाँ के हर परिदृश्य में एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होने लगी।

सहसा उसका ध्यान मालियों की ढ़ाणी के बाहर वाले चौराहे पर बैठे भूरे कुत्ते की ओर जाता। उसका मन व्यथित हो उठता। जब वह अपने घर से स्कूल जाता था तो यह चौराहा राह में पड़ता था। प्रात: सात बजे का स्कूल हुआ करता था। यह एक किलोमीटर का सफर वह शीघ्र ही तय कर लेना चाहता था। परन्तु चौराहे से थोड़े पहले ही भूरे कुत्ते को देखकर डर जाता था और उसके नन्हे-नन्हे पैरों की गति धीमी पड़ जाया करती। वह साँस रोके चौराहा पार करता, परन्तु डर के मारे भूरे कुत्ते को अवश्य देख लेता था। जब उसे लगता कि भूरा कुत्ता उसे नहीं देख रहा, तो उसके मन का डर कुछ कम होता और वह तेज-तेज कदमों से चलकर स्कूल पहुँच जाया करता।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 15)

आधुनिकता को मान्यता

उपन्यास की यात्रा भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों के पथ पर अग्रसर होती है पर जीवन के विभिन्न पड़ावों पर हुए अनुभवों एवं कालचक्र की गति ने लेखक को आधुनिकता की ओर मोड़ दिया जिसका उन्हें पता ही न चला तभी तो उनका पात्र विस्वास जो कभी भारतीय संस्कृति का अनुयायी था आज आधुनिकता को भी कहीं-कहीं मान्यता देता है-

'विस्वास को लगा कि पाश्चात्य संस्कृति, प्रेम-विवाह, ये सब व्यक्ति के जीवन में अपेक्षाकृत अधिक सुखदायी भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं यदि पक्षकार अपने तत्कालीन प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए उसका आजीवन अनुसरण कर लें। परन्तु भारत देश में ऐसी सोच को हेय दृष्टि से देखा जाता है और यही कारण है कि कभी-कभी यहां की बेमानी परम्परा को आदर्श मानते हुए व्यक्ति अनचाहे बन्धनों को मानने हेतु विवश हो जाता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 82)

विचारों की स्वतंत्रता का नि:रूपण

हमारे देश में नारी-स्वतन्त्रता को एक आंदोलन का स्वरूप मिला है और नारी ने जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति की है। लेखक ने नारी के पहल करने,

उसके साहस एवं वैचारिक स्वातन्त्र्य को इस उपन्यास में उभारा है। जब विस्वास सुशीला दीदी को पढ़ाने जाता है तो वह उसे पौराणिक आख्यानों का संदर्भ देता है, परन्तु सुशीला दीदी व्यावहारिक शिक्षा एवं उसके जीवन में आचरण पर बल देते हुए विस्वास से कहती है-

'मैं नहीं मानती इस दकियानूसी और पुरातनपंथी उपदेशों को। परिवर्तन जीवन का एक आवश्यक हिस्सा होता है विस्वास। जिस प्रकार बहता पानी ही स्वच्छ रहता है, उसी प्रकार समयानुरूप परिवर्तन ही उपदेशों को परिष्कृत एवं समय की मांग के अनुरूप स्वीकार्य बनाता है।'

अपने धर्मग्रन्थों पर हुई चोट को बर्दाश्त न कर पाया था विस्वास।

उसे ऐसा लगा मानो, दीदी अपने मन के अन्दर की किसी पीड़ा को व्यक्त कर रही है।

'चलो दीदी जो भी हो, पर हमें तो वही पढ़ना है जो कोर्स की किताबों में लिखा है, परीक्षा में पास जो होना है।'

और फिर वह संस्कृत पढ़ाना प्रारम्भ करता-

मातृवत परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्,

आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति सः पण्डितः।

'दीदी इसका अर्थ कल बताया था, याद हो गया?'

'हाँ हो गया पण्डित जी।' दीदी की हँसी में विस्वास को अपना उपहास होता सा जान पड़ता।

दीदी टी.वी. पर रखी मनोज की तस्वीर को एक बारगी निहारते हुए बोली-

'यह ठीक है विस्वास, कि हमारे कुछ आदर्श होते हैं, आचार संहिता होती है, जीवन को व्यवस्थित ढंग से जीने के कुछ मानदण्ड भी होते हैं, परन्तु क्या इनमें समयोचित परिवर्तन उचित नहीं?'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 66-67)

जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति

लेखक ने अपने इस उपन्यास में जीवन की यथार्थ-स्थिति को जगह-जगह अभिव्यक्त करते हुए उन तथ्यों एवं विचारों को दर्शाया है जो व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि उपन्यास के ये

दृष्टांत कृति को सजीवता प्रदान करते हैं और हर पाठक इसमें अपने जीवन के किसी न किसी भाग की अनुभूति कर संतुष्ट होता है।

बेमेल विवाहों की व्यथा का निःरूपण

संस्कृति, नैतिकता आदि के परिवेश में भारतीय अनुशासन संहिता में प्रतिबद्ध होते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ बेमेल या ऐसे विवाह भी सम्पन्न होते देखे गए हैं जो पक्षकारों को मन से स्वीकार्य नहीं होते। लेखक ने अपनी इस कृति में जीवन के इस पक्ष को उजागर किया है-

'विस्वास को लगा कि पाश्चात्य संस्कृति, प्रेम-विवाह, ये सब व्यक्ति के जीवन में अपेक्षाकृत अधिक सुखदायी भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं, यदि पक्षकार अपने तत्कालीन प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए उसका आजीवन अनुसरण कर सकें। परन्तु भारत देश में ऐसी सोच को हेय दृष्टि से देखा जाता है और यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ की बेमानी परम्परा को आदर्श मानते हुए व्यक्ति अनचाहे बन्धनों को मानने हेतु विवश हो जाता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 82)

नारी की भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण

नारी मन को समझना बड़ा ही कठिन है। लेखक की इस विषय में दृष्टि पैनी है। हो सकता है इसका कारण यह रहा हो कि अपने बहुआयामी सृजन, विशेषकर संगीत, नृत्य एवं नाट्य के क्षेत्र में प्रस्तुतीकरण-निर्देशन के दौरान उनका नारी चरित्रों से निकट का साक्षात्कार रहा हो और उन्होंने नारी की भावनाओं को अंतर्मन से ग्राह्य किया हो। आपके इस उपन्यास में नारी मन की ये भावनाएं यत्र-तत्र अपने प्रभावशाली रूप में मन पर एक अमिट छाप छोड़ती हैं। उपन्यासकार द्वारा सृजित ढूँढाड़ी गीतों की तैयारी के दौरान उनकी छात्रा भरतपुर की ज्योति कटारा ने अगस्त, 2006 में इन गीतों में संयोजित नारी मन की अभिव्यक्ति से रोमांचित होकर उपन्यास के लेखक से पूछा था- 'सर, नारी मन का इतना सजीव चित्रण आपने कैसे किया, समझ में नहीं आता।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से साक्षात्कार 3 फरवरी 2006)

उनके द्वारा पूछा गया यह प्रश्न डॉ. शर्मा की लेखनी से स्त्री के मन की, उसकी भावनाओं की यथार्थ, स्पष्ट एवं जीवन्त प्रस्तुति की क्षमता को पुष्ट करता है।

इस उपन्यास की पात्र सुशीला दीदी के मन में एक आंतरिक वेदना थी जिसे वह विस्वास के समक्ष इस प्रकार प्रकट करती है-

'विस्वास, समाज में हर व्यक्ति का जीवन एक जैसा नहीं होता। हर व्यक्ति की परिस्थितियां एक जैसी नहीं हो सकती। भावनाएं सबकी अलग-अलग होती हैं, आवश्यकताएं- चाहे वे भौतिक हों या दैहिक, अलग-अलग होती हैं, और इन सबके लिए एक जैसी नीतियां, उपदेश और ये श्लोक- मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत् एक समान रूप से लागू नहीं हो सकते, कभी नहीं हो सकते।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 67)

नारी के हृदय में ईर्ष्या-भाव उस समय उदित होता है जब उसके प्रेम-पथ पर किसी के द्वारा कुठाराघात किया जाए। फिर वह न आयु देखती है, न रिश्ते और न ही किसी प्रकार की सीमा। उपन्यास की महिला पात्र मिसेज घोष किसी कारण से विस्वास को अपने प्रेम पाश में बाँधे रखना चाहती हैं। जब वह उनकी बेटी माला को पढ़ाने जाता है तो उसके मन में अपनी बेटी के प्रति भी ईर्ष्या-भाव उत्पन्न होता है- 'मिसेज घोष चाहती थीं कि विस्वास सदा उनका ही बना रहे, अत: जब वह माला को पढ़ाने उसके कमरे की ओर चला तो उन्हें मन ही मन माला से ईर्ष्या होने लगी। उस विस्वास को, जिसे वो केवल अपना ही समझने लगी थीं, माला के कमरे की ओर जाता देख, अन्दर ही अन्दर तड़पकर रह गई थी वे।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 71)

थोथी सामाजिक धारणाओं पर प्रहार

उपन्यासकार ने भारतीय समाज में व्याप्त थोथी सामाजिक धारणाओं को अपनी लेखनी से उभारा है। यथा- 'मनोज ने ठीक ही किया था सुशीला को राखी बंधवाकर। भारत वर्ष में राखी का धागा पवित्रता का सूचक माना जाता है। राखी बंध भाई को हमारे समाज में वही दर्जा दिया जाता है जो एक सगे भाई को। मनोज को शायद इस बात की आशंका थी कि यदि विस्वास सुशीला को उसकी अनुपस्थिति में घर पर पढ़ाने आएगा तो समाज वाले इसे उचित न समझेंगे, परन्तु यदि सुशीला विस्वास को भाई बना लेती है तो समाज का कोई भी व्यक्ति विस्वास के सुशीला को पढ़ाने आने को किसी भी प्रकार से अन्यथा न लेगा। और शायद मनोज के मन में भी इस ओर से कोई आशंका ही थी, तभी तो वह भाई-बहन के बीच राखी का सम्बन्ध स्थापित कर कई महिनों के

लिए सीमा पर जा पहुँचा था देश की रक्षार्थ। अपनी पत्नी की रक्षा का भार वह विस्वास पर छोड़ गया था।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 65)

'भारतीय समाज में बेटियों के संकल्प सामाजिक रूढ़ियों और जात बिरादरी के चक्रव्यूह में फंसकर छटपटाते रह जाते हैं। चाहे सरला ने कितना ही संकल्प किया हो अपनी मंज़िल पाने के लिए विवाह न करने का, परन्तु जब उसने अपनी माता को विवश पाया तो फ़िर कभी अपने ब्याह के प्रस्ताव का प्रतिकार नहीं किया। वह सोचने लगी-

सन्तान का माता-पिता के प्रति भी कोई कर्त्तव्य होता है। वे विवश होते हैं अपनी सन्तान के हितार्थ ही कोई निर्णय लेने को। अत: सन्तान द्वारा उन्हें सहयोग देना ही श्रेयस्कर है। और फिर भारतीय समाज में स्त्री की अपेक्षाएं, उसका संकल्प आदि स्वीकारेगा भी कौन? माता-पिता इसे समझ सकते हैं, परन्तु यह रूढ़िवादी समाज क्योंकर स्वीकारेगा स्त्री की स्वच्छन्दता को।

अत: उसने यही निर्णय लिया कि उसके माता-पिता जैसा चाहते हैं वह वैसा ही करेगी।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 34)

यह सरला के जीवन की सबसे विषादपूर्ण स्थिति थी। सामान्य स्थिति में वह आत्महत्या कर लेती, परन्तु वह एक ऐसे भँवर में फँस चुकी थी जहाँ से न तो अपने को विलग ही करना चाहती थी और न ही उसमें रहना चाहती थी।

वह सोचने लगी- 'हमारे देश में कितनी बेटियां ऐसी होंगी जिनकी अनभिव्यक्ति का बलात्कार न हुआ होगा, जिन्होंने अनचाहे सम्बन्धों के बोझ के नीचे अपना जीवन मिटा दिया होगा। मैं अकेली ही ऐसी नहीं हूं, असंख्य होंगी ऐसी, पर वे बेचारी कर ही क्या सकती हैं।

हमारा समाज पुरुष प्रधान है, जहाँ पर स्त्री-शिक्षा पर भले ही कितना ही जोर दिया जाए, उसके उत्थान हेतु कितने ही कानून बनाए जाएं और भले ही उन्हें लागू करने का कितना ही ढोंग किया जाए, परन्तु क्या वास्तव में स्त्री अपनी इच्छाओं के अनुरूप कुछ कर पायी है? कभी नहीं। वह सदियों से परतन्त्र रही है और सच्चे मायने में आज भी परतन्त्र ही है।

जब वह यथार्थ के धरातल पर उतरती है तो उसे सब कुछ सहन करना पड़ता है- व्यंग्य, उपहास, प्रताड़नाएं आदि सभी कुछ तो। पुरुष केवल उससे

उसके कर्तव्य निर्वहन की अपेक्षा रखता है, और उसके हितार्थ सार्वजनिक मंच पर उद्घोषित उसके सभी अधिकार नज़रअंदाज कर दिए जाते हैं। और ऐसी दशा में उसकी प्रतिभा, शिक्षा आदि का कोई महत्व नहीं रह जाता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 46)

पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति का चित्रण

भारत में सभ्यता, संस्कृति, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों की समाज में विद्यमानता की कितनी ही पैरवी की जाए परन्तु पुरुष प्रधानता को नकारा नहीं जा सकता। और पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति क्या हो सकती है? भारतीय नारी जो देखने में संरक्षित एवं खुशहाल दिखाई देती है उसकी आंतरिक व्यथा-कथा अपनी अभिव्यक्तिहीन अवस्था में किस प्रकार छटपटाती है, इसे उपन्यासकार ने अपनी लेखनी से चित्रित किया है- 'ऐसा कितनी ही अबलाओं के साथ होता आया है जीवन में, जब वे अपनी अस्मत लुटाकर भी केवल मूक बनी चुप रह जाने को विवश होकर रह जाया करती हैं। ऐसी स्थिति में क्या वे इसे बलात्कार साबित कर सकती हैं? कभी नहीं। कौन मानेगा उनकी इस बात को, उन विषम परिस्थितियों को जिनके कारण उनके साथ ऐसा दुष्कृत्य हुआ। और यदि उनकी बात मान भी ली जाए, तो क्या हमारा समाज ऐसी स्त्री को एक भद्र नारी के रूप में स्वीकार करेगा? कदापि नहीं। उन पर इस सत्य के उजागर हो जाने के कारण और अधिक अत्याचार होंगे और समाज के तथाकथित भद्र और सफेदपोश लोग उन्हें संरक्षण की आड़ में सदैव नोचते रहेंगे। क्या पता हमारे देश में अकारण एवं अनिच्छापूर्वक कोठों और आधुनिक होटलों में हमारी कितनी ही माताएं एवं बहनें इसी उन्मादी रोग के चक्रव्यूह में फंसती चली गई होंगी।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 56)

साहित्य में संगीत का समावेश

उपन्यासकार डॉ. शर्मा स्वयं एक कुशल नृत्यकार एवं शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता हैं जिसे उन्होंने अपनी इस कृति में समाविष्ट कर अपनी सांगितिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

'नीचे हवेली के चौक में कस्बे के पन्द्रह- बीस लड़कों ने मास्टरनी जी को घेर रखा था। वे हारमोनियम पर कोई फ़िल्मी भजन गा रही थीं और कुछ मनचले युवक उनका अनुसरण कर रहे थे।

विस्वास को मास्टरनी जी का यह भजन अच्छा नहीं लग रहा था। उसने कई बार नीचे झाँककर देखा। उसने पाया कि गली-मोहल्ले के मनचले लड़के संगीत सीखने में कम और कनखियों से मास्टरनी जी को देखने में अधिक ध्यान दे रहे थे। विस्वास को लगा कि ये लोग मास्टरनी जी के उन्मुक्त व्यवहार एवं उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। '

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 115)

नायक विस्वास संगीत का उपासक है अत: वह नहीं चाहता कि मास्टरनी जी आवारा लड़कों को फ़िल्मी संगीत सिखाएं। यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से शास्त्रीय संगीत के महत्व को दर्शाया गया है।

'भोजन समाप्त करके मास्टरनी जी ने विस्वास से कहा-

'यदि बुरा न मानें तो एक बात कहूं विस्वास बाबू!'

'कहिए।'

किसी आशंका से विस्वास का दिल धक्-धक् करने लगा था।

'आप भी शाम के समय संगीत क्यों नहीं सीखते मुझसे?

मास्टरनी जी के स्वर में एक सरस आमन्त्रण था।'

'बहन जी यदि आप बुरा न मानें तो मैं एक बात कहूं आपसे?'

कुछ सोचते हुए कहा था उसने।

मास्टरनी जी ने अपने चिर परिचित अन्दाज में ठहाका लगाते हुए कहा था विस्वास से-

'हाँ-हाँ कहिए विस्वास बाबू। मुझ पर आप अपना पूरा अधिकार समझिये बस।'

'मुझे अच्छा नहीं लगता कि आप इन आवारा लड़कों को यों मजमा लगाकर फ़िल्मी गाने सिखाओ।'

लेखक ने संगीत एवं प्रेम के सामंजस्य को एक विशिष्ट अंदाज में प्रस्तुत किया है-

मास्टरनी जी चाय ले आई थीं। विस्वास हारमोनियम ले आया था, जिसे उसने उनके पास रख दिया।

चाय समाप्त करके मास्टरनी जी ने उसे बंदिश की स्थाई सिखाना प्रारम्भ किया-

'तूऽऽही अधाऽऽर सकल त्रिभुवन को
पाऽलक सचराऽऽचर जीऽवन कोऽ।'

मास्टरनी जी के साथ-साथ वह भी बन्दिश की स्थाई गाने लगा। वह हारमोनियम के स्वरों पर मचलती उनकी उंगलियों को कौतुक से देखने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी उंगलियां अलौकिक आनंद बनकर उसके सम्पूर्ण अचेतन मन को गुदगुदा रही हैं।

प्रारम्भ में दोनों द्वारा गायी जा रही बन्दिश के बोलों में कोई तारतम्य न था, परन्तु अब उनके स्वर मिलने लगे थे। और वे दोनों एक साथ गाने लगे-

'तूऽही अधाऽऽर सकल त्रिभुवन को
पाऽलक सचराऽऽचर जीऽवन कोऽ।'

अब मास्टरनी जी का जीवन संयत हो गया था। पहले वे आए दिन नौटंकियों, एवं गप्पें हाँकने में लगी रहती थीं, परन्तु अब उन्हें नियत समय पर घर पहुँचकर विस्वास की बाट जोहने में आनन्दानुभूति होती थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 116, 118)

मानव स्वभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण

मानव स्वभाव का विवेचन-विश्लेषण करना एक मनोवैज्ञानिक कार्य है जो सामान्यजन के लिए कठिन है। चूंकि उपन्यास के लेखक का सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पड़ावों पर इस प्रक्रिया से होकर गुजरा है अत: उन्होंने अपनी इस कृति में स्थान-स्थान पर इसके संकेत दिए हैं जो दृष्टव्य हैं- 'मनुष्य के जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जिन्हें वह आदर्शवादिता अथवा अपने अज्ञान या लोक लाज के भय के कारण अपनाने का साहस नहीं कर पाता। परन्तु जब कभी उसे अपनी गलती का अहसास होता है तो उसे बहुत पीड़ा होती है। वह उन बीते हुए अवसरों को अंगीकार करना चाहता है, उन्हें भोगना चाहता है। परन्तु क्या बीते हुए क्षणों को पुन: पकड़ पाना किसी के वश की बात है, और क्या ऐसे अवसर किसी अन्य की प्रतीक्षा में अपनी गति रोक सकते हैं?

कदापि नहीं। समय कभी नहीं रुकता और व्यक्ति के जीवन में आए हुए अवसर उन्हें अपनाने हेतु उसका इन्तजार नहीं किया करते। इसी प्रकार एक स्त्री भी अपने मन के भावों को अधिक समय तक संजोकर नहीं रख सकती।

यदि कोई स्त्री अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का साहस कर सकती है तो हर बार उसकी अभिव्यक्ति अधिक बलवती होकर किसी के समक्ष भी प्रकट हो सकती है।

जब मनुष्य की भावनाएं अतृप्त होती हैं तो वह उनकी तृप्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहता है, और शारीरिक क्षुधा की अतृप्ति तो नैतिक-अनैतिक किसी भी कृत्य में भेद नहीं कर पाती। ऐसी विवेकशून्य दशा में किसी क्षुधातुर को हर प्रकार से, हर संभव प्रयास से अपनी क्षुधा-तृप्ति की पीड़ा ही सालती रहती है। परन्तु जब उसे सन्तुष्टि की प्राप्ति हो जाया करती है तो इस हेतु उसका उन्माद रफूचक्कर हो जाता है, उसके जीवन में सब कुछ सामान्य हो जाता है और उसे अपने द्वारा किए गए अनैतिक कार्यों से घृणा हो जाया करती है। '

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 56-57)

कर्म की प्रधानता पर बल

उपन्यासकार ने इच्छा शक्ति के माध्यम से कर्म-पथ पर अग्रसर होते हुए सफलता के सूत्र को उद्घाटित किया है।

'कोई सोचता होगा कि विषम परिस्थितियों एवं जीवन के अवरोधों में मानव की प्रगति रुक जाया करती है और उसके हौसले ठण्डे पड़ जाते हैं, परन्तु विस्वास के जीवन में सब कुछ इसके विपरीत था। गरीबी, विषमताओं एवं जीवन के अवरोधों से उसे आगे बढ़ने का सम्बल मिला था। विषमताएं उसकी प्रेरणा थीं। वह सोचा करता-

- मुझे आगे बढ़ना है, बढ़ते जाना है और अपने बाबा की उम्मीदों को पूरा करना है।

यह सत्य है कि यदि व्यक्ति किसी चक्रव्यूह से निकलना चाहता है तो उसे अपनी इच्छा शक्ति को बल देना होगा। यही वह अमोघ अस्त्र है जिससे वह गरीबी एवं विषमताओं के चक्रव्यूह को भी काटकर बाहर आ सकता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 11)

धार्मिक आडम्बरों पर प्रहार

कर्म की महत्ता को स्वीकार करने वाले इस कृति के कृतिकार नास्तिक नहीं हैं, परन्तु धर्म के क्षेत्र में जो आडम्बर एवं अंधविश्वासी मान्यताएं हैं उनके वे अन्धानुयायी भी नहीं हैं।

'चलो भाई लाईन में लगो नहीं तो महालक्ष्मी के दर्शन नहीं हो पाएंगे।'

महेश की आवाज सुनकर चौंक गया था विस्वास। उसने देखा कि महालक्ष्मी टेम्पल के सामने दर्शनार्थियों की लम्बी कतार लगी हुई है। विस्वास को ये सब केवल औपचारिकताएं मात्र लगीं।

उसने जब महेश को अपनी ओर ताकते हुए देखा तो उससे रहा न गया और बिना किसी की परवाह किए बोल पड़ा–

'महेश, हमारे देश में औपचारिकताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि कर्तव्य पर। और यदि व्यक्ति अपना कर्तव्य करता रहे तो उसे और कुछ करने हेतु विवश न होना पड़ेगा।'

उसका आशय न समझकर डर के मारे धीरे से बोल पड़ा महेश–

'विस्वास, देवताओं के दरबार में ऐसी बातें करना उचित नहीं, लोग क्या सोचेंगे।'

पीड़ा से तिलमिला उठा विस्वास– 'लोग, क्या हम लोगों की परवाह के अनुसार अपने कर्म को राह देंगे? महेश, हमारे भाग्य के सहयोगी जितने हम स्वयं हो सकते हैं उससे अच्छा सहयोग न तो कोई हितैषी ही दे सकता है और न ही भगवान अनायास कोई आशीर्वाद दे जाएंगे। महेश मेरे भाई, यदि मनुष्य केवल अपने भाग्य एवं देवताओं के आशीर्वाद के भरोसे बैठ जाएगा तो सच मानो, उसका भाग्य भी निश्चय ही उसके शिथिल इरादों के साथ बैठ जाएगा।'

महेश अवाक् सा उसकी ओर केवल मात्र देखता रहा गया और विस्वास बोलता रहा– 'मैं नास्तिक नहीं हूं मित्र, परन्तु अंधविश्वासी भी नहीं हूं। देवताओं की मैं मन ही मन पूजा करता हूं, पर व्यर्थ के दिखावे में अपने बहुमूल्य समय को नष्ट करना भी उचित नहीं समझता।'

महेश उसकी बातों के प्रवाह में बहता ही चला गया और दोनों मित्र कुछ देर के लिए महालक्ष्मी टेम्पल के पिछवाड़े वाली एक समुद्री चट्टान पर आकर बैठ गए। सागर में विशाल तरंगें आ-जा रही थीं जिससे विस्वास के संकल्प को और भी बल मिल रहा था।

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 12)

अलौकिक शक्ति में आस्था

उपन्यास में ईश्वर की अलौकिक शक्ति को दर्शाया गया है, जो उपन्यास के नायक विस्वास के जीवन में घटित घटना से उजागर होती है। विस्वास बम्बई में दिन भर अपने मित्र महेश के साथ घूमता रहा, दिन भर वह भूखा रहा। सायंकाल जुहू चौपाटी पर सूर्य के डूबते दृश्य को देखकर उसे वेदना हुई और वह भूखे पेट ही हॉस्टल में आकर सो गया। अर्द्धरात्रि को गाँव से दूरभाष पर बाबा की मृत्यु के संदेश ने दिन भर की गतिविधियों से विस्वास के मन में इस धारणा को पुष्ट किया कि लोक में अवश्य ही कोई अलौकिक शक्ति है जो व्यक्ति के कार्यकलापों एवं जीवन-मृत्यु को नियंत्रित करती है।

'दोनों मित्र वहाँ पर काफी देर तक इधर-उधर घूमते रहे। वहाँ का दृश्य बहुत ही मनमोहक लग रहा था। बम्बई जैसे महानगर में ऐसा सुन्दर स्थान होने की कल्पना भी आज से पूर्व उसने न की थी। चौपाटी पर उन दोनों ने कुछ खाया पिया और वापस पूना की ओर चल पड़े।

विस्वास वहां से वापस आ अवश्य रहा था, परन्तु जुहू चौपाटी पर देखे गए सूर्य के डूबते दृश्य को दृष्टिपटल से न हटा सका। उसे उसमें आनंद का स्रोत दिखाई दे रहा था, जो उसके लिए असीम सुख का आधार था।

व्यक्ति को जिस कल्पना संसार में आनन्द की अनुभूति प्रतीत हो रही होती है उसे वह अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहता। विस्वास की दशा भी कुछ ऐसी ही थी।

सूर्य का डूबता हुआ दृश्य सर्वप्रथम ऐसा लगा, मानो किसी मिट्टी के घड़े को उल्टा रख दिया गया हो। सूर्य धीरे-धीरे डूबता हुआ सा प्रतीत हुआ। ज्यों-ज्यों सूर्य डूबता जा रहा था, विस्वास को एक अलौकिक वेदना की अनुभूति हो रही थी।

आखिरकार सूर्य पूरा डूब गया और चारों ओर अंधकार छा गया। इस दृश्य की विलुप्ति पर विस्वास का मन एक टीस भरी पीड़ा से आहत हो उठा।

दोनों मित्र पूना पहुंच गए। काफी थके-हारे थे। महेश ने विस्वास से कुछ खा-पी लेने का आग्रह किया, पर आज उसका मन कुछ उदास था अत: बिना खाना खाए ही हॉस्टल के लॉन में सो गया।

रात को लगभग साढ़े बारह बजे उसे कोई झकझोर रहा था–

'उठो विस्वास, तुम्हारे गाँव से फोन आया है।'

फोन पर बड़े भाई ने बताया कि बाबा चल बसे थे। वह सन्न रह गया, पर यह घटना उसे आकस्मिक न लगी। अब वह सब कुछ समझ रहा था। कल जुहू चौपाटी पर सूरज के डूबने का दृश्य रह रहकर उसकी आँखों के सामने से गुजरता जा रहा था। और वह बुदबुदा उठा–

'बाबा के प्राण त्यागने का समय लगभग वही था जो सूरज डूबने का था। उसे बाबा की मृत्यु के पूर्वाभास पर आश्चर्य हो रहा था। आज उसे विश्वास हो रहा था कि संसार में कोई ऐसी अदृश्य शक्ति अवश्य है जो सम्पूर्ण जगत् को नियन्त्रित करती है।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 13-14)

❑❑❑

24

व्यक्ति-मन के यथार्थ और मनोविज्ञान का प्रतिबिम्ब : अभिव्यक्ति

डॉ. मीनाक्षी श्रीवास्तव

पिछले सौ वर्षों के इतिहास में हिन्दी उपन्यास ने अपनी विकास यात्रा में अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य में उपन्यास की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। हिन्दी उपन्यास में काल और देश के बहुआयामी गहरे और सूक्ष्म सन्दर्भों को छूते हुए विविध सोपानों का स्पर्श किया गया है। समकालीन उपन्यास में समय की गूँज और नवीन चुनौतियों का सामना करने का साहस दिखाई देता है। कथा साहित्य ही नहीं अन्य विधाओं में भी नारी अस्मिता और स्वत्व की पहचान को रचनाकारों ने रेखांकित किया है। हिन्दी कथा साहित्य में नारी चरित्र के स्वतन्त्र अस्तित्व तथा जीवनमूल्यों के विविध सन्दर्भों को मनोविज्ञान, आधुनिक रचनाबोध तथा नवीन मान्यताओं के साथ अभिव्यक्त किया जा रहा है। एक ओर आज की नारी का वैयक्तिक चरित्र सामाजिक स्थितियों, पाश्चात्य संस्कृति, नवजागरण और राजनीति आदि से प्रभावित है तो दूसरी ओर भूमण्डलीकरण, पूंजीवाद और पितृसत्तात्मक ताकतों के बीच नारी अपनी नई राह बना रही है। हिन्दी के समकालीन कथाकार नारी चेतना के विविध आयामों तथा उसके हृदय की सूक्ष्म संवेदनाओं को ईमानदारी से कथा साहित्य में अभिव्यक्त कर रहे हैं।

प्रेमचन्द युग से आज तक अनेक उपन्यासकारों ने नारी जीवन की समस्याओं, अनुभूतियों और मनोभावों को मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से अपनी कृतियों में सजीवता से अंकित किया है। प्रेमचन्द, इला चन्द्र जोशी, जैनेन्द्र,

*रीडर एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी एवं आ. भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली यूनिवर्सिटी, राजस्थान

यशपाल, अज्ञेय, नागार्जुन, अश्क आदि से प्रारम्भ होकर ये परम्परा संजीव उदयप्रकाश, कृष्णा सोबती मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, लवलीन आदि कथाकारों को समाहित करती है। ये सभी रचनाकार स्त्री की त्रासद स्थितियों एवं उनके मनोविज्ञान का गहराई से चित्रांकन करते हैं। कथा साहित्य की इस अनन्त परम्परा में अनेक रचनाकारों ने इस परम्परा को समृद्ध बनाया है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का उपन्यास 'अभिव्यक्ति' स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अभिव्यक्त करने वाला इसी प्रकार का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। प्रकृति मनुष्य के व्यक्तित्व को पर्यावरण के माध्यम से जीवन से जोड़ती है। ये मनुष्य की चेतना के विभिन्न स्तरों को प्रभावित करती है। साहित्य में मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक और भौतिक दोनों रूप दिखाई देते हैं। साहित्य में मानवीय संवेदनाओं का ताना-बाना मनुष्य की अनुभूतियों और गहन अचेतन में छिपे मनोभावों के तारों से बुना जाता है। शर्मा जी ने अपने उपन्यास में लिखा है- 'अभिव्यक्ति का सम्बन्ध मानवीय भावनाओं से होता है, कभी कोई व्यक्ति अपने मन की बात अभिव्यक्त कर देता है परन्तु दूसरा पक्ष उसे समझ पाने में असमर्थ होता है... मेरे इस उपन्यास का आधार मनुष्य का भावनात्मक पक्ष है। '

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, प्राक्कथन पृष्ठ 2)

यह उपन्यास व्यक्ति की अभिव्यक्तिहीन अवस्था की छटपटाहट को व्यक्त करने में समर्थ है, साथ ही साथ इस आशय से ओत-प्रोत है कि मनुष्य के आन्तरिक भाव अपनी अभिव्यक्ति के लिए राह बना ही लेंगे और अन्ततः अपनी प्रेरणा तक पहुंचेंगे।

यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें उपन्यासकार ने इसके प्रमुख पात्र विस्वास और सरला के माध्यम से एक नया सन्देश देना चाहा है। 'विस्वास' इस उपन्यास का एक सशक्त पात्र है जो न केवल कठिन परिस्थितियों में भी दुर्गम पथ पर एक नया कीर्तिमान स्थापित करता है अपितु जीवन में आये विभिन्न नारी पात्रों को सम्बल भी प्रदान करता है। उनका यह पात्र उनकी विभिन्न कहानियों, कविताओं एवं गीतों में भी अपने इसी स्वरूप में उपस्थित है।

इस उपन्यास में प्रेम और आकर्षण को कथा का मूल विषय तो बनाया ही गया है साथ ही आधुनिक युग में मूल्यों की विशृंखलता और व्यक्तित्व के विघटन का चित्रण भी किया गया है। पात्रों के जीवन में सामान्य और असामान्य दोनों प्रकार की घटनाएं घटित होती हैं। सरला और विस्वास जो कहानी के

प्रमुख पात्र हैं इन घटनाओं के चक्रव्यूह में किस प्रकार से उलझते-सुलझते हैं, उपन्यासकार ने उपन्यास के कथानक में इसे जीवन्तता से उकेरा है। रागिनी के प्रति विस्वास का आकर्षण, सरला की चँचलता और आशीष के मन का उद्वेग, माला के मन में प्रेम की उत्पत्ति तथा मंजरी, नीलम आदि पात्रों से सम्बन्धित घटनाओं में नारी पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को सजीवता से चित्रांकित किया गया है। ये घटनाएं उपन्यास के कैनवास को संवेदना के विविध रंग प्रदान करती हैं।

'अभिव्यक्ति' उपन्यास में नायक 'विस्वास' और लेखक की एक अन्य कृति 'अबला की मन्ज़िल ' (कहानी संग्रह) की कहानी 'अबला की मन्ज़िल' में नायक 'अमर ' दोनों ही सफल पात्र साबित होते हैं। परन्तु सरला और नीलम से वियोग विस्वास के मन को और तोड़ देता है, अलगाव की टीस उसके मन की कसक को और तीव्र कर देती है। बाद में उसे माला को भी छोड़कर जाना पड़ता है। अमर और विस्वास जैसे पात्र अपने-अपने जीवन में बार-बार ऐसी घटनाओं से आहत होते हैं पर अपनी इच्छा शक्ति से पुनः कर्मपथ पर अग्रसर हो जाते हैं और अपनी प्रेरणा के स्रोत आलम्बनों को कभी विस्मृत नहीं कर पाते।

'अबला की मन्ज़िल ' के नायक अमर में 'अभिव्यक्ति ' के विस्वास का प्रतिरूप देखा जा सकता है। जिस प्रकार अभिव्यक्ति का नायक विस्वास इस उपन्यास का एक आदर्श पात्र है उसी प्रकार अबला की मन्ज़िल का अमर भी एक सुयोग्य एवं आदर्श पात्र है।

विस्वास की जीवन यात्रा में कई नारी चरित्र आते हैं जिनसे वह गहराई से जुड़ता है, उनकी सहायता करता है, उन्हें जीवन में आगे बढ़ने का हौसला देता है और परिस्थितियोंवश उनसे विलग होकर फिर अपनी राह पकड़ता है। वह अपने कर्मपथ पर अग्रसर होता है, उसे विभिन्न नारी पात्रों से प्रेरणा भी मिलती है और वह स्वयं भी उन्हें प्रेरित करता है।

यदि विश्लेषण किया जाय तो विस्वास नाम का यह पात्र शर्मा जी के साहित्य में अपनी त्रिकोणात्मक स्थिति में उपस्थित है। उनके उपन्यासों में, कहानियों में और काव्य में। अबला की मन्ज़िल कहानी में विस्वास के अमर के रूप में आदर्श स्वरूप के संकेत हैं- 'कठपुतली वाला बेगानी बस्ती में पहुँच गया। बच्चे कौतूहलवश उल्लास के साथ भाग-भागकर कठपुतली वाले के पास

आने लगे। नवयुवक एवं नवयुवतियों के झुण्ड के झुण्ड आकर उसके इर्द-गिर्द जमा हो गये। सब के सब कठपुतली वाले की पूर्व कला के प्रशंसक थे। उसके हर करतब की याद मात्र उनके शरीर को रोमांच व खुशी से गुदगुदा देती थी। सब के सब लालायित थे उसके करतब देखने को।'

(अबला की मन्ज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 13)

शर्मा जी के जीवन में आये कुछ जीवन्त पात्र जो उनके जीवन में प्रेरणा बनकर अवतरित हुए और जिन्होंने कर्म-पथ पर उनका साथ दिया, उनसे किसी कारण अलगाव हुआ, मन टूटा और सृजन में अवरोध होते हुए भी वे कर्म और सृजन की धारा में निरन्तर बहते गए।

अभिव्यक्ति का विस्वास अपनी सरला के विछोह से पीड़ित है और जीवन में आगे बढ़ने हेतु उसके साथ की कामना करता है। यह तब की बात है जब वह सरला की अभिव्यक्ति को समझ पाया।

इस उपन्यास का नायक विस्वास नायिकाओं से जहाँ-जहाँ आयु में छोटा है वहाँ-वहाँ उसने उन्हें सहारा देने का प्रयास किया है। यहाँ पर नायिका सरला विस्वास से आयु में लगभग चार वर्ष छोटी है। अबला की मन्ज़िल कहानी संग्रह की कहानी 'साक्षात्कार' की नायिका अलका चौधरी भी आयु में नायक से छोटी ही है। इस कहानी संग्रह की कहानी 'माधवी ' का नायक अरुण एक विवाहित युवक है और दो बच्चों का पिता है। इस हिसाब से उसकी आयु तीस वर्ष के लगभग आँकी जा सकती है जबकि माधवी की आयु पन्द्रह-सोलह वर्ष के लगभग है- 'तब माधवी शायद पन्द्रह-सोलह वर्ष की रही होगी। अरुण उसके व्यवहार, अभिरूचियों एवं अपनत्वपन से बेहद प्रभावित हो गया था। वह भी उसकी कहानियों में तल्लीनता से रूचि लेती थी और इसी कारण उसे सम्मान की दृष्टि से देखती थी।

इन पन्द्रह वर्षों में माधवी और अरुण एक दूसरे के काफी नजदीक आ गये थे। प्राय: सप्ताह में एक दिन दोनों का मिलना अवश्य हो जाता था। माधवी कला की प्रशंसक थी और अरुण भी कला का पुजारी था। दोनों ही का विभिन्न कलाओं एवं लेखन के प्रति रुझान था। अरुण का लेखन गत्यमान था, परन्तु माधवी का शिथिल। '

(अबला की मन्ज़िल कहानी संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 33-34)

अभिव्यक्ति उपन्यास में कुछ ऐसे नारी पात्र विस्वास के सम्पर्क में आते हैं जो आयु मे उससें बड़े हैं। मिसेज घोष उससे आयु में बड़ी हैं जिनसे उसकी वैचारिक समानता नहीं है। वह उनके स्वार्थीपन से आहत होता है -

'ऐसा अक्सर होता आया है मनुष्य के जीवन में कि लोकलाज और औपचारिकताओं के वशीभूत होकर उसे अनचाहे ही अपने मन के विपरीत कुछ करने को, किसी को स्वीकार करने को विवश होना पड़ जाता है।

अत: बनावटी मुस्कुराहट के साथ बोली थीं वे- अरे हाँ विस्वास बाबू, यहीं रह जाइये न आप। यहाँ भी तो आपको घर का सा ही आराम मिलेगा न।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 64)

पूना हॉस्टल के वार्डन की विधवा पुत्रवधू एवं विद्या दीदी उससे आयु में बड़ी हैं परन्तु वे मिसेज घोष की भाँति स्वार्थी, अवसरवादी एवं लालची नहीं हैं अत: विस्वास की उनके प्रति सदैव सहानुभूति एवं श्रद्धा रही है-

'भाभी आयु में उससे लगभग दस वर्ष बड़ी थी अत: वह हमेशा उनका सम्मान किया करता था। एक दिन वह अपने ट्यूशन पढ़ाने के निर्धारित समय पर ज्योंही भाभी के कमरे में प्रविष्ट हुआ एकाएक ठिठककर रुक गया और एक क्षण को जो उसने देखा तो अपनी दोनों हथेलियों से आँखें ढाँपते हुए बोल पड़ा- सॉरी भाभी, मुझे दरवाज़ा खटखटाकर अन्दर आना चाहिए था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 19)

'परन्तु आज कई वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् विस्वास भाभी के मन के भावों को ठीक प्रकार से समझ पाया था और उसे अपनी नासमझी पर एक प्रकार का पश्चाताप ही हुआ। वह भाभी के दु:ख से पीड़ित था, और जहाँ हमें किसी की सहायता करने से स्वयं की पीड़ा में शीतलता का आभास हो, ऐसी सहायता पक्ष एवं प्रतिपक्ष के लिये औषधि साबित होती है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 20)

विस्वास की गाँव वाली दीदी उसका आदर्श एवं प्रेरणा है। बचपन में उनके द्वारा दिया गया प्रोत्साहन ही वह अमोघ अस्त्र था जिसके माध्यम से विस्वास ने जीवन में सफलता हासिल की थी। दीदी की हर बात आज उसे याद है। जीवन में जब भी किसी नारी को उसने कठिन परिस्थितियों में जूझते हुए देखा तो उसने उसकी मदद की और उपन्यास की पात्र विद्या दीदी ही वह मूल है जो विस्वास को एक आदर्श नायक के रूप में प्रतिस्थापित कराती है।

'सहसा दीदी ने प्रश्न किया - क्यों रे विस्वास, तू भी बनेगा हीरो ?

- हां दीदी, यदि तुम पढ़ने के लिये शहर बुलाओगी, तो मैं उस फ़िल्मी हीरो को भी मात दे सकता हूं।

दीदी को विस्वास में आत्मविस्वास दिखायी दे रहा था -

- क्यों रे विस्वास, तू अपनी इस दीदी को बहुत चाहता है ?

पीड़ा से मर्माहत होकर बोली थी दीदी।

- हां दीदी, तभी तो कह रहा हूं कि मुझे भी अपने पास बुला लो शहर में पढ़ने के लिए।

दीदी के हाथ की पकड़ को और भी मजबूत कर लिया था विस्वास ने।

- अच्छा विस्वास, मैं अब जा रही हूं। भाई मैं तुझे बुलाऊं या नहीं, पर तू शहर जाकर खूब पढ़ाई करना और बड़ा आदमी बनना। किसी विलेन के चंगुल में फँसी कोई हीरोइन तेरा इन्तजार कर रही है।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 74)

उपन्यास की सुशीला दीदी आयु में विस्वास से छोटी हैं। उसके पति मनोज ने अपनी पत्नी के राखी बँधवाकर सुशीला एवं विस्वास के बीच भाई-बहिन का सम्बन्ध स्थापित कराया और कई महिनों के लिये सीमा पर जा पहुँचा देश की रक्षार्थ। विस्वास सुशीला को पढ़ाने के लिये जाने लगा। भले ही सुशीला आयु में विस्वास से छोटी हो और विस्वास उससे बड़ा, परन्तु वह व्यावहारिक जीवन के बारे में अधिक ज्ञान नहीं रखता था। ऐसे में सुशीला उसे ठीक उसी प्रकार जीवन के व्यावहारिक पहलुओं की जानकारी देती है जिस प्रकार श्री नरेश मेहता के उपन्यास 'नदी यशस्वी है' की कावेरी अपने से छोटी वय के उदयन को देती है।

'इस समय वह कुछ अन्य कावेरी थी, श्रृंगार आँखों में था। वह धीरे-धीरे पलंग की ईस पर बैठ गयी तथा मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर सहलाने लगी। अधूरी साँसें लेना क्या होता है यह मुझे उस दिन ज्ञात हुआ।

.....'छोटे सरकार! आपने एक दिन जानना चाहा था न कि स्त्री क्या होती है ?

और कावेरी अनायास ही मुझ पर सम्पूर्ण झुक आयी। उसने मुझे अपनी बाहुओं में भर लिया।...मुझे क्षणान्त में लछमन, चाचा जी का कमरा, मुखिया जी की गोद में वल्लभा बुआ का सिर... न जाने क्या-क्या याद हो आया। वह मेरे ओठों को वैसे ही पीती रही जैसे कि गाय या बैल जल पर अपनी थूंथ रख देते हैं और जल पीते रहते हैं।

वह कब लौट गयी कह नहीं सकता पर वह मेरे निकट जिस प्रकार लेटी थी उसमें वह सम्पूर्ण थी। स्त्री, कोई हो वह दाता होती है। देना स्त्री का धर्म है। विभिन्न सम्बन्धों में वह अपने को टुकड़ों में बाँट देती है लेकिन सम्पूर्ण स्त्री की प्राप्ति...मुझे लगा कि कावेरी मेरी गति है। ओह कावेरी! ...स्त्री क्या सच ही यह होती है ?....झरती कमल की असंख्य पँखुरियों के बीच एक गोरी देह, स्त्री!! स्त्री क्या सच ही ऐसी होती है ?..'

(श्री नरेश मेहता : नदी यशस्वी है, पृ. 217-218)

जब विस्वास सुशीला को नीति एवं दर्शन की शिक्षा देता है तो वह उसे व्यावहारिक न पाकर कहती है- 'मैं नहीं मानती इन दकियानूसी और पुरातनपंथी उपदेशों को। परिवर्तन जीवन का एक आवश्यक हिस्सा होता है विस्वास। जिस प्रकार बहता पानी ही स्वच्छ रहता है उसी प्रकार समयानुरूप परिवर्तन ही उपदेशों को परिष्कृत एवं समय की माँग के अनुरूप स्वीकार्य बनाता है।'

तब विस्वास को व्यवहारिकता का आभास हुआ शायद -

'उसे लगा जैसे सुशीला उस पर थोपे गये रिश्ते को स्वीकार नहीं कर सकी और न ही इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर पायी। वह उसमें एक भाई की नहीं अपितु एक ऐसे व्यक्ति की छवि तलाशने का प्रयास कर रही थी जो कोई आदर्श नहीं बल्कि एक व्यवहार हो।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 66, 68)

उसने सुशीला दीदी से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। उसे लगा कि हर व्यक्ति के लिये जीवन का व्यावहारिक ज्ञान महत्त्वपूर्ण है-

'दीदी की चूड़ियों की खनखनाहट आज इतने वर्षों के पश्चात् उसे व्यथित किये दे रही थी। आज उसे लग रहा था मानो दीदी किसी सरगम का स्वर हो, सरगम के बिना स्वरों की उत्पत्ति सम्भव हो ही नहीं सकती। यदि स्वरों का

मिलन न हो तो राग की उत्पत्ति की कल्पना तक करना व्यर्थ है। उस समय सुशीला के स्वरों को वह अपने में समाहित न कर पाया था, परन्तु आज वह उसकी सरगम का स्वर बन गई थी और उसमें राग परिलक्षित हो रहा था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 69)

अभिव्यक्ति उपन्यास का नायक विस्वास एक आदर्श नायक है। अपनी बाल्यावस्था में गाँव में भोगी हुई कठिन परिस्थितियां, गरीबी, लोगों के व्यंग्य-उपहास, प्रेरणाएं, बाबा की सीख एवं विद्या दीदी की प्रेरणा उसके जीवन में पग-पग पर उसे सुदृढ़ता प्रदान करती हैं और वह पीड़ितों को सहारा देता हुआ जीवन-पथ पर चलता जाता है। विद्या दीदी का उसके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव है अत: वह उसके जीवन में आये विभिन्न नारी पात्रों की सहायता करता हुआ आदर्श नायक की श्रेणी में पदस्थापित होने का गौरव प्राप्त करता है।

वैवाहिक प्रस्ताव मिलने पर वह अपने दोस्त के साथ पालनपुर आया था, भारतीय परम्परा के अनुसार जीवन-साथी चुनने -

'उस लड़की के पिता शिक्षा विभाग में उच्चाधिकारी थे। लड़की एम.ए. पास थी और उसके पिता ने उसके नज़दीकी रिश्तेदार को दहेज भी ठीक-ठीक देने की बात कह दी थी।

विस्वास को इन सबमें कोई रूचि न थी, पर वह लड़की की योग्यता, उसके आचरण एवं उसके परिजनों के व्यवहार को जरूर आँकना चाहता था। सब कुछ देखने-परखने के पश्चात् उसने दबे मन से वहां रिश्ता करने की बात स्वीकार भी कर ली थी और वापस चल पड़ा था अपने शहर की ओर।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 83)

विस्वास लोभी प्रवृत्ति का व्यक्ति नहीं था अत: वह लड़की के पिता के प्रलोभन में न आया और अपने आपको एक आदर्श नायक के रूप में प्रमाणित किया।

विस्वास नई जगह आकर किराये का कमरा लेकर रहने लगा था। एक बड़ी हवेली में कमरा लिया था- 'मकान मालिक के लड़के की कल सगाई होने वाली थी अत: पूरा घर महिलाओं, बच्चों और बहन-बेटियों की हर्षध्वनियों से चहचहा रहा था। विस्वास कुछ पढ़ने का प्रयास कर रहा था पर मन रह-रहकर बेचैन हो उठता था। उसे लगा मानो वह विद्या दीदी की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहा है।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, पृष्ठ 87-88)

यहां पर मकान मालिक की बेटी नीलम उसके पास आती है। उसकी शादी हो गई थी पर वह प्रेम किसी और से करती थी और अपने वर्तमान धन-धान्य सम्पन्न वैवाहिक जीवन से खुश न थी - 'विस्वास को लगा मानो विद्या दीदी का ब्याह हो रहा है और वह बुझे मन से विदा ले रही है। उसे आज समझ में आ रहा था कि दीदी अपने विवाह से खुश क्यों नहीं थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 89)

यहां पर विस्वास को विद्या दीदी की सीख का स्मरण हो आता है और वह सोचता है- 'यहाँ पर नीलम समाज के चंगुल में फँस गई थी। दीदी ने यह तो बताया था कि उसे अपनी हीरोइन को आज़ाद कराना है, परन्तु कैसे कराना है यह न तो उस वक्त दीदी ने बताया था और न ही विस्वास को समझ आया था। उसे आज समझ में आया था कि आदर्शों और व्यावहारिकता में बहुत बड़ा अन्तर होता है। उसकी विद्या दीदी आज स्वयं समाज के चंगुल में फँस चुकी थी, तभी तो विवाह के पश्चात् उससे अभी तक न मिल पायी थी।

मास्टरजी, मैं आपके लिये रोज चाय ले आया करूं?

विस्वास उसकी आँखों में उमड़ रहे विनीत भाव को नकार नहीं सका..... विस्वास को लगा जैसे कि विद्या दीदी उसे, हीरोइन को विलेन के चंगुल से मुक्त कराने का रास्ता बता रही है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 91)

अभिव्यक्ति उपन्यास की यह घटना अबला की मन्ज़िल कहानी से हू ब हू मेल खाती है। संभवत: इस कहानी का अमर, अभिव्यक्ति का विस्वास है और कहानी की पात्र मौसी उपन्यास की पात्र नीलम है। अबला की मन्ज़िल कहानी की नायिका मौसी का नाम भी कहानी में नीलम ही है। इस कहानी का नायक अमर भी एक हवेली में किराये पर ही रहता है। उसकी दिनचर्या भी वही है जो उपन्यास के नायक विस्वास की है। उपन्यास एवं कहानी दोनों में ही मकान मालिक के लड़के की सगाई होने के अवसर का वर्णन है। कहानी में मकान मालिक के लड़के की मौसी नायिका नीलम है जबकि अभिव्यक्ति में नीलम मकान मालिक की विवाहिता बेटी है। इसके अलावा शेष घटनाक्रम में समानता है।

'पंकज की सगाई तय हो गई थी। सगाई कब हुई, कैसे हुई, उसमें कौन-कौन मेहमान आये इससे उसे कोई सरोकार न था ..... दो माह बाद विवाह

होना तय हो गया और घर में मेहमानों की श्रृंखला की प्रथम कड़ी के रूप में अपने एक आठ वर्षीय बालक के साथ उदयपुर वाली मौसी (पंकज की मौसी) का आगमन हुआ।' (अबला की मन्ज़िल कहानी संग्रह, पृष्ठ 16)

'रात्रि के नौ बज रहे थे। हवेली में बहुत सारे मेहमान आये हुए थे। मकान मालिक के लड़के की कल सगाई जो थी पूरा घर महिलाओं, बच्चों और बहन-बेटियों की हर्षध्वनियों से चहचहा रहा था। '

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 87)

उपन्यास की नायिका सरला पर समाज के सफ़ेदपोश लोगों द्वारा छद्मवेश में अत्याचार किये जाते हैं। उपन्यासकार ने भारतीय समाज में व्याप्त इन छद्मवेशी गतिविधियों का बेबाक चित्रण किया है। सरला के साथ जीवन में दो बार बलात्कार होता है। प्रथम बार यह दुष्कृत्य उसके ममेरे भाई आशीष द्वारा किया जाता है और दूसरी बार जब उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह होता है। नायक विस्वास सरला की पीड़ा को समझकर उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करता है तथा समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

यह सत्य है कि विस्वास एक सुदृढ़ चरित्र नायक है, पर कभी-कभी मर्यादा की सीमाओं को लाँघ जाता है पर बाद में उसे पश्चाताप होता है। अभिव्यक्ति का नायक विस्वास एक धीर गंभीर सुदृढ़ चरित्र है जो अपने आचरण से समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा एक यथार्थवादी उपन्यासकार हैं जिन्होंने जीवन के विविध पक्षों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। उनकी कृतियों में जीवन का यथार्थ अँकन होने के साथ ही साथ मनोविज्ञान की गहरी पकड़ देखने को मिलती है। उनकी रचनाओं में भारतीय नारी जीवन की विडम्बनाओं, बेमेल विवाह, अन्धविश्वासों का विरोध, बाल मनोविज्ञान, विचार स्वातन्त्र्य, थोथी सामाजिक धारणाओं पर प्रहार, मानव स्वभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण, साहित्य-संगीत आदि कलाओं का मणिकाँचन संयोग तथा कर्म की प्रधानता आदि प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। डॉ. शर्मा का कृतित्व मनोविज्ञान के विविध धरातलों का स्पर्श करता हुआ नारी के विविध रूपों को केन्द्र बनाता है, साथ ही युवा मानसिकता के चित्रण हेतु यथार्थ के कैनवास का आधार अपनाकर मानवीय संवेदनाओं को चित्रांकित और काव्यांकित करता है।

❑❑❑

25

अभिव्यक्ति एवं विरह का इन्द्रधनुष का कथा शिल्प

सौ. पद्मश्री

भारतीय कथा साहित्य अपनी प्रकृति में आवृत्तपरक रहा है और आख्यान की परम्परा मूलत: आवृत्ति ही है। इसे विश्व साहित्य में भारत की विशिष्ट देन माना गया है। जहाँ से कथा का आवर्तन होता है और कथा अन्त में फिर वहीं लौट आती है। इस वृत्त में कथाओं के और भी वृत्त बनते जाते हैं। कथाओं के भीतर कई-कई कथाओं का विकास होता है। 'कथा सरित सागर' और 'पंचतन्त्र' का कथा-शिल्प भी यही है। हमारे पुराणों में आख्यान इसी तरह कथा-श्रृंखलाओं में मिलते हैं।

यही कथा-शिल्प डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के उपन्यासों में है। कथाओं में कथाएँ। एक-दूसरे से गुँथी हुई कथाओं का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है। इस चक्रीय गति में चूँकि अन्त नहीं है इसलिए समाप्त हो जाने पर रिक्तता का बोध भी नहीं होता और न ही कुछ खो देने का विषाद। भारतीय चिन्तन में इसीलिए मृत्यु को केवल देहान्तरण माना है। जहाँ मृत्यु होती है वहाँ अस्थाई समय के लिए विषाद होना स्वाभाविक है परन्तु फिर उसी बिन्दु पर पुनर्जन्म होता है। कैलाश जी के उपन्यास 'अभिव्यक्ति' का आरम्भ भी ऐसा ही है। उपन्यास की कथा विस्वास एवं सरला के केन्द्रीय पात्रों के मिलन से आरम्भ होती हुई आगे बढ़ती है जो उनके जीवन को विकसित करती है और अन्त में उनका पुनर्मिलन होता है। यह विशुद्ध भारतीय दृष्टि ही नहीं अपितु भारतीय आवृत्त-कथा शिल्प का सफल प्रयोग भी है। 'अभिव्यक्ति' में विस्वास के

*बिल्डिंग नं. एन 2 ए, फ्लैट सं. 34, कामां पार्क, कामां रोड, अँधेरी स्टेशन के सामने, मुम्बई-400058

बाल्यकाल, सुलभा भाभी, सुशीला दीदी, मिसेज घोष, आभा आदि के इर्द-गिर्द निर्मित कई स्वतन्त्र वृत्त हैं। इसी प्रकार 'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास नायिका रोनू की स्मृतियों से प्रारम्भ होकर नायक के बाल्यकाल, किशोरावस्था एवं युवाकाल के दौरान उसके साथी योगेश, मीता दीदी, विधवा अंजू, मीनाक्षी, झाबुआ वाले हैडमास्टर जी और सानिया के इर्द-गिर्द कई स्वतन्त्र वृत्तों का निर्माण कर एक ऐसे महावृत्त का निर्माण करता है जिसके मध्य में 'अभिव्यक्ति' की सरला पुनः अपने जीवन्त रूप में प्रकट होकर केन्द्र बिन्दु बन जाती है। 'विरह का इन्द्रधनुष' की सरला अभिव्यक्ति से चलकर यहाँ पर पुनः प्रकट होती है और अन्त में रोनू में एकाकार हो जाती है। कैलाश जी के इन दोनों ही उपन्यासों में इस महावृत्त की केन्द्रीय नायिका सरला है और वही इन उपन्यासों की आत्मा भी है।

कैलाश जी के इन उपन्यासों को पढ़ने पर लगता है कि वे एक ही रचना हैं। देखा जाए तो 'अभिव्यक्ति' एवं 'विरह का इन्द्रधनुष' दोनों उपन्यासों को मिलाकर कैलाश जी के कथा साहित्य का एक महावृत्त पूरा हो जाता है। वैसे इन दोनों उपन्यासों का आरम्भ बिन्दु भी समय की दृष्टि से एक ही है। नाम चाहे वे पात्रों के हों या स्थानों के, थोड़े उलट-पुलट के साथ वे एक जैसे ही हैं। 'अभिव्यक्ति' की मंजरी 'विरह का इन्द्रधनुष' की विद्या और दोनों ही उपन्यासों की सरला इनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है। एक पूरे रचाव का नाम है 'सरला' जिसके इर्द-गिर्द इन उपन्यासों का जाल बुना गया है। 'अभिव्यक्ति' प्रारिम्भक अवस्थाकाल है और 'विरह का इन्द्रधनुष' उसका विकास, परन्तु इनमें अन्त कहीं नहीं है। 'अभिव्यक्ति' में विस्वास को सरला मिल जाती है। उपन्यासकार ने इसे नायक-नायिका का मिलन बताया है परन्तु वास्तव में यह प्रेम के रंग में रंगे दो प्रेमियों के मिलन का विस्वास है जिसके जादुई मोहबन्ध में पक्षकारों को अपने प्रेमी से मिलने की भ्रान्ति होती है। ऐसा नहीं होता तो 'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास का सृजन ही नहीं हो पाता। सत्य तो यह है कि विस्वास को उसकी सरला मिली ही नहीं। तभी तो विस्वास ने निर्मल का आवरण ओढ़कर 'विरह का इन्द्रधनुष' के विभिन्न पात्रों के मध्य अपनी सरला को तलाशना प्रारम्भ किया और उसे आगे चलकर रोनू में उसका प्रतिरूप दिखलायी दिया। पर क्या उसे सरला मिल सकी? यह एक अन्तहीन यात्रा है विस्वास की, उसके जन्म-जन्मान्तरों की कहानी। सरला एवं विस्वास

की आत्माओं की मिलन हेतु छटपटाहट है यह। यही डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी की रचनाधर्मिता है और उनके लेखन की विशिष्टता भी जो उन्हें अन्य उपन्यासकारों से अलग पंक्ति में ले जा खड़ा करती है जीवन के यथार्थ का चित्रण करने वाले एक सुयोग्य शिल्पकार के रूप में।

दोनों ही उपन्यासों में ऐतिहासिकता का भी चित्रण है जिसमें पात्रों की भूमिका का अन्त भी होता है परन्तु उसका स्थान नये पात्र ले लेते हैं । परन्तु विस्वास, निर्मल तथा सरला ऐसे पात्र हैं जो अन्तहीन हैं और एक-दूसरे से गुंथे रहते हैं। इन पात्रों एवं उनके समय को ही कैलाश जी ने अपने उपन्यासों के कथन के लिए चुना है। दोनों ही उपन्यासों के विभिन्न पात्रों पर आधुनिकता का प्रभाव भी है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह विभाजित हो जाता है । तब इस विभाजन और विभाजित दृष्टि से कई-कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे-जैसे आधुनिकता का प्रभाव गहरा होता जाता है, समस्याएँ विकराल होती जाती हैं। संघर्ष तीव्रतर हो जाते हैं और समाज में कई-कई परिवर्तन हो जाते हैं। तब उपन्यास का कथा-प्रवाह इन सबको साथ लेकर घटित का बखान करते हुए आगे बढ़ता है।

कैलाश जी के दोनों ही उपन्यासों की पृष्ठभूमि राजस्थान का ढूंढाड़ रहा है परन्तु अपने गाँव के प्रति आसक्ति होते हुए भी उन्होंने आज के मैड़-विराट अँचल को उपन्यास का विषय नहीं बनाया है क्योंकि आज के ढूंढाड़ में वह परिचित गन्ध नहीं है। स्वयं कैलाश जी के ही शब्दों में—

'मैं अपने जन्म स्थान की यादें एवं विद्यार्थी जीवन की घटनाओं को अपने अन्तर में समाये लगभग तीस वर्ष तक वहाँ से दूर रहा और इस अवधि में मैंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से इन स्मृतियों को जीवित रखा । इस प्रकार स्वतः ही साहित्य-सृजन हो गया। परन्तु एक दीर्घकालखण्ड के उपरान्त जब दृष्टि उठाकर देखा तो मेरा जन्म स्थान बदल सा गया था। मेरी स्मृतियाँ छिन्न-भिन्न सी होती प्रतीत हुई। न वहाँ पर पुराने लोग रहे थे, न वह सोच, प्रेम, अपनत्वपन और एक-दूसरे में समर्पण की भावना। मेरे साहित्य के पात्र एक-एक करके इस दुनियाँ से प्रस्थान कर गये थे। श्योलाल के चबूतरे एवं उनकी छतरी का नामोनिशान न था। उस स्थान पर सड़क के किनारे एक छोटी सी मूर्ति ज़मीन में धँसी एक-दो हाथ का कपड़ा ओढ़े अपने भाग्य को

कोस रही थी। मुझे तो तब ही पता लगा कि उस चबूतरे में कोई मूर्ति भी थी। बचपन में मैं उस चबूतरे के पास अधिक देर न रुका था पर आज वहाँ खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि श्योलाल कौन था? पर कौन बताये। आज तो लोगों को यह भी पता न था कि वहाँ कभी कोई चबूतरा भी था। बोड़ी की ढाणी के कच्चे घरों के स्थान पर पक्के मकान बन गये थे। परन्तु मन को ठेस पहुँची यह सब देखकर। जब मैं स्कूल जाने हेतु इधर से गुज़रता था तो वहाँ कच्चे घरों के सामने सड़क के किनारे एक भूरा कुत्ता बैठा रहता और मैं डर के मारे अपनी चाल धीमी करे एवं कनखियों से कुत्ते को देखते हुए सड़क पार करने लगता। पर आज ये सब खो गये थे। यदि इस स्थान पर मैं एक-दो दशक पहले आ जाता तो मिट्टी के कच्चे घड़े में बन्द स्मृतियाँ आधुनिकता एवं विकास की ठेस लगते ही घड़े को तोड़ देती और तब क्या यह साहित्य-सर्जना हो पाती? कभी नहीं।' (कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस युग के ढूंढाड़ में उनके बाबा, योगेश, तोलाराम-भोमाराम धानका, नन्छा दर्जी, विद्या, विस्वास, सरला, सुशीला दीदी, राजेश्वरी जीजी, लाडली वैद्यजी जैसे भरे-पूरे पात्र आज इस युग में तो मिलना असम्भव है। दूसरा कारण यह भी रहा कि जिस ढूंढाड़ को उन्होंने इतना डूबकर रचा उसे सम्भवत: अस्सी के दशक में छोड़ देना उनकी विवशता थी। मैड़ गाँव उनकी जन्मस्थली थी। पिता के निधन के बाद सन् अस्सी से गाँव छूट सा गया था। फिर वे जयपुर, श्रीगंगानगर, नांगल, सिरोही, जयपुर होते हुए समूची (जिला अलवर), अजीतगढ़, नीम का थाना (जिला सीकर), श्रीगंगानगर होते हुए पुन: जयपुर आए। फिर जोधपुर, भरतपुर होते हुए अलवर जिले के शाहजहांपुर गाँव में आए। यहाँ आकर ही उन्हें युग परिवर्तन का बोध हुआ। वह भी तब जब उन्होंने गाँव जाकर अपने घर-बार एवं अपने हिस्से के खेतों की सुध ली। तब उनके लेखन का प्रवाह मुड़ा और युग परिवर्तन को उन्होंने अपने गीतों, कहानियों, कविताओं एवं उपन्यासों में उकेरना प्रारम्भ किया।

परन्तु शाहजहांपुर आने से पूर्व तक वे जहाँ-जहाँ भी रहे उनका वह ढूंढाड़ और उसमें भी विशेषकर उनकी जन्मस्थली गाँव मैड़ सदा उनके साथा रहा। बल्कि किशोरवय का उनका देखा और जाना मैड़ उन्हें समय बीतने के साथ-साथ अपनी ओर ज्यादा आकर्षित करने लगा। यह दूरागत आसक्ति उनके अपने उपन्यासों में ढूंढ़ाड़ के मैड़ गाँव को रचने का प्रमुख कारण बनी। उन्होंने

दोनों ही उपन्यासों की सरला को मैड़ गाँव की पृष्ठभूमि से ही देखा है जबकि सरला नाम की पात्र उनकी जयपुर शहर की खोज है और उन्होंने चाहकर भी विस्वास द्वारा लिये गये उस मकान की कोठरी में उसे ढूंढने का साहस नहीं किया। इस बारे में वे स्वयं बताते हैं—

'सरला का मकान, विस्वास द्वारा किराए पर ली गई कोठरी, ये सब आज भी ज्यों के त्यों मेरी स्मृतियों में जीवन्त हैं। मैं कई बार उस इलाके से गुजरा भी परन्तु रुककर उस गली की ओर देखने का साहस भी न कर पाया। अपनी इस दुविधा का जिक्र मैंने अपनी एक सहकर्मी श्रीमती मीना श्रीवास्तव से किया तो उन्होंने सब कुछ देख आने का मशविरा दिया परन्तु मैं वह सब कुछ न कर सका। हाँ मीना जी की प्रेरणा से वर्ष 2001 में 'बन्धन' कविता जरूर लिखी गई जिसके बारे में जब मैंने उन्हें दूरभाष पर बताया तो उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की। तब 'बन्धन' पर मैंने अपनी शिष्याओं को कई बार कथक नृत्य प्रस्तुत कराया।' (कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

इससे यह स्पष्ट है कि जयपुर की बजाय मैड़ ही उनके उपन्यासों एवं गीतों का प्रमुख केन्द्र बना वरना जयपुर में भी वे कम न रहे। अध्ययनकाल से लेकर सेवाकाल तक का लम्बा समय उन्होंने जयपुर में व्यतीत किया और अब वहाँ पर अपना स्थायी निवास भी बना लिया है पर उनकी रचनात्मकता का वाहक मैड़ ही बन पाया। परन्तु अब उनका मन वहाँ के बदलाव से पीड़ित है अत: सम्भवत: आगामी रचनाओं में उनका मन विस्थापित हो जाए।

❑❑❑

26

अभिव्यक्ति और विस्वास

विजय जोशी

व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न पड़ावों से होकर आगे बढ़ता रहता है। ये वे पड़ाव होते हैं जो जीवन को ग़हरे तक प्रभावित करते हैं। यही प्रभाव अनुभूतियों का पुंज बनता है जो व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को अभिप्रेरित करता रहता है। पड़ाव पर ठहरा, रुका, सोया, जागा व्यक्ति जब अनुभवों के समुच्चय के साथ अगले पड़ाव पर पहुँचने की यात्रा प्रारम्भ करता है तो उसका मन कई सम्भावनाओं को समाहित किये रहता है। यही सम्भावनायें व्यक्ति को जीने का आधार प्रदान करती हैं और जीवन गतिमान रहता है।

यही गति प्रकृति का उपहार है, जीवन का आधार है, सोच का प्रतिमान है, विचारों की पराकाष्ठा है, आशा की किरण है, कुछ पाने की ललक है, कुछ कर गुज़रने का जज़्बा है, समर्पण का आदर्श है, प्रेम का इज़हार है, वेदना का मरहम है, विछोह का साथी है, और है वह सब जो व्यक्ति हृदय के भीतर संजोये बैठा है और अन्ततः विश्वास के साथ अभिव्यक्त कर देता है।

इन्हीं सन्दर्भों का खुलासा करती है 'अभिव्यक्ति' औपन्यासिक कृति जिसमें कथाकार डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने मनुष्य के भीतर की सहजता और प्रकृति को अनायास जोड़ दिया है। मनुष्य के भीतर की सहजता उसके भावनात्मक सन्दर्भों का पर्याय होती है जिसे वह समयानुसार प्रकट करता है। इसीलिए लेखक ने इसे मन से स्वीकारा भी है-

'अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्य की भावनाओं से होता है। कभी कोई व्यक्ति अपने मन के भावों को अभिव्यक्त कर देता है, परन्तु दूसरा पक्ष उसको समझ पाने में असमर्थ होता है। कभी-कभी किसी पक्ष द्वारा भावनाओं

*2/ 48, गणेश तालाब, बसन्त विहार, कोटा (राजस्थान)

की स्पष्ट अभिव्यक्ति के बिना भी दूसरा पक्ष उसे समझ लेता है और कभी-कभी दोनों ही पक्ष अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं परन्तु स्वेच्छा से या संकोचवश ऐसा कर नहीं पाते और एक दूसरे से परिचित होते हुए भी अपरिचित ही बने रहते हैं।

मनुष्य के जीवन में इस विषय का दायरा अत्यन्त ही विशद् है, और मुझ जैसे अकिंचन के लिये इसे लेखनीबद्ध करना बड़ा ही कठिन कार्य है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, प्राक्कथन से)

तथापि यह उपन्यास व्यक्ति के हृदय का प्रतिबिम्ब तो है ही, व्यक्ति के जीवन का यथार्थिक धरातल भी है।

व्यक्ति के जीवन के दो पहलू औपन्यासिक कृति 'अभिव्यक्ति' के महत्वपूर्ण पहलू हैं - वह हैं भावनाओं की पवित्रता और अभिव्यक्ति की सशक्तता। इन दोनों सन्दर्भों को उपन्यास का नायक विस्वास आरम्भ से अन्त तक आत्मसात् कर अपने जीवन को जीता है। जीवन के विभिन्न पड़ावों पर विस्वास अपने भीतर की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए सायास और अनायास प्रयास करता है तथापि वह सफल तो होता ही है। सफलता के इस सोपान तक पहुँचने के लिए विस्वास के कई रूपों का सामना होता है। उसके ये विभिन्न रूप उसकी अभिव्यक्ति के बहुतेरे प्रसंगों और प्रकट करने के तरीकों का खुलासा करते हैं वहीं इस बात को बड़ी शिद्दत के साथ और ग़हरे से विवेचित और विश्लेषित करते हैं कि मनुष्य की सोच यदि दमित रहती है तो वह विचलित रहता है, जीता तो है तथापि भीतर तक पीड़ा के अलाव में तपता रहता है। कदाचित् इसीलिए 'विस्वास' का विश्वास पुरजोर तरीके से अभिव्यक्त हुआ है और उसकी 'अभिव्यक्ति' साकार हुई है।

इसीलिए इस आलेख में विस्वास की अभिव्यक्ति के जो रूप उभरे हैं उन्हीं का विश्लेषण करने का प्रयास किया है-

आदर्श बेटा विस्वास और उसकी अभिव्यक्ति

गाँव के जमींदार के यहां नौकरी कर रहे पिता भगत जी का बेटा विस्वास अपने दायित्वों के प्रति सजग है तथापि वह मन के भीतर के भावों को दबा भी लेता है कदाचित् पुत्र और वह भी संजीदा। जब पिता के शब्द उसे भीतर तक कचोटते हैं तो वह आह! कर उठता है-'बेटा विस्वास, तुम्हारी तीनों बहनों

के ब्याह मैंने बड़ी मुश्किल से किये हैं, इसीलिए सिर पर कुछ कर्ज़ का बोझ भी आन पड़ा है।'

'कोई बात नहीं बाबा, आप चिन्ता क्यों करते हैं? हम दो बेटे हैं आपके। सब ठीक हो जायेगा।'(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 8)

परन्तु पिता के द्वारा भाई के बखान और यथार्थ को सुनकर तो वह स्वत्व पर हुए प्रहार से तिलमिला उठता है। क्योंकि वह यह अच्छी तरह जानता है कि अपने बड़े भाई की वजह से पिताजी को आत्मग्लानि और आर्थिक भार भी उठाना पड़ता है। विस्वास की ईमानदारी और सदाशयता का गाँव भी कायल है। उन्हें उम्मीद है कि वह कुछ न कुछ अवश्य बनेगा। लोग आपस में बातें करते-

'कितना अन्तर है दोनों भाइयों में। एक वह चोर, नालायक एवं बदमाश सोहन है, जिसने बेचारे दूध जैसे भगत जी का जीवन नर्क बना रखा है और दूसरा यह विस्वास है जो अनेक परेशानियां उठाकर भी हमेशा अपनी पढ़ाई का ध्यान रखता है और कक्षा में प्रथम आता है।'

'गाँव वालों के इस प्रकार के वार्तालाप को सुनकर जहाँ भगत जी को दु:ख होता वहीं विस्वास मन ही मन कुछ संकल्प कर उठता'

'इण्टर करने के बाद ही विवश होकर उसे एक प्राईवेट सर्विस करनी पड़ी। जहाँ भगत जी को इससे राहत मिली, वहीं विस्वास को उसकी इन्जीनियर बनने की इच्छा अन्दर ही अन्दर पीड़ित करती। वह उस पीड़ा को अभिव्यक्त न कर पाता, परन्तु मन ही मन कुछ निश्चय करके अपनी साधना में लग जाया करता करता' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 8-10)

विस्वास की यह घुटती हुई अभिव्यक्ति ही उसकी भावनाओं को दमित किये रहती। दमित इच्छाओं से सराबोर व्यक्ति विकृतियों की राह अपना लेता है तथापि विस्वास का दृढ़ संकल्प उसे डिगने नहीं देता। अन्तत: वह इन्जीनियरिंग में अपने चयन की बात पिता से कहता है तो वे फूले नहीं समाते। परन्तु भाई सोहन को यह अच्छा नहीं लगा। फिर भी विस्वास का विश्वास और आदर्श कायम रहता है। वह पढ़ने में ध्यान लगाता और कुछ करने की प्रेरणा अन्तरात्मा से लेता रहता। पिता के मरने के बाद भी वह उनकी प्रेरणात्मक बातों को याद करके आत्मबल को बढ़ाता-

'बेटा विस्वास, बढ़ना ही जीवन है और मनुष्य को जीवन के अन्तिम क्षणों तक आगे बढ़ने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 8-10)

कर्म करने का अनुगामी विस्वास

गीता में कर्मयोग की बात विविध प्रसंगों में विद्यमान है। बिना कर्म के फल नहीं मिलता है। फिर जैसा कर्म वैसा फल। परन्तु विस्वास यहाँ कर्म की पैरवी ही नहीं करता वरन् धार्मिक आडम्बरों पर प्रहार भी करता है। वह जैसा सोचता है वही अपने मित्र महेश को अभिव्यक्त कर देता है जब वे दोनों मुम्बई के महालक्ष्मी टेम्पल में दर्शन हेतु जाते हैं-

'चलो भाई लाईन में लगो नहीं तो महालक्ष्मी के दर्शन नहीं हो पायेंगे।'

महेश की आवाज सुनकर चौंक गया था विस्वास। उसने देखा कि महालक्ष्मी टेम्पल के सामने दर्शनार्थियों की लम्बी कतार लगी हुई है। विस्वास को ये सब केवल औपचारिकताएं मात्र लगीं।

उसने जब महेश को अपनी ओर ताकते हुए देखा तो उससे रहा न गया और बिना किसी की परवाह किये बोल पड़ा-

'महेश, हमारे देश में औपचारिकताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि कर्तव्य पर । और यदि व्यक्ति अपना कर्तव्य करता रहे तो उसे और कुछ करने हेतु विवश न होना पड़ेगा।'

उसका आशय न समझकर ड़र के मारे धीरे से बोल पड़ा महेश-

'विस्वास, देवताओं के दरबार में ऐसी बातें करना उचित नहीं, लोग क्या सोचेंगे।'

पीड़ा से तिलमिला उठा विस्वास- 'लोग क्या हम लोगों की परवाह के अनुसार अपने कर्म को राह देंगे? महेश, हमारे भाग्य के सहयोगी जितने हम स्वयं हो सकते हैं उससे अच्छा सहयोग न तो कोई हितैषी दे सकता है और न ही भगवान अनायास कोई आशीर्वाद दे जायेंगे। महेश मेरे भाई, यदि मनुष्य केवल अपने भाग्य एवं देवताओं के आशीर्वाद के भरोसे बैठ जायेगा तो सच मानो, उसका भाग्य भी निश्चय ही उसके शिथिल इरादों के साथ बैठ जायेगा।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 12)

कर्म की प्रधानता को आत्मसात् करने वाला विस्वास, अंग्रेजों के मन्दिर में मनुष्य के जीवन का आध्यात्मिक पक्ष यथार्थ में देखकर विचारों की गहराई में डूब जाता है। वह सोचने लगा – 'जीवन नश्वर है , फिर व्यक्ति क्यों इतने उपक्रम करता है। क्या वह नहीं जानता कि एक दिन उसे इस सँसार से चले जाना है।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 13)

विस्वास की अभिव्यक्ति और उसका प्रभाव

उपन्यास में एक गहरी बात उभरकर सामने आयी है कि व्यक्ति ने जब भी अपनी अभिव्यक्ति को किसी कारणवश लगाम लगाई तो भविष्य में वह दमित इच्छा का रूप धारण करती है और जब भी प्रकट होती है वह कुछ नहीं देखती। विस्वास के साथ ऐसा ही होता है। यहाँ लेखक का अनुभव खुलकर सामने आता है। इसका प्रमाण भी लेखक ने स्वयं ने अपने प्राक्कथन में बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है–

'समसामयिक परिस्थितियां, सामाजिक परिवेश, भाँति–भाँति के व्यक्तियों का सम्पर्क–संयोग और जीवन के खट्टे–मीठे अनुभव, किसी भी उपन्यासकार के लेखन को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। यथार्थपरक साहित्य–सर्जना ही आम पाठक की कथा होती है और वह उसी में अपने अतीत की प्रतिच्छाया देखकर आत्मसन्तुष्टि प्राप्त करता है।

.....

अपने गाँव की श्रीराम प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय में मिडिल तक का मेरा शिक्षण, आगे के अध्ययन हेतु जयपुर आना, बीच ही में शिक्षण में व्यवधान, पुन: अध्ययन का प्रारम्भ एवं आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए अपने अध्ययनकाल को जारी रखना आदि सब परिस्थितियों–घटनाओं ने मेरी अनुभव शृंखला को समृद्ध किया। मेरे अध्ययनकाल में मेरी सफलता हेतु पिताश्री की व्यग्रता एवं अपनी सीमाओं से भी परे उनका सहयोग, मेरी बड़ी बहन स्व. श्रीमती गीता देवी एवं पूज्य बहनोई श्री श्रीराम शर्मा द्वारा दिया गया प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता, बड़े भाई की प्रताडनाएं , मित्रों एवं हितैषियों की सद्भावनाएँ, किसी द्वारा व्यंग्य, किसी द्वारा उपहास, इन सभी संयोगों ने मेरे ज्ञान की अभिवृद्धि करते हुए मेरे अन्दर की सुसुप्त प्रतिभा एवं सामर्थ्य को उद्येश्य प्राप्ति हेतु अभिप्रेरित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जीवन के हर पड़ाव पर विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का साहचर्य मिला। बाल्यकाल से लेकर अब तक ऐसी अनेक विभूतियों से साक्षात्कार , जो मुझे मन की गहराइयों तक प्रभावित कर गये हैं, मानस पटल पर आज तक ज्यों के त्यों अंकित हैं, और वे ही मेरी साहित्य–सर्जना के मूल आधार हैं।

पूर्व में प्रकाशित मेरी तीन पुस्तकों में से अबला की मंज़िल (कहानी संग्रह) तुक्के का बादशाह (पाँच नाटक) पुस्तक के अधिकांश नाटकों में मेरे जीवन का अतीत भी कहीं–कहीं पर पात्र बनकर उभरा है, अत: मेरी साहित्य–सर्जना कल्पना मात्र न होकर यथार्थवादी है और यही मेरे लेखन की सीमा भी है।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, प्राक्कथन से)

इन्हीं अनुभूतियों के सहारे जब व्यक्ति अपना जीवन जीता है तो विस्वास का किरदार बड़ी बेबाकी के साथ साकार हो उठता है।

विस्वास की अभिव्यक्ति जब–जब भी मुखर हुई है वह अपने में गहरे तक बहुत बड़ा परिवर्तन अनुभव करता है। परिवर्तन की इस धारा में उसका चारित्रिक परिवर्तन भी होता है। इस परिवर्तन में विस्वास की दमित भावनाएं अपना आकार लेती हैं और वह उन भावनाओं को प्राप्त करने, उन्हें साकार करने और आत्मसात् करने हेतु लालायित हो उठता है और अपने कदम बढ़ाता जाता है.... बढ़ाता जाता है अन्तत: उसकी भावनाओं को उद्वेलित करने वाली 'सरला' जब उसे मिल जाती है तो उसकी तमाम चेष्टाएं और क्रियाकलाप सन्तुष्टी पाकर स्पष्ट अभिव्यक्ति का सुखद परिणाम होती हैं...।

उपन्यास के अध्याय दो से लेकर ग्यारह तक विस्वास का विश्वास और उसका वैद्यार्थिक (विद्यार्थी जीवन का) एवं सुपुत्रिक (सुपुत्र होने का) आदर्श का मार्ग बदलता रहता है और वह भावनात्मक सन्दर्भों को साकार करने में संलग्न हो जाता है। तथापि जीवन का उद्येश्य बराबर बना रहता है और अन्तत: विस्वास अपनी मेहनत और लगन से डॉ. विस्वास होकर विश्वविद्यालय के वाईस चान्सलर के रूप में नियुक्त होता है....।

लेखक की सूक्ष्म विवेचना और अपने परिवेश के प्रति सजगता यहाँ दिखाई देती है जब विस्वास को भावनात्मक रूप से गाँव वाली दीदी, माला, मिसेज घोष, सुशीला दीदी, आभा, मास्टरनी जी, मंजरी, हॉस्टल वार्डन की विधवा पुत्रवधू (भाभी) के साथ अपनी दमित भावनाओं को पूर्णता प्राप्ति की ओर

अग्रेषित करता है साथ ही कुछ बनने की प्रतिज्ञा को वाईस चांसलर बनकर पूर्ण करता है।

अपने नायक के दोनों रूपों को लेखक ने पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत कर समाज के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है। यही नहीं लेखक ने अपनी अनुभूतियों को सहजता से पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति दे डाली है जो लेखक की लेखन के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाती है। कदाचित् इसीलिए अभिव्यक्ति का विस्वास और विस्वास की अभिव्यक्ति एक दूसरे की पूरक हो गयी है।

इसी पूरकता में विस्वास के कई चरित्र उभरकर सामने आये हैं जो अपनी-अपनी अभिव्यक्ति को उभारते हैं और अपने भीतर समाये वज़ूद को बनाये रखते हैं।

ट्यूटर (शिक्षक) के रूप में विस्वास की अभिव्यक्ति

इस उपन्यास में विस्वास का यही किरदार प्रमुखता से उभरा है और यही किरदार 'विस्वास' के विश्वास और अभिव्यक्ति की प्रासंगिकता का प्रभाव साबित हुआ है।

विस्वास का जीवन संयमित ढंग से गतिमान था। वह प्राईवेट ट्यूशन आदि पढ़ाकर अपने ज्ञान को परिष्कृत करना अपने कैरियर के निर्माण में आवश्यक समझता था। उसे एक मित्र के सहयोग से एक कम्पनी के बड़े इन्जीनियर साहब के यहाँ ट्यूशन पढ़ाने का काम मिल गया था। वह इन्जीनियर साहब के घर पर अपनी छात्रा का प्रथम् स्वागत आज तक नहीं भूल पाया था।

माला इकलौती पुत्री थी मि. घोष की। परन्तु विस्वास श्रीमती घोष के स्वरूप व लावण्य में खो गया था। यहाँ विस्वास का चारित्रिक परिवर्तन उभरता है- 'बड़ा ही अनुशासित जीवन रहा था उसका। इससे पूर्व शायद ही कभी किसी स्त्री या सहपाठी छात्रा के कारण उसका मन डगमगाया हो।

पूना हॉस्टल में रहते हुए वार्डन की विधवा पुत्रवधू का व्यवहार अब उसे कुछ-कुछ समझ में आ रहा था। आज से पूर्व उसके मन में उसके व्यवहार के प्रति अन्यथा विचार न उपजे थे'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 17-18)

'जिस दिन से उसने उनके यहाँ ट्यूशन पढाना प्रारम्भ किया था, भाभी की आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक आ गयी थी। सादगी एवं निर्मलता

की प्रतिमूर्ति भाभी को सुन्दरता ने आलिंगनद्ध करने में लोकलाज की जरा भी परवाह न की थी।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 19)

'उसने आज से पूर्व किसी स्त्री को इस भाव से न देखा था। वह हमेशा सच्चरित्रता के दायरे में बँधा रहा था, अत: उस दिन भाभी के मन के भावों को न समझ पाया था और उसे एक आकस्मिक घटना मानकर अपने को ही दोषी मानने लगा कि वह क्यों बिना दरवाज़ा खटखटाये अन्दर प्रविष्ट हुआ।

परन्तु आज उसे सब कुछ समझ में आ रहा था। उस दिन की घटना आकस्मिक न थी बल्कि भाभी द्वारा किया गया साशय उपक्रम था। अन्यथा क्यों वह उसके आने के समय ही बाहर आकर ड्राईंग रूम में कपड़े बदलने लगी थी।

यही बात विस्वास की समझ में उसी दिन आ जाती तो वह निश्चय ही भाभी को चरित्रहीन समझने लगता, क्योंकि अपरिपच्चता किसी विषय को प्रभावी नहीं बनने देती।

परन्तु आज कई वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् विस्वास भाभी के मन के भावों को ठीक प्रकार से समझ पाया था और उसे अपनी नासमझी पर एक प्रकार का पश्चाताप ही हुआ।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 20)

'उसके जीवन में यह प्रथम अवसर था जब वह अपने कर्तव्य से हटकर कुछ सोचने को विवश था। आज से पूर्व वह निश्चिन्त था, सहज भाव से अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने के निश्चय को सदा ही दोहराया करता था। उसके जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये होंगे जो आज की-सी स्थिति पैदा कर सकते थे परन्तु उस ओर उसका ध्यान ही न गया था।

परन्तु आज उसे अपने में हो रहे बदलाव एवं अपनी मन:स्थिति के परोन्मुख होने से आश्चर्यमिश्रित आनन्द का अनुभव हो रहा था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 21)

बदलाव की यह स्थिति और उस स्थिति की परोन्मुखता से उपजा आश्चर्यमिश्रित आनन्द का अनुभव विस्वास में अन्त तक रहा। वह जब भी किसी स्त्री अथवा लड़की के सम्पर्क में आया उसका भावनात्मक आनन्द अलग-अलग रूपों में प्रकट हुआ जो उसकी दमित इच्छाओं का परिणाम था जो वास्तव में विस्वास के क्रियाकलापों में 'विकृति' का द्योतक है। कारण स्पष्ट भी है। जब

वह भाभी, बहिन, दीदी की दृष्टि से स्त्री व लड़कियों को देखता है फिर जब उसका मन उन्हें देखकर रूप लावण्य और देहदृष्टि में खो जाता है तो ये ही रिश्ते 'प्रेयसी' में बदल जाते हैं और कदम लड़खड़ा जाते हैं। यही लड़खड़ाहट 'विकृति' का पर्याय है जिसे वह अन्त तक नहीं भूलता है। उसे रह-रहकर ये किरदार और इनके साथ हुए आचार -व्यवहार का दृश्य याद आता है और गुदगुदाता है।

सरला को ही लें। 'उसने सरला को सदा ही एक बहन के भाव से देखा था। कई बार ऐसे अवसर भी आये थे जब उसका सरला से स्पर्श हुआ था। एक बार तो उसकी शरारत से तंग आकर उसकी चोटी भी खींच दी थी उसने, पर उसके मन में उसके प्रति कोई अन्यथा भाव न आये थे।

परन्तु एक दिन जब सरला ने आँख में कुछ गिर जाने की बात उसे बतायी थी तो, उसकी पीड़ा से व्यथित होकर उसकी आँख की पुतली को उठाकर कितनी बार देखा था उसने, फिर भी उसके मन में उसके प्रति किसी प्रकार के कुत्सित भाव न उपजे थे।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 58)

'वह पढ़ने का तो केवल बहाना बनाती रही थी। और फिर एकाएक नींद आने का कैसा नाटक करने लगी थी। उसने उसे अपनी बाहों में उठा लिया और उसके कमरे में पलंग पर पटक आया था। उस समय वह सरला की भावनाओं को न समझ पाया था। उसे पीड़ा हुई और वेदना के स्वर उसके अन्दर ही अन्दर घुटकर रह गये.....

और उसने अपना सिर नोंच लिया। सरला ने उसके पौरुष को, उसकी भावनाओं को जो उद्वेलित कर दिया था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 58 पेरा 5,6)

'.... विस्वास ने उसके चेहरे की ओर देखा । उसकी दृष्टि सरला के मुखमण्डल से होती हुई गर्दन पर से फिसलती हुई उस स्थान में प्रविष्ट हो गयी जिनका स्पर्श उसे आँगन पार करते समय उद्वेलित किये दे रहा था।

विस्वास अधीर हो गया और उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा--हाय, तुम कितनी सुन्दर हो।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 59 पैरा 4)

यह परिवर्तन, विस्वास के अन्दर ज्वाला सी धधक रही अभिव्यक्त नहीं हो सकी, भावनाओं का है। यही भावना मिसेज घोष के यहाँ पनपने लगी जब

वह उनकी लड़की माला को पढ़ाने जाता है। वह श्रीमती घोष में सरला का प्रतिरूप देखता है। यह प्रतिरूप देखना विस्वास की दमित इच्छा का परिणाम था। 'वह विस्वास ..... मुक्ति मिल गयी हो।' (पृष्ठ 60, पैरा 7)

'विस्वास अपने आपको रोक नहीं पाया और मिसेज घोष को अपने आगोश में लेकर किसी कल्पना को मूर्तरूप देने में सुख का आनन्द लेने लगा। उसे लगा मानो आज एक लम्बे अरसे के पश्चात् उसे किसी असह्य पीड़ा से मुक्ति मिल गयी हो।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 61 पैरा 2)

यही विस्वास माला में भी सरला को देखता है जबकि वह उसका शिक्षक होता है।

विस्वास की यही भावना सुशीला दीदी को पढ़ाते वक्त होती है जबकि वह सुशीला का राखीबन्ध भाई होता है। माला को तो पढ़ाते वक्त वह पूछ भी बैठता है- 'माला यह बताओ कि व्यक्ति किसी के मन की भावनाओं को कैसे समझे?' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 71 अन्तिम पैरा)

माला का जवाब उसकी भावना को उग्र कर देता है और भावावेश में कह उठता है-

'हाँ तुम ठीक कह रही हो। स्त्री अपने मन के हर भाव को आँखों के माध्यम से व्यक्त करने में कुशल होती है और पुरुष उन भावों को आसानी से समझ पाने की सामर्थ्य नहीं रखता है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 72, पैरा 4)

ऐसा नहीं है कि विस्वास बड़ा होने पर ऐसा सोच रहा था। विद्या के साथ बचपन में उसकी भावनाएँ भी बलवती हुई थी तथापि व्यक्त नहीं हुई।

शिक्षक विस्वास भावनाओं पर काबू न पाकर उद्वेग में जीता है परन्तु संस्कार जब बलवति हो उठते हैं तो वह पश्चाताप भी करता है, जब उसे माला की बातों से पता चलता है कि उसने मिसेज घोष के साथ रात को विस्वास सर के साथ देख लिया है।

'विस्वास को लगा मानो वह आसमान से गिर पड़ा है। वह अपने आपको ऐसे भँवर में फँसा पाकर छटपटा रहा था, जहाँ से निकल पाना उसके लिये बड़ा कठिन कार्य था।

एक तरफ मिसेज घोष थीं, जिनकी मोहिनी शक्ति के वह वशीभूत हो गया था और दूसरी तरफ माला थी जिसे सब कुछ पता चल गया था।

उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह तो एक सीधा-सादा इन्सान था, तभी तो अभी तक स्त्री-चरित्र को नहीं समझ पाया था, और जब समझ पाया तो सब कुछ बहुत पीछे छूट गया था। और इसी का प्रायश्चित करने में वह आगे से आगे उलझता चला गया।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 17 पैरा 12, 13, 14)

यही विस्वास जब प्रायश्चित की अग्नि में भावनाओं को स्वाहा करता है तो यथार्थ में आकर कह उठता है - 'माला , मुझे लगता है कि मैं यहाँ पर आकर तुम्हार हित नहीं कर पा रहा हूँ, इसलिए मैं जा रहा हूँ यहाँ से। पर सदैव यह बात याद रखना कि मैं चाहे तुम्हारे पास रहूं या न रहूं, परन्तु तुम्हें पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनना है। तुम्हारी मंज़िल तुम्हें पुकार रही है माला।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 17 पैरा 8)

अपने मित्र रणवीर की बहिन मंजरी के साथ भी जब भावनाओं का शैलाब बढ़ने लगा तो वह सोचने लगा-

'लेकिन वह पढ़ने क्यों नहीं आयी मुझसे आज, क्या उसका जी अच्छा नहीं है? शायद ऐसा ही हो, अन्यथा इतनी जल्दी ही सो क्यों जाती अपने कमरे में जाकर!

उसका मन मंजरी की ओर से व्याकुल होने लगा। वह उठा और धीरे-धीरे चलकर उसके कमरे में जाकर बिस्तर पर बैठ गया। मंजरी आँखें बन्द किये आनन्द से नींद ले रही थी। विस्वास ने देखा कि वह मन ही मन मुस्कुरा रही थी। उसे लगा मानो नटखट सरला जानबूझकर लेटी है। वह उसके और नजदीक खिसक गया और उसके चेहरे को एकटक निहारने लगा। वह एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् अपनी भूल का प्रायश्चित करने हेतु अपनी सरला के और अधिक निकट जाना चाहता था।

एकाएक मंजरी की आँखें खुल गयीं और अपने सम्मुख विस्वास को पाकर हड़बडाकर उठ बैठी।

- क्यों भैया, अभी तक सोये नहीं? तुम्हारे मन में कोई चोर तो नहीं है? हमें नहीं बताओगे? और अनेक प्रश्न एक साथ करके वह ठहाका मारकर यह कहते हुए पलंग से उठ खड़ी हुई-

- ठीक है भैया, तुम मत बताओ अपने मन की बात, पर फिर भी मैं अपने भैया के लिये चाय बनाकर लाती हूँ।

उसकी आँखों में गहराई से झाँकते हुए कहा था मंजरी ने।

विस्वास की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। बस उसके मस्तिष्क में तो केवल रह-रहकर आज से दस वर्ष पूर्व की घटनाएँ आ-जा रही थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 81, 10-12, एवं पृष्ठ 82 का पैरा 1, 2, 3,)

परन्तु वह सम्हला- 'उसे लगा जैसे वह पुनः अपनी राह से भटक रहा है, अपने लक्ष्य से विचलित हो रहा है। और उसने निश्चय किया कि सवेरा होते ही वह यहाँ से चला जायेगा और कल ही मंजरी का परिवार भी आने वाला जो था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 82, अन्तिम से पहला पैरा।)

तथापि नीलम को देखकर वह पुनः अपने अतीत की आवाज़ से भावावेशित हो उठता है-

'नीलम चाय बनाकर ले आयी थी। नीली साड़ी में लिपटी वह उपवन की सुन्दर लतिका सी मन को भा रही थी और उसकी चूड़ियों की खनखनाहट उसके मन को व्यथित किये दे रही थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 91, पैरा 3)

'अगले दिन सन्ध्या के समय वह अपने पलंग पर बैठा कुछ लिख रहा था। प्रकट में भले ही वह व्यस्त हो, परन्तु उसका मन रह-रहकर नीलम की पदचाप का इन्तजार कर रहा था। एक ही दिन की मुलाकात में उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उसका विगत नीलम के रूप में उसके समक्ष पुनः उपस्थित हो गया हो ।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 92, पैरा 2)

वह पूछ बैठता है- 'तुम ससुराल जाकर भी इन क्षणों को विस्मृत तो नहीं कर दोगी। जब तुम शाम को चाय पीओगी तो क्या तुम्हें मेरे साथ बिताये गये इन क्षणों की स्मृति भी रह पायेगी?'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 92, पैरा 11)

नीलम रोती है, बतियाती है और विस्वास मास्टरजी कह उठते हैं -

'रोओ नहीं नीलम। मैं तुमसे वादा करता हूँ कि तुम जब-जब यहाँ आओगी, मैं तुम्हें ये क्षण उपलब्ध कराऊंगा।

विस्वास ने अनायास ही उसका हाथ थाम लिया था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 93, पैरा 2)

इस प्रकार विस्वास की अभिव्यक्तियाँ समय-समय पर मुखुर हुईं। यहाँ विस्वास शिक्षक के रूप में सम्हला तो सही परन्तु अपनी भावनाओं पर काबू नहीं रख पाया। यही भावनाएँ जब-जब बलवती हुई पूर्वाग्रहों से ग्रसित विस्वास के कदम अपनी अभिव्यक्ति को दर्शाने में लड़खड़ाते चले गये। यही लड़खड़ाते कदम विस्वास के चारित्रिक परिवर्तन के साथ उसके मस्तिष्क में घर कर गई विकृति को दर्शाते हैं। यही विकृति और यही पूर्वाग्रह उसकी अभिव्यक्ति को कामुक बना देते हैं।

जब यही शिक्षक विस्वास, शिक्षिका आभा को देखता है तो उसका मन पुन: उसको पाने को लालायित रहता है फिर चाहे वह छत पर घूम रही हो या नल पर पानी भर रही हो अथवा कपड़े धो रही हो। विस्वास अपने पूर्वाग्रहों से वर्तमान के तमाम क्रियाकलापों को उसी के अनुरूप देखता है और परखता है परन्तु आभा उसे झिड़क देती है- 'विस्वास को आभा से इस प्रकार की क़तई उम्मीद न थी। उसे तो यही प्रतीत हुआ था मानो आभा अपने आप को समर्पित करने के लिये उसे अवसर प्रदान करना चाह रही थी। परन्तु विरोधात्मक तरीके से उससे यह प्रश्न करना कि-

- क्या कर रहे हैं मास्टरजी आप!

और फिर अपने आप को बन्धन-मुक्त कराकर नीचे जाकर कमरे की कुण्डी बन्द कर लेना, उसे अजीब-सा लगा और इस घटना से वह भौंचक्का-सा रह गया।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 109, पैरा 8)

यहाँ पहली बार विस्वास की अभिव्यक्ति डरी हुई सी रही।

'अब विस्वास के मन में एक डर सा बैठ गया था। वह सोचने लगा-

- यदि उसने पवन को सब कुछ बता दिया तो ?

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 109 अन्तिम पैरा)

'.... परन्तु दूसरे ही क्षण उसे आशा की किरण महसूस होती-

- ऐसा नहीं हो सकता। वह मेरी हितैषी है, मित्र है, अत: मेरे अहित का कोई भी कार्य नहीं कर सकती।

विस्वास का मन भले ही उसे दिलासा दे रहा हो, परन्तु उसने निश्चय कर लिया कि वह इस स्थान से अपना तबादला करा लेगा और किसी ऐसे स्थान पर चला जायेगा जहाँ पर उसे आभा की याद तक न आने पाये। उसे अपने आचरण पर आत्मग्लानि होने लगी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 110, पैरा 1, 2, 3)

उसने आभा को एक पत्र लिखा- 'प्रिय आभा,

यदि मेरे कृत्य से तुम्हारे मन को किसी भी प्रकार की ठेस पहुँची हो तो तुमसे क्षमा चाहता हूँ, और विनती करता हूँ कि यह सब पवन को मत बताना। पता नहीं मेरे प्रति तुम्हारे सद्व्यवहार से, उन्मुक्त आचरण एवं अपनत्वपन से कैसे मैंने समझ लिया कि तुम अपने आपको मुझे समर्पित करना चाहती हो। और इसीलिए आज मैं सह धृष्टतापूर्ण कार्य करने का दु:स्साहस कर बैठा। अब मैं शहर जा रहा हूँ अपना तबादला कराने, क्योंकि मेरे मन ने जो सोचा उसे मैं भुला नहीं सकता, और जो चाहा वह हो नहीं सकता। बस, भगवान की पूजा करते समय मेरे लिये यही प्रार्थना करना कि मैं तुम्हें भुला सकूं।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 110, पैरा 5)

यहाँ भटकता हुआ विस्वास सम्हला है। उसकी अभिव्यक्ति साकार हुई है सकारात्मक रुख लेकर। अब वह बहकना नहीं चाहता था अत: दृढ़ निश्चय करके आगे प्रस्थान कर गया, अपने निर्णय को मूर्त रूप प्रदान करने। और 'विस्वास ने नये स्थान पर कार्यग्रहण कर लिया था। वह आभा को और उसके साथ बिताये गये हर क्षण को विस्मृत कर देना चाहता था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 111 पैरा 1)

यही बात वह जब मास्टरनी जी से मिलता है तब तक निभाता है। वह मास्टरनी जी को आवारा लड़कों को फ़िल्मी गाने सिखाने से मना करता है। मास्टरनी जी के असर होता है -'अब मास्टरनी जी का जीवन संयत हो गया था पहले वह आये दिन नौटंकियों एवं गप्पें हाँकने में लगी रहती थी, परन्तु अब उन्हें नियत समय पर घर पहुँचकर विस्वास की बाट जोहने में आनन्द की अनुभूति होती थी।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 119 पैरा 1)

'उन्हें लगा जैसे यही जीवन का सच्चा एवं यथार्थ स्वरूप है, एक ऐसा स्थल जहाँ पर उन्हें आज से बहुत पहले ही पहुँच जाना चाहिए था। उनके जी में आया कि विस्वास से लिपटकर अपनी मंज़िल को प्राप्त कर ले। परन्तु भले ही वे विस्वास से आयु में पन्द्रह वर्ष बड़ी हों, लेकिन उनमें भी अपने प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति करने का साहस न था।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 119 पैरा अन्तिम से पहले)

परन्तु 'विस्वास के मन में इस समय कोई अन्यथा भाव न थे और वह बहन जी के इस प्रकार आकर कौतुक से आँखें बन्द कर लेने को उनकी उन्मुक्त प्रवृत्ति की सहज अभिव्यक्ति ही मान रहा था। अत: उसने सहज भाव से मास्टरनी जी के हाथों को हटाते हुए मुस्कुराहट के साथ पूछा था–

– कहिये बहन जी, क्या ऊपर खुली छत का आनन्द लेने आयी हैं?

वे उसकी नासमझी पर झुंझलाकर रह गयी थीं और रुआँसी हो उससे बिना कुछ कहे ही उल्टे पैरों वापस लौट गयीं ।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 119 पैरा अन्तिम एवं 120 पैरा 1, 2)

यहाँ कामुक विस्वास तथा पूर्वाग्रहों से ग्रसित शिक्षक की मन:स्थिति का परिवर्तन स्पष्ट झलकता है। उसका दृढ़ निश्चय यहाँ प्रकट होता है।

पूर्वाग्रहों से ग्रसित मुक्त, द्वन्द्वावस्था से परे और प्रतिष्ठित समझदार विस्वास की अभिव्यक्ति

अपनी तमाम इच्छाओं को व्यक्त, अभिव्यक्त करता विस्वास भावनाओं के साथ सफ़र करता हुआ जब विश्वविद्यालय के वाईस चांसलर के पद पर पहुँचता है तो वह पूर्वाग्रहों से मुक्त द्वन्द्वावस्था से परे और प्रतिष्ठित समझदार व्यक्ति हो जाता है। तब, जब वह एयरहॉस्टेस बनी सरला को पत्नी के रूप में पाने का प्रस्ताव देता है। यहाँ विस्वास के क्रमिक परिवर्तन का दृष्टान्त सामने आता है।

यहाँ यह भी सिद्ध होता है कि व्यक्ति जो चाहता है अथवा धारणा बनाता है वह जब साकार हो उठता है तो आत्मबल तमाम ग़लतियों को स्वीकार कर उस व्यक्ति को शिखर तक पहुँचाता है। विस्वास के साथ यही होता है।

जब उसके सम्मान में एक महिला महाविद्यालय के प्राचार्य समारोह का आयोजन करते हैं। परन्तु वह हवाईजहाज से उतरते वक्त एक युवती को देखकर विगत की प्रतिच्छाया से घिर आता है।

'डॉ. विस्वास को लेने आये सेंट जॉजफ वूमेंस कॉलेज के प्रिन्सीपल डॉ. भट्टाचार्य के उद्‌बोधन से हड़बड़ाकर वर्तमान में लौट आया था विस्वास। वह फटी-फटी आँखों से हवाईपट्टी को देखने लगा, जहाँ पर कुछ समय पूर्व ही उसने एक जाती हुई नवयुवती के रूप में अपनी गाँव वाली दीदी, माला, मिसेज घोष, सुशीला दीदी, आभा, मास्टरनी जी आदि को देखा था। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उसके विगत का चलचित्र एकाएक विलुप्त हो गया है। उसने एक कसमसाती उम्मीद के साथ एक बार दृष्टि उठाकर आसमान की ओर देखा और एक गहरी नि:श्वास छोड़ता हुआ डॉ. भट्टाचार्य के साथ चल दिया।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 120 पैरा 4)

'कॉलेज का कैम्पस आने पर डॉ. भट्टाचार्य ने गाड़ी रोक दी थी। गाड़ी के ब्रेक की चरमराहट के साथ विस्वास भी अपने वर्तमान में लौट आया था। वहाँ से चलकर वह कॉलेज के मीटिंग हॉल में आ गया। एयरपोर्ट यहाँ से तीन किलोमीटर दूर रह गया था। ..... जिस युवती को उसने एयरपोर्ट की हवाईपट्टी पर देखा था, उससे उसे अपने अतीत की यादें ताजा हो आयी थीं। उसे ऐसा लगा मानो उसका विगत हवाईजहाज में सवार होकर दूर, बहुत दूर जा चुका है जिसे अब पकड़ पाना उसके लिये असंभव है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 120 पैरा 7-8)

विस्वास यहाँ पर विगत से वर्तमान में आता है और स्वागत में लगी युवतियों को देखकर –

'उसे लगा मानो उसकी सरला, मिसेज घोष, माला, विद्या, सुशीला दीदी, नीलम, आभा, मंजरी, मास्टरनी जी आदि सभी उसे यहाँ एक साथ मिल गयी हैं। उनके थोड़ी ही दूरी पर युवतियों का एक झुण्ड कहकहे लगा रहा था। विस्वास का मन भी उधर ही फिसला जा रहा था। उसे यह सब देखकर एक अदृश्य आनन्द की अनुभूति होने लगी थी। उसे उस झुण्ड में उसी हैण्डबैग वाली लड़की की एक झलक दिखलायी पड़ी और वह धीरे-धीरे उधर ही चलता

गया। उस लड़की का चेहरा तो स्पष्ट दिखलायी नहीं दे रहा था परन्तु उसके पास जाने पर विस्वास को दृढ निश्चय हो गया कि यह वही लड़की है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 121 पैरा 2)

विस्वास जब उससे पूछता है तो देखकर दंग रह जाता है। वह सरला ही थी। वही सरला जिसकी वजह से उसके मननोभाव समंदर की लहरों की भाँति चढ़ते-उतरते रहे थे। यह वही सरला थी जिसके भावों में लिपटा विस्वास प्रत्येक को सरला ही समझता रहा था।

आज वही सरला सामने थी तो विस्वास की अभिव्यक्ति हिरणी के समान कुलाँचे भरती सम्मुख आने को लालायित हो रही थी।

'तुम्हें मेरी कसम सरला। यदि तुम आज भी अपनी भावनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति न कर पायी तो मुझे जीवन में अपनी भूल को सुधारने का यह अन्तिम अवसर भी प्राप्त न हो सकेगा। .....हाँ सरला , आज मैं अपनी अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से करना चाहता हूँ, तुम्हारी संकेतात्मक अभिव्यक्ति को आज मैं स्वीकार करता हूँ। आज मैं तुम्हारी हर पीड़ा को बाँट लेना चाहता हूँ सरला, इसलिए बताओ अपना विगत, अपनी अब तक की कठिन यात्र सब कुछ, जो कुछ तुम बताना चाहती हो।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 122 पैरा 3-व 5)

जब सरला उसे अपना विगत बताती है तो विस्वास को ग़हरे तक पीड़ा का आभास होता है। यहाँ एक बात और स्पष्ट रूप से उभरती है कि सरला भी भावावेश में कष्ट भोगती है चूंकि वह स्त्री है। परन्तु विस्वास भावावेश में दबी अभिलाषा को साकार करता है क्योंकि वह पुरुष है। पुरुष-स्त्री का यही द्वंद्व उपन्यास की मनोवैज्ञानिकता को दर्शाता है।

यही कारण है कि विस्वास का चारित्रिक परिवर्तन सहज हो उठता है जब वह सरला को सामने पा जाता है। उसका दृढ़ विश्वास और दृढ़ निश्चय प्रकट होता है एक प्रौढ़ युवक के रूप में और विस्वास की अभिव्यक्ति प्रभावी हो जाती है।

'तुमने अपने जीवन में अनेक कष्ट उठाकर अपनी जो मंज़िल प्राप्त की है सरला, वह एक असाधारण कार्य है और जो सामान्यजनों के लिये भी प्रेरणादायक है। और रही तुम्हारे स्त्रीत्व की बात! तो सुनो सरला, हमारे देश में

कितनी स्त्रियों का शील सुाक्षित रह पाता है? हमारे समाज में कई ऐसे आशीष हैं जो पता नहीं कितनी अबलाओं और मासूम किशोरियों के स्त्रीत्व का कई बार हनन कर चुके होते हैं, और वे बेचारी लोक-लाज और सामाजिक प्रतिष्ठा के छद्म आवरण और तीव्र प्रभावों के कारण उफ् तक नहीं कर पाती। तभी तो मैं तुमसे कह रहा हूँ सरला, कि तुम असाधारण व्यक्तित्व की धनी हो और तुमने बड़ी ही वीरता से इन चरित्रहीन सम्बन्धों पर प्रहार किया है।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 125 पैरा 2)

'तुम वाकई महान् हो सरला। तुमने तो अपनी भावनाओं की कई वर्ष पूर्व भी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर दी थी जिसे मैं समझ नहीं पाया था। परन्तु आज मैं तुम्हारी स्पष्ट-अस्पष्ट समस्त प्रकार की अभिव्यक्तियों को समझ गया हूँ। परन्तु तुम भी आज मेरी स्पष्ट अभिव्यक्ति को अवश्य समझो सरला।

.....

मैं तुम्हें एक पत्नी के रूप में अपनाना चाहता हूँ सरला, बोलो क्या मुझे अपने पति के रूप में स्वीकार करोगी?'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 125 पैरा 5 व 6)

सरला की हाँ सुनकर विस्वास की भावनाएँ अभिव्यक्ति के शिखर पर पहुँचकर सुखद भविष्य की ओर बढ़कर बलवती हो गई थीं।

इस प्रकार 'अभिव्यक्ति' का विस्वास अपनी चाहत को पाकर जहाँ संतुष्टि की घनीभूत लहरों में सफ़र करता है वहीं अपनी प्रभावी और सम्प्रेषणीय अभिव्यक्ति से अपनी मंजिल तक पहुँच जाता है।

❑❑❑

27

विरह का इन्द्रधनुष : एक विवेचन

ओमप्रकाश शर्मा 'निर्लेप'

व्यवसाय से बैंक में वरिष्ठ अधिकारी और रूचि से गहरे साहित्य सर्जक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की कृति 'विरह का इन्द्रधनुष' हिन्दी साहित्य की अपने प्रकार की एक विशिष्ट रचना है। सामान्यतया पाठकों को एक मामूली सी लगने वाली यह पुस्तक उन लोगों को गहन अनुभूति कराती है जो विशेष ग्रामीण परिवेश के साथ मनोविज्ञान की पहचान भी करते हैं।

लेखक ने लगभग चालीस वर्ष पूर्व समाप्त हुए उस सांस्कृतिक युग को देखा है जो वैदिक युग (आदि युग) में प्रारम्भ हुआ था और जल संसाधनों के विलुप्त होने के साथ ही लुप्तप्राय हो गया। इस युग की मोटी पहचान लाव चडस से खेतों की सिंचाई की प्रणाली थी। इसको 'वत्स युग' भी कह सकते हैं क्योंकि बछड़ा / बैल वत्स शब्द से ही बना है। गाय को माता माना गया है। तीन वत्स होते थे। गाय का बछड़ा, घोड़ी का बछेड़ा (बछेरा) और नारी का वत्स (पुत्र)। जैसे औरत पुत्र जन्म पर कुआँ पूजती थी वैसे ही घोड़ी के बछेरा होने पर कुआँ पुजवाया जाता था। वत्स से वात्सल्य बना है। यह वात्सल्य का, प्रेम का, स्नेह का युग था। स्नेह का अर्थ जल भी होता है। जल-प्रधान युग था। जल स्रोतों के समाप्त होते ही सिन्थेटिक युग शुरू हो गया है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने उस युग के अन्तिम दिनों में जो सांस्कृतिक रत्न उस धरा में बच रहे थे, उनको पहचानकर, उजागर करने का प्रयास किया है।

पुस्तक खड़ी बोली के गद्य में लिखी गई है। हिन्दी संसार की समृद्धतम भाषाओं में से एक है। पद्य रचनाएं अवधी, भोजपुरी, ब्रज में प्रमुखता से की गई हैं। राजस्थान में डिंगल प्रमुख रही है। जयपुर और आसपास के उस क्षेत्र

*ग्राम पोस्ट प्रतापगढ़, जिला अलवर (राजस्थान)

में (लम्बे चौड़े भू भाग में) जहाँ लेखक का जन्म स्थान- मैड़ व विराटनगर है, ढूँढाड़ी ही बोली जाती है। साहित्य में स्थानीय बोलियों के शब्दों को देशज कहा जाता है। लेखक ने उपन्यास में देशज शब्दों का जानबूझकर प्रयोग किया है। अपने क्षेत्र के छोटे-छोटे रीति-रिवाजों को उजागर किया है और इस प्रकार अपनी सांस्कृतिक धरोहर का परिचय प्रस्तुत किया है। वे इस बात के लिए कृत-संकल्प लगते हैं। वे उन विलुप्त होते रत्नों को सुरक्षित रखना चाहते हैं। लगता है आपने जीवन का उद्येश्य बना लिया है। इसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए ढूँढाड़ी में शताधिक गीत लिखे हैं। नाटकों के माध्यम से उस गंध को बिखेरा है। रवीन्द्र मंच जयपुर एवं अन्य मंचों पर अपने स्वयं के लिखे नाटकों में अन्य कलाकारों के साथ स्वयं भी मंचन करते हैं। अनेक पुस्तकें लिखी हैं और अपने जन्म स्थान पर जाकर भी पर्यावरण संरक्षण के काम करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन प्रयासों की ही एक प्रमुख कड़ी है।

इस पुस्तक में मैंने तीन प्रकार की बातें देखी हैं। एक सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियां, दो स्वयं की पारिवारिक वेदनाओं का निष्कपट वर्णन, तीन बाल्यकाल की सैक्स आकर्षण की अनुभूतियां। यह अनछुआ प्रसंग है और इस पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

पाठक अब से चालीस वर्ष पूर्व के एक ऐसे ग्राम की कल्पना करें जहाँ प्रकृति का वरदान है। नदी, निर्झर, कूप, तडाग, बावड़ियां जल से आप्लावित हैं। चारों ओर सघन वन है। वन्य जीव हैं, बाग बगीचे भी हैं। फाल्गुन में अलबेले रात रात भर कबड्डी खेलते हैं और उन पर धमाल गाते हैं। श्रावण में सुन्दरियां धीमी धीमी फुहारों में झूला झूलती हैं। रात में तीजों के गीत गाती हैं। मेले भरते हैं। सोलह दिन नवविवाहित बालाएं गणगौरों की धूम रखती हैं। एक प्रकार से स्वावलम्बन है और ग्रामस्वराज्य है। गाँव की बनी वस्तुएं ही अधिकतर उपयोग में ली जाती हैं। शुद्ध दूध-दही और घ्रत सुलभता से उपलब्ध है। ऐसा ही एक गाँव है मैड़। महाभारतकालीन नगर विराटनगर के समीप। इसी मैड़ ग्राम की अपने बचपन की स्मृतियों का डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने 'विरह का इन्द्रधनुष' नामक उपन्यास में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

एक बानगी देखिए- पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने अपनी धरती की पवित्रता बतलाई है-

'बालेश्वर की सुरम्य पहाड़ियां दूर से ही किसी के भी मन को आकर्षित कर लेती हैं। ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर बने लोक देवताओं के छोटे-छोटे मंदिर देखकर मन दृष्टि के रथ पर सवार हो उधर ही प्रवाहित होने लगता है, परन्तु वहां पहुंचना आसान नहीं है। इन मंदिरों पर लगभग 151 सीढ़ियां चढ़कर पहुंचा जा सकता है जिनमें भोम्याजी, तेजाजी, बालाजी आदि के मंदिर प्रमुख हैं जहां पर सप्ताह में एक बार या किन्ही विशेष अवसरों पर लोगबाग पूजा-अर्चना आदि के लिए जाते हैं और अपनी मनोकामना पूरी होने पर सवामणि भी चढ़ाते हैं। यहां के निवासियों का सीधा-सादा जीवन है। आज की भौतिक सुविधाओं की चकाचौंध, भागमभागी और आपाधापी के जीवन से परे यहां के निवासी अपनी संतोषी प्रवृत्ति के साथ-साथ पूर्ण रूप से सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। न छल, न प्रपंच और न ही किसी चीज की विहीनता का आभास। जब मनुष्य को इनका आभास ही न होगा तो उसे इनकी विहीनता से जनित पीड़ा क्योंकर हो सकती है। इस क्षेत्र में कई ऋषियों ने तपस्या की है। आँगिरस ऋषि एवं महाराजा भर्तृहरी की तपोभूमि भी यहीं है जहां साधु संतों ने धर्म का प्रचार किया और महान् धनुर्धारी अर्जुन ने वृहन्नला के भेष में उत्तरा को संगीत और नृत्य की शिक्षा प्रदान की थी।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 8, 9)

उस आँचल के प्रसिद्ध मन्दिरों में भजन-सत्संग का जिक्र करते हुए उस जमाने के गायकों के नाम भी गिनाये हैं-

'संगीत यहां के जनजीवन में इतना रच-बस गया है कि इस अँचल के मंदिरों में आज भी प्रत्येक शनिवार और मंगलवार को सत्संग होते हैं जिनमें गाँव के प्रत्येक वर्ग एवं समुदाय के व्यक्ति सहभागिता करते हैं। इन गाँवों की कुछ स्वैच्छिक मण्डलियां सी गठित हो गई हैं जिनके सदस्य स्वत: ही ऐसे सत्संगों में पहुंच जाया करते हैं। संझारती के बाद सत्संग प्रारम्भ होता है और उसके बाद गाँव के ठाकुर साहब (बाबोसा) महन्त श्री गोपाल दास जी, भोला राम नायक, तोलाराम-भोमाराम धाणका, लाडली वैद्य जी , अहीरों के सूरदास, बिहाजर का घींसा गूजर, हजारी लाल दहिया, आदि की टोली हारमोनियम, ढोलक, मंजीरे आदि के साथ गायन, वादन एवं नृत्य की ऐसी-ऐसी प्रस्तुति देते कि भोर होने तक किसी का मन भरता ही नहीं था। जी चाहता कि अनवरत

गति से संगीत का यह कार्यक्रम चलता रहे, समय की गति रुक जाय और पूरा जीवन इसी संगीत के श्रवण में अर्पित हो जाय।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 9)

निश्चित ही वे लोग ग्रामीण पक्के राग मांड, सोरठ, विहाग, कालिंगडा, भैरवी, दादरा, लावणी, प्रभाती आदि ही गाते होंगे और पूरी रात अमृत की वर्षा करते होंगे। अब फ़िल्मी फूहड़पन भजनों में भी आ गया है।

गाँव का कादर फकीर बासी रोटियां घर-घर से मांग लाता और चाव के साथ खाता। वह पूर्णत: स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और आकर्षक व्यक्ति लगता। बासी रोटियां खाकर भी ऐसा शरीर। छींपण चाची से एक बार यह कहते हुए सुना गया कि वह रोटियों को छोंककर खाता है। लेखक के बालक मन में भी बासी रोटी या पूड़ी छोंककर खाने के लिए लार टपक पड़ी। वस्तुत: बचपन होता ही ऐसा है।

'मैं तो वही खिलौना लूंगा मचल गया दीना का लाल' कविता में कवि ने वर्णन किया है कि दीना का पुत्र मिट्टी के खिलौने से व राजकुमार सोने के खिलौने से खेल रहा था। राजकुमार ने सोने का खिलौना फेंककर मिट्टी का लेना चाहा और दीना के पुत्र ने सोने का। एक धनवान के पुत्र बचपन का संस्मरण सुनाते हुए बतला रहे थे कि वे अपने ननिहाल गये, जहां पास में ही कचहरी थी। एक चपरासी जौ की मोटी रोटी और प्याज खा रहा था। बस उन महाशय की भी लार टपक पड़ी। लेखक ने कहीं सितोलिये के खेल का भी वर्णन किया है, कहीं भुतहा हवेली का। बड़े गाँवों में प्राय: पुराने किले होते थे। लेखक ने अपने गाँव के किलों को भी याद किया है। नदी के दह में 'काफूल्या का खेल' बहुत ही लोकप्रिय होता था। उसका भी परिचय दिया है। वैद्यजी की घोड़ी का मजाक बनाना, साईकिल चलाना सीखना आदि का वर्णन स्वाभाविकता का आनन्द देता है। रामलीला का भी जिक्र किया गया है। सभी प्रकार की अनुभूतियों का वर्णन करते हुए भी लेखक ने मूल भावना (जीवन के आदर्श) को विस्मृत नहीं किया है-

'हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति और आचार-विचार ये आज भी जीवन की व्यवस्थाओं को नियंत्रित करते हैं, उनमे तर्क है, शक्ति है, अनुशासन है और प्रेम है। यही कारण है कि पति-पत्नी के सात जन्म तक के संबंधों की

अवधारणा, धर्मभाईयों के आजन्म संबंध निभाने की परम्परा, एक दूसरे के लिए त्याग करने की परम्परा और देश-हित के लिए अपने को बलिदान कर देने की भावना, स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षार्थ जौहर जैसा महान् अभियान करने की उत्कंठा, यानि मृत्यु का सहर्ष वरण, ये सब आज भी हमारे देश की धरोहर हैं जिसका अनुपालन भारत में भले ही क्षीण होता जा रहा हो परन्तु पाश्चात्य देशों में हमारे देश की इन थातियों का सम्मान करके विदेशी लोग आज अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं'।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 83)

उपरोक्त गद्यांश ऐसे भावों से परिपूर्ण है।

पुस्तक में लेखक कहीं प्रकट रूप में स्वयं नायक हैं तो कहीं नाम बदलकर है। बचपन में, किशोरावस्था, युवावस्था तक का कथानक स्वयं के इर्द गिर्द ही घूमता है। प्रसंग चाहे कोई भी हो, थीम एक ही है।

नायक के परिवार की स्थिति अच्छी नहीं थी। कलहपूर्ण थी। लेखक ने खुले मन से इसे स्वीकार किया है और अभिव्यक्त किया है। बड़ा भाई चोर, आवारा था। माताजी की पिताजी से नहीं पटती थी। अक्सर झगड़ते रहते थे। माँ पीहर ही अधिक रहती थी। पिताजी सीधे और सरल व्यक्ति थे। लाचारगी की अवस्था में उनके मुँह से निकलता था- 'तुम्हें राम देखेगा' ।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 21)

बहिन के यहाँ भी सुख चैन नहीं था। ऐसी कठिन परिस्थितियों में नायक मध्य प्रदेश नौकरी करने जाता है। वह तीव्र बुद्धि है। अच्छी नौकरियों में चयन भी होता है। एक बार एक सेठ की नौकरी भी करता है और कलकत्ता जाता है। घोर अपमानपूर्ण व्यवहार से टीस उठती है और स्वयं को एक गधे से भी गया बीता महसूस करता है। छोड़ भागता है। जीवन में संकट और संघर्ष सहते रहने पर भी उसको विभिन्न स्तरों पर युवतियों का सम्पर्क मिलता रहता है। और यही है इस उपन्यास की मुख्य थीम या विचार सामग्री। स्त्री जाति और पुरुष जाति का पारस्परिक आकर्षण समवयस्कता के स्तर पर उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर रहता है। मानव जाति में ही नहीं , पशु-पक्षियों तक में यह आकर्षण प्रकृति प्रदत्त होता है । ब्रह्माण्ड की रचना ही प्रकृति-पुरुष के संयोग से मानी जाती है। शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। दोनों के आकर्षण में मुख्य सूत्र काम अथवा सैक्स भावना है। फ्रायड ने तो जन्म से ही शिशु में इसका आभास

माना है। हमारी संस्कृति के लिहाज से बाल्यावस्था में बालक एवं बालिका का आपस में सैक्स का खेल निरपराध एवं निष्कपट माना जाता है। वर्जना और मर्यादा किशोरावस्था में प्रारम्भ होती है। अर्थात् लड़की जब रजस्वला होना प्रारम्भ करती है और लड़के में शुक्र का निर्माण शुरू होता है, तब ऐसे सम्बन्ध निर्बाध नहीं चल सकते। दोषपूर्ण होते हैं और केवल पति पत्नी में ही नैतिक माने जाते हैं। वैसे परकीया और पर पुरुष के चोरी छिपे सम्बन्ध किसी के रोके नहीं रुके हैं। मेघदूत में भी अभिसारिकाओं का उल्लेख है। अपने बाल्यकाल में लेखक का अनेक बालिकाओं से सम्मोहात्मक संसर्ग होता है। परस्पर आकर्षण होता है। इशारे, हावभाव, चेष्टा केवल लड़कियों की ओर से ही होता है। अस्पष्ट होने में वह सीमाओं में ही रहता है। कोई स्वर्ग की अप्सरा लगती है तो कोई सामर्थ्य से परे। जो सहज समीप है उससे झिझक है। उपन्यास में एक ऐसी ही लड़की का वर्णन है जो बहुत खूबसूरत है। लड़कों में खेलने आती है पर दूर-दूर रहती है। अपने सौंदर्य की श्रेष्ठता पर गर्व करती है। उससे संसर्ग के लिए किसी में साहस नहीं और अन्त में एक होशियार सा लड़का केवल एक अँगूठी में पटा लेता है।

'होली के दिनों में हम चौहट्टा बाज़ार में लुका छिपी का खेल खेला करते जिसे 'टीला' कहा जाता था। पास ही में लड़कियां भी 'टीला' खेला करती । उन लड़कियों में आशाराम नाई की भी लड़की थी जिसका नाम नैना था। वह बेहद खूबसूरत थी। हमारे दल में एक तेज तर्रार लड़का भी था जिसका नाम दुर्गा था। उसने अपने कुछ साथियों से कहा था कि जैसे-कैसे भी मुझे नैना को पटाना है। उसके साथियों ने उससे कहा था कि नैना को पटा पाना असंभव काम है। उसने इसके लिए क्या-क्या प्रयास किये यह मैं नहीं जानता। तीन-चार दिन बाद दुर्गा ने अपने दल के साथियों को बताया था कि उसने नैना को पटा लिया है और वह भी केवल एक अँगूठी में।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 31)

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की लेखनी का ही कमाल है कि ऐसी सूक्ष्म, स्वाभाविक बातों का उल्लेख करने में सफल रहे हैं जबकि साहित्य में ऐसे प्रसंगों का अन्यत्र उल्लेख होना प्रतीत नहीं होता।

यह तो हुई बाल्यकाल के सैक्स आकर्षण की बात, जो कि निर्दोष अवस्था की है। लेखक के जीवन में किशोरावस्था एवं युवावस्था में भी ऐसे

अवसर आये हैं। पुस्तक का मुख्य स्पंदन भाग पृष्ठ 86 से पृष्ठ 98 तक का है। सरला नामक किशोरी से परिचय होता है। वह कभी गणित के सवाल पूछने के बहाने तो कभी किसी और बहाने विद्यार्थी नायक के कमरे में बार-बार आती है। भाँति-भाँति की चुहुलबाजी करती है। उसके माता पिता उक्त विद्यार्थी के भरोसे उसको अकेली छोड़कर कुछ दिनों के लिए बाहर चले जाते हैं। लड़की इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाती है और विभिन्न चेष्टाओं से आमंत्रण देती है, किन्तु नायक है कि आगे साहस नहीं करता। शायद अपने संस्कारों के कारण ही। किशोरावस्था के मनोविज्ञान का सफल चित्रण है। नायिकाओं की चेष्टा और हाव-भाव परोक्ष में ही होते हैं, प्रत्यक्ष में नहीं। प्रत्यक्षीकरण पुरुष द्वारा होता है। यहां पर वह असफल रहा है। और बिछुड़कर अन्यत्र चला जाता है, किन्तु दीर्घ कालखण्ड तक सरला की याद सताती है। वह आगे सम्पर्क में आने वाली हर युवती में सरला की छवि ही देखता है। अन्त में रोनू के रूप में वह सरला की तृप्ति कर लेता है।

एक दो नर पिशाचों द्वारा वीभत्स कृत्य का भी वर्णन है। स्वयं रोनू एक पुलिस अधिकारी होते हुए भी अपने उच्चाधिकारियों की कुदृष्टि का शिकार रही है। इसी प्रकार एक मासूम लड़की भारती के साथ विश्वासघातपूर्वक एक रिश्तेदार द्वारा जघन्य बलात्कार का विवरण रोंगटे खड़े कर देता है।

'उसने अपने दाहिने पैरों से एक किवाड़ को उढ़काया और बलपूर्वक भारती को अपने अंक में भींच लिया। भारती उसकी पकड़ में जकड़ी आँसू टपका रही थी और वह उसके होठों के चुम्बन लिये जा रहा था। .....यहां पर एक नारी एक पुरुष की वासना का शिकार हो गई थी।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 47)

अनजान पुरुष और अनजान स्त्री भी यदि एकान्त में निरापद रूप में रहते हैं तो संसर्ग हो जाता है। विधवा अंजू टूर्नामेंट में जाती है। एक अपरिचित के यहां रुकती है और अपने मन को नहीं रोक सकती। बतलाती है कि पुरुष बेशक नियंत्रण कर ले, ऐसी अवस्था में स्त्री स्वयं को रोक नहीं सकती।

'..... मेरा दिमाग घूम रहा था और रात्रि के दूसरे प्रहर में पता नहीं कौनसी अदृश्य शक्ति मुझे उस व्यक्ति तक खींच ले गई और मैंने अपने आपको उसे सुपुर्द कर दिया।.....

ऐसी परिस्थिति में औरत अपने आपको रोक नहीं सकती। भले ही पुरुष किसी भी तरह से संयत कर ले अपने मन को, परन्तु औरत का मन कठोर नहीं होता और इस दशा में अपने आपको रोक पाना उसके लिये संभव नहीं होता।' (विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 46)

नायक के बचपन के साथी योगेश और उसकी पत्नी अंजू का चरित्र भी पुस्तक का गुण वर्धन करते हैं। बाल्यावस्था और किशोरावस्था का प्रखर बुद्धि, व्यवहार कुशल, चतुर और चालाक योगेश बड़ा होकर दुर्व्यसनी हो जाता है। नशे की लत में पड़कर जीवन बर्बाद कर अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार जाता है। उसकी पत्नी के रुप में लेखक ने एक साहसी, स्वावलम्बी महिला का दिग्दर्शन किया है। जब वह विधवा हो जाती है तो सास उस पर लांछन लगाती है। तंग करती है। बदनामी का ढिंढोरा पीटती है। अंजू अबला से सबला बनकर सास पर टूट पड़ती है। स्वावलम्बी बनकर अध्यापिका बन जाती है किंतु स्वतन्त्र हो जाने में एड्स का शिकार भी हो जाती है। यहाँ तुलसीदासजी का कथन याद आता है 'जेहि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी '।

पृष्ठ 31 और 32 पर सुप्यार नामक एक विधवा सुन्दरी का उल्लेख है। वह अपने भाई के खेत पर काम करती है और अपने सौंदर्य के विपरीत एक बदसूरत लड़के से सम्बन्ध बना लेती है-

'सुप्यार की उम्र शायद उस समय बीस-बाईस वर्ष के लगभग रही होगी। उस समय संभवत: उसके मन में ऐसी भावनाएं भी रही होंगी जिन्हें वह किसी के समक्ष उजागर करना चाहती होगी। संभवत: इस हेतु उसे किसी मित्र की तलाश थी। ..... परन्तु कुछ दिनों बाद मैंने देखा कि उसने भग्गू अहीर से मित्रता कर ली और जब वह सुन्दरता की सुकोमल प्रतिमूर्ति उस चेचक के दाग भरे चेहरे वाले काले-कलूटे भग्गू अहीर से हँस हँसकर बातें किया करती तो मुझे बहुत बुरा लगता और कभी कभी तो मेरा मन होता कि जाकर भग्गू का गला घोंट दूं'।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 32)

पुस्तक का यह अंश नारी स्वभाव के विवेचनानुसार बहुत महत्व रखता है। संस्कृत के एक श्लोक का भावार्थ है कि स्त्री, राजा और बेल अपने समीपस्थ का ही सहारा लेते हैं। गुणावगुण नहीं देखते। प्राय: यह भी देखा गया है कि मनचली स्त्रियां भले और चरित्रवान व्यक्तियों के समक्ष तो सती सावित्री जैसी

बन जाती हैं और उन जैसे किसी रसिया के समक्ष विचित्र भाव प्रदर्शित करने लगती हैं। लेखक के एक अन्य उपन्यास 'अभिव्यक्ति' की प्रौढ़ महिला पात्र मिसेज घोष का चरित्र इस तथ्य की पुष्टि करता है।

अधिकांश ऐसे रसिया घटिया किस्म के व्यक्ति ही होते हैं। एक कहावत है 'स्त्रिय:चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्य:'। अस्तु। पुस्तक में कुछ स्वरचित कविताएं भी दी गई हैं जो प्रासंगिक हैं। देशज शब्दों का जानबूझकर प्रयोग किया गया है। यथा पछेवड़ा, जळवा, भांकफेरी, दहड़ा, पीढा। सारांश यह है कि पुस्तक में मौलिकता है। विचारोत्तेजकता है, चिंतन है, मंथन है। लेखक की चरित्र चित्रण में गहरी पैठ है। भारत में महिलाओं को देवी स्वरूपा माना है। लक्ष्मीबाई, पद्मिनी आदि यहां हुई हैं। फिर भी पुस्तक पढ़कर विचार उठता है कि स्त्री पुरुष सम्बन्ध मर्यादित रहें अथवा निर्बाध। पश्चिम निर्बाधता की ओर है। हमारे यहां भी वर्जना और मर्यादाओं में बहुत शिथिलन आ चुकी है। ब्वाय फ्रेंड, गर्ल फ्रेंड स्वच्छंद विचरण करने लगे हैं। स्वैच्छिक विवाह बढ़ रहे हैं। किन्तु डर यह भी है कि कहीं 'लव जेहाद' जैसी वस्तु यदि व्यापक हो गई तो हमारे समाज की लड़कियों को दूसरे लोग ही ले उड़ेंगे। फिर हमारे युवाओं के कँआरेपन में और भी वृद्धि हो जायेगी।

अत: वात्सल्य युग अर्थात् पानीदार युग की परम्पराओं को ही संरक्षण देना चाहिए। वह युग सुनहरी दुनियां और महकते लोगों का था। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी भी उस युग की श्रेष्ठ परम्पराओं के उपासक हैं। वे मर्यादाएं, परम्पराएं वापिस लौटकर नहीं आ सकती क्योंकि बाणगंगा का पानी भी सूख गया है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी साहित्य और कला के माध्यम से ही उनकी जानकारी देते रहें। लद्दाख, तिब्बत की ओर 'नाथूल्ला' और 'कोमिल्ला' दर्रे बतलाये जाते हैं। इन शब्दों में बौद्ध संस्कृति की गंध आती है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी के ग्राम मैड़ और मेरे निवास स्थान प्रतापगढ़ के बीच भी एक दर्रा आता है। उसका नाम है जोधूला। वहाँ एक देवी जी का मन्दिर सघन वन में, पर्वत में है। शायद इन बातों का सम्बन्ध भी बौद्ध संस्कृति में रहा हो। विराटनगर में अशोक के शिलालेख भी मिले हैं। उस भूमि को नमन। मैं विद्वान लेखक की भूरि भूरि प्रशंसा करता हूँ।

❑❑❑

28

निर्धनता में सफलता (बम्बई की डायरी से)

डॉ. मिथिलेश कुमार सिंह

व्यक्ति के विचार उसके भविष्य को जोड़ने वाले वे सूत्र हैं जो उसके कार्यों को गति प्रदान करते हुए लक्ष्य की उपलब्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जिस प्रकार मनुष्य पर उसके आस-पास के वातावरण एवं संगति का प्रभाव पड़ता है वैसा ही प्रभाव उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों पर उसकी सोच का पड़ता है। अर्थात् मनुष्य के जीवन में उसकी सोच ही उसके कार्यों को गति प्रदान करती है और उसके जीवन में सफलता या असफलता का हेतु उसकी वर्तमान सोच ही हुआ करती है। यही कारण है कि एक गर्भस्थ शिशु में अच्छी सोच की निर्मीति हेतु एक माता अपने मन में सदैव अच्छे एवं प्रगतिशील विचार सँजोये रखने का प्रयास करती है ताकि वह एक ऐसे स्वस्थ शिशु को जन्म दे सके जो सद्विचारों एवं अपनी अच्छी सोच के बल पर जीवन में सफलता की ऊंचाइयों पर पहुँचकर नये कीर्तिमान स्थापित कर सके।

साहित्य, संगीत एवं नाट्य जगत् में डॉ. कैलाश चन्द्रशर्मा का नाम आज अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। शर्मा जी वैष्णवी विचारधारा वाले एक अच्छे इन्सान हैं और इसकी पुष्टि उनके द्वारा रचित साहित्य की विभिन्न विधाओं में देखने को मिलती है। उनकी कृति 'बम्बई की डायरी' एक ऐसा ही दर्पण है जो न केवल इस बात का समर्थन करता है अपितु जनसामान्य की प्रबल सोच के परिप्रेक्ष्य में उसकी निश्चित सफलता की सत्यता को भी दर्शाता है।

शर्मा जी ने 28 फरवरी 1980 से 17 मार्च 1980 तक की समयावधि में डायरी का लेखन किया है। लेखन की अवधि बहुत ही कम रही परन्तु उनके

*स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय.
निवास : 3 बी रामेश्वरम अपार्टमेंट, अशोक कुँज, राँची-834002

चिन्तन का फलक बहुत विशाल रहा। उनके जीवन की तत्कालीन परिस्थितियां इतनी प्रभावशील रही कि उन्होंने विभिन्न गलियारों से गुजरते हुए एक सामान्य से इन्सान को एक ऐसे उच्च शिखर पर ले जा स्थापित किया जो अपने आप में विशिष्ट एवं अनुकरणीय है।

लेखक को 28 फरवरी 1980 को एक डायरी किसी से उपहार में मिलती है। उसके लिये यह उपहार बहुत मायने रखता है। वह अपने मित्रों से इतना जुड़ाव रखता है कि इस डायरी को उन्हें देना चाहता है-

'आज दिनांक 28.2.80 को सम्पत ब्रदर्स से यह डायरी मिली। मुझे डायरी प्राप्त करते ही अपने दोस्तों व घर की याद आयी । मैं यह डायरी कभी तो अपने दोस्त प्रेमजी व गणेश को देने की सोचता और कभी सोचता कि इसे मैड़ सीतारामजी भाईसाहब को भिजवा दूं। यदि ये लोग इतने अधिक दूरी पर न होते तो निश्चय ही इसे मैं इनमें से किसी को भी दे देता। एक बार तो जी मैं आया कि इसे डाक द्वारा भिजवा दूं परन्तु पैसे की कमी के कारण ऐसा न कर सका।'

'मैं वर्ष 1980 में सी.ए. की पढ़ाई करने बम्बई गया था। इससे पूर्व 1978 में प्रथम श्रेणी से बी.कॉम. की परीक्षा पास करने के पश्चात् मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग में नियमित विद्यार्थी के रूप में एम.कॉम. में प्रवेश लिया तथा उसके तुरन्त पश्चात् सी.ए. की पढ़ाई करने हेतु अमरनाथ कपूर एण्ड कम्पनी, कनाट प्लेस नई दिल्ली में प्रवेश लिया। कुछ ही दिनों बाद अपने मित्र श्री जुगलकिशोर गुप्ता को भी मैंने आर्टिकल के रूप में अपनी ही कम्पनी में बुला लिया परन्तु अपने मित्र की सलाह पर दोनों ही बिना अपने बॉस को बताये तथा ऑफिस की चाबी एवं एक पत्र कपूर साहब के नाम छोड़कर वापस जयपुर चले आये। जयपुर आये, पढ़ाई में मन न लगा परन्तु परीक्षा दी और एम.कॉम. प्रीवियस के परसेन्टेज बिगड़ गये। तब फिर मन में कुछ निश्चय करके दुबारा सी.ए. करने बम्बई गया।'

(कुछ-कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

घर की आर्थिक स्थिति ठीक न थी परन्तु लेखक सी.ए. की पढ़ाई करने मुम्बई चला ही गया। ठहरने की व्यवस्था तो भुलेश्वर रोड स्थित महन्त श्री नरसिंह दास जी के पँचमुखी हनुमान मन्दिर में हो गई थी परन्तु खाने आदि

का खर्चा वहन करना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। उनकी यह आर्थिक परेशानी समीक्ष्य डायरी के पन्नों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है-

'.....एक बार तो जी मैं आया कि इसे डाक द्वारा भिजवा दूं परन्तु पैसे की कमी के कारण ऐसा न कर सका। '

आर्थिक विषमताजन्य चिन्ता में भी लेखक के मन में स्वजनों के प्रति अपनत्वपन की भावना मौजूद है । लेखक एक सहृदय व्यक्ति हैं तथा समाज के कमजोर वर्ग के साथ उनका विशेष लगाव रहा है जो उनके नाटक छोटा बेगारी में देखा जा सकता है।

'रेवती : पालर कहाँ से मांग लाती ..... मांग लाऊंगी'

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 30)

घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है परन्तु फिर भी रेवती अपने पुत्र का पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उसे अपने होनहार बेटे से काफी उम्मीदें हैं। इसी प्रकार की आशाएं अभिव्यक्ति उपन्यास के नायक विस्वास से उसके बाबा को हैं। वे भी अपने होनहार पुत्र का उसी प्रकार ध्यान रखते हैं जिस प्रकार नाटक छोटा बेगारी की रेवती आपे पुत्र गोपी का रखती है।

'पिताश्री मुझसे कहा करते- बेटा निर्मल, तुम पढ़-लिखकर कोई नौकरी कर लेना, यह मत सोचना कि मैं कोई खास नौकरी मिलने पर ही करूंगा। तुम अच्छी नौकरी मिलने पर पहले वाली को छोड़ देना और इसी तरह जीवन में आगे बढ़ते रहना।' (अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, पृष्ठ..)

'बाबा स्वयं परोसते और मेरे ना ना करने पर भी दो चमचे खीर डाल ही देते—

'ले ले बेटा खा ले। पूरे साल तो वहाँ चटनी-रोटी ही खायी होगी तूने।' कितनी चिन्ता रहती थी बाबा को मेरी। एक दिन जब छुट्टियाँ खत्म करके शहर रवाना हो रहा था तो मेरी घर पर ही रह गयी कमीज़ को कैसे बस रुकवाकर दे आये थे बाबा।

थैले में सामान रखते समय मुझसे एक-एक सामान का नाम पूछते थे—

'आटे का कनस्तर, घी का डिब्बा और घासलेट लाने के लिए खाली पीपी ले ली विस्वास?'

'हाँ बाबा सब रख लिया।' मैं आँखें बन्द कर सब कुछ याद करते हुए बाबा को आश्वस्त करता।

'और वो बबूल की दाँतुन का गट्ठा?' बाबा फिर पूछते।

'अरे बाबा, कहाँ रखा है? वो तो रह ही गया।'

अपनी भूल को विशेष हँसी के साथ स्वीकारता मैं।

बाब बताते—'बेटे वो परीण्डे (घर के चौक में पानी से भरे मटके रखने का एक स्थान) के नीचे मिट्टी में दबा रखी है, जा ले आ।'

और फिर मुझे लक्ष्य करके ऊँची आवाज में कहते—

बहुत ही उत्तम रहती हैं ये बबूल की दाँतुन। कहीं भी जाओ, भई अपनी हुई तो किसी के मोहताज नहीं हुए और सुबह मुँह माँज लिया, वर्ना कहाँ भागोगे शहर में लेने।'

(अभिव्यक्ति : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ..)

नाटक छोटा बेगारी का गोपी गरीबी एवं पग-पग पर आ रही बाधाओं की स्थिति में भी जीवन में आगे बढ़ने की इच्छा रखता है और अपनी माँ के प्रोत्साहन से उसकी इच्छा शक्ति को बल मिलता है।

'अरे बेटा। आज तू..... ..... स्कूल जाऊंगा'

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ ....)

नाटक पेड़ हमारे मित्र में गरीब परिवार का भीखू, सेठ की पुत्री सिमरन के समक्ष अपने परिश्रम के परिणाम को उजागर करता है।

'बीबीजी, यह बगीचा .....जरूरी है' ।

(तुक्के का बादशाह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ ....)

'विरह का इन्द्रधनुष' की मीता जीजी भी गरीब ही थी परन्तु वह अपने होनहार भाई निर्मल का विशेष ध्यान रखती है। ठीक उसी तरह जैसे कि बाबा विस्वास का रखते थे।

अगले दिन प्रात: छह बजे ही मैं रोहतक जाने को तैयार हो गया। दीदी ने पूछा था-

'परीक्षाओं की अंकतालिकाएं और प्रमाण पत्र ले लिये निर्मल?'

'हां दीदी ले लिए।'

'और लिखने को पैन?' उसी प्रवाह में पूछा था दीदी ने।

'क्या जरुरत है दीदी उसकी?'

'अरे भई अपना हुआ तो काम मे ले लिया नहीं तो यदि हस्ताक्षर भी करने पड़ गये तो किससे मांगोगे पराये शहर में।'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 77)

'बम्बई की डायरी' में लेखक आर्थिक संकट से जूझ रहा है। इस दशा में उसे अपने मित्रों से सहयोग मिलता है और वह मैदान में डटा रहता है।

'आज सुबह-सुबह ही प्रेमजी का पत्र मिला जिसे पढ़कर अपार प्रसन्नता हुई। पिछले दो तीन दिनों से मैं उदास सा था और प्रेमजी का पत्र पाकर राहत महसूस हुई। उन्होंने लिखा है कि यदि पैसों की आवश्यकता हो तो तुरन्त लिखना। मुझे वास्तव में पैसों की तुरन्त आवश्यकता है अत: मैंने लिख दिया है । कुछ ही दिनों में पैसे आ जायेंगे। वैसे आज मेरे पास 80-90 पैसे ही रह गये हैं, प्रेमजी के पैसे मिलने तक इन्हीं से काम चलाना है सो काम चल भी जायेगा।'

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'विरह का इन्द्रधनुष' की मीता जीजी भी आर्थिक संकट में अपने भाई की मदद करती है।

वह अपनी दीदी से बस का किराया लेकर नौकरी का इन्टरव्यू देने रोहतक के लिए प्रस्थान करता है।

अपने अंचल में समेटकर पुचकारते हुए दिलासा दिया था दीदी ने- 'बाबा नहीं तो क्या हुआ निर्मल, मैं बाबा की जगह हूं तुम्हारे लिए। आगे से तुम कभी मायूस मत होना।'

'और पैसे कितने चाहिएं तुम्हें किराये के लिए?' मुझे अलग करते हुए पूछा था दीदी ने।

'दीदी बीस रुपये एक तरफ का किराया है इसलिए पचास रुपये दे दो। रिक्शा भाड़ा सब हो जायेगा उसमें।' आश्वस्तता से कहा था मैंने।

दीदी ने बहुत कहा कि दस-बीस रुपये और ले जाओ, परन्तु मैं न माना और दीदी का आशीर्वाद लेकर पहुंच गया बस स्टैड पर। बस रवाना होने वाली थी। मैं सीधा उसमें जाकर बैठ गया।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 78)

लेखक की एक मुँहबोली बहिन है, श्रीमती सुरेश कँवर शेखावत। वैसे तो यह उनके स्कूली साथी की पत्नी हैं। परन्तु जब ये विवाह होकर ग्राम मैड़ आयी तभी लेखक को धर्म-भाई बना लिया। उस समय सुरेश बाई आठवीं कक्षा पास थी। उनकी सैकेण्डरी परीक्षा की तैयारी हेतु लेखक ने उन्हें जयपुर में पढाया था। आगे बी.कॉम. एवं एम.कॉम. की पढाई में भी उनकी मदद करने हेतु अपने घनिष्ठ मित्र प्रेमराज जी कुमावत से सिफरिश की थी।

अपने बम्बई प्रवास के दौरान लेखक की 'बम्बई की डायरी' के पन्ने अपनी इस बहिन से वैसी ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं जैसी प्रेरणा 'विरह का इन्द्रधनुष' के निर्मल को अपनी मीता जीजी से मिली थी।

'आज सुरेश दीदी का पत्र मिला जिसे पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई । मेरे पास आज एक भी नया पैसा नहीं है। एक रूपया जो पैन्ट की जेब में मिला था उसे मैंने सूटकेस में डाल दिया था परन्तु बहुत ढूंढ़ने पर भी वह न मिला। आज दुबारा बिना प्रेस के कपड़े पहनकर जा रहा हूं। दीदी को पत्र का उत्तर देने की जल्दी थी, अत: थोड़ा दुखी सा था। परन्तु सूटकेस में दीदी का पता किया हुआ एक लिफाफा मिल गया जिसे पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। '

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'बम्बई की डायरी' के पृष्ठ लेखक के बम्बई प्रवास के दौरान उनके द्वारा पग-पग पर सहन की गई आर्थिक पीड़ा को उजागर करते हैं। ऐसी ही आर्थिक पीड़ा को साहस के साथ सहन करते उनके साहित्य के विभिन्न पात्रों को देखा जा सकता है।

'मुझे लगा कि मैं सड़क पर कार्य कर रही एक मज़दूरिन के साथ लोहे की पराती में मिट्टी डाल रहा हूं और उसके बाद हम पत्थर तोड़ने उसी पहाड़ी पर चले गये जिस पर कभी योगेश ने मुझे नाटक खेलना सिखाया था।.....

मज़दूरिन ने पेड़ की छाँव में एक गूदड़ी बिछाकर उस पर अपने बच्चे को लिटा दिया और चटनी रोटी खाने लगी। मैं भी उसके साथ चटनी रोटी खा रहा हूं। उसमें मुझे ऐसा स्वाद आ रहा था कि मन भरता ही न था'

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 51)

'विरह का इन्द्रधनुष' उपन्यास का तो सम्पूण रचाव ही एक निर्धन परिवार की किशोरी सरला के इर्द गिर्द है।

मैं हायर सैकेण्डरी में पढ़ रहा था। आर्थिक स्थिति अच्छी न थी अत: शहर की एक पुरानी बस्ती में शर्मा जी के मकान में बीस रूपये माहवार पर एक कोठरी किराये पर ले ली थी। ..... मेरे मकान मालिक एक मोटर गैराज में हैल्पर थे और उनकी पत्नी पड़ौस की औरतों के कपड़े सीने का काम किया करती थी। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी इसलिए उन्होंने अपने आँगन के सामने वाली कोठरी बीस रूपया महिने के किराये पर मुझे को दे दी थी, क्योंकि उनकी सोलह वर्षीया पुत्री सरला, जो इस वर्ष सैकेण्डरी का इम्तिहान दे रही थी, उसका खर्च भी उन्हें वहन जो करना था।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 86)

जिस प्रकार 'बम्बई की डायरी' में लेखक को उसके मित्रगण, अभिव्यक्ति उपन्यास में विस्वास को उसके बाबा, 'विरह का इन्द्रधनुष' में निर्मल को मीता जीजी एवं गीत काठी में लकड़ी ले जा रहे विद्यार्थी को फिरवाल आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं उसी प्रकार 'विरह का इन्द्रधनुष' की भाभी को भी उसके पिता संकट की घड़ी में सहारा देकर आगे बढ़ने का मार्ग दिखाते हैं।

'वह बेचारी अपने दोनों बच्चों का पालन पोषण करने के लिए आस-पड़ौस की औरतों के कपड़ों की सिलाई किया करती परन्तु वह भी घर के अन्दर ही। उसके पिताजी ने ऐसी कठिन परिस्थितियों में अपनी पुत्री का हौसला बढ़ाते हुए यह सलाह दी कि भले ही उसके सास-श्वसुर एवं जेठ-जेठानी कितने ही अत्याचार करें या अमानुषिक यातनाएं दें परन्तु वह अपना घर न छोड़े। अपने पिता के सहयोग से भाभी ने उस वर्ष चोरी छिपे दसवीं कक्षा का प्राईवेट फार्म भरा और उसके पिताजी ने उसकी फीस के रूपयों की व्यवस्था की'।

(विरह का इन्द्रधनुष : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, पृष्ठ 41)

आर्थिक कठिनाइयां एवं गरीबी 'बम्बई की डायरी' में अपना आधिपत्य रखते हैं। लेखक इन्हें जीवन में आगे बढ़ने के उपादान मानता है जो उनके काव्य में देखा जा सकता है।

'..... कण्टकों के जाल से क्या मुक्त होना है
या अभावों में पड़े दम तोड़ देना है

कर ज़रा हिम्मत बना तक़दीर तू अपना
चक्रव्यूह से मुक्त हो पूरा करो सपना
इस पार हैं दुर्दिन गरीबी के थपेड़े भी
बाट किसकी देखता चल पड़ अकेले ही
.....
इस कँटीले मार्ग को जो पार तू कर ले
ज़िन्दगी का ले मज़ा फ़िर खूब जी भरके '

(तरुणाई काव्य संग्रह : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

'.....मैं साधारण सा मनुज किया पीड़ा को अंगीकार सदा,
अवरोध दिखे जिसके जीवन व्याकुल हो मन उस ओर चला.....'

(मैं तो हूं श्रद्धेय नहीं : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा से)

'..... मिट्टी में रेंग रहे हम सब माता चिथड़ों में लिपटी है,
रोटी का कौर चबा मुँह में हाथ लिए मुँह देती है।
पिता तोड़ते चट्टानें जननी उनको थी पीस रही,
निर्जनता में प्रमुदित होकर मैं मार रहा था किलकारी।
थोड़ा-थोड़ा बोझा ढ़ोते और मात-पिता का सहारा ले,
पहले ढ़ोयी रेती सिर ले फिर जाकर तोड़ी चट्टानें।'

(कोई बतला दे मैं क्या हूं : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

गीत 'गरीब किसान' में पात्रों की कर्म करने की भावना दृढ़ता धारण किये हुए है। हर वर्ष की भाँति इस बार भी बारिश न होने के कारण दुर्भिक्ष की स्थिति है। ऐसी दशा में पति-पत्नी दोनों आपस में विचार विमर्श कर यह निर्णय लेते हैं कि यहां पर तो हम सब भूखे मर जायेंगे अत: अपने बच्चों को तो यहीं छोड़ देते हैं जो यहां पढ़ाई करेंगे और हम दोनों पास के शहर में ईंट भट्टों पर मज़दूरी करने चलते हैं जिससे बच्चे भी पढ़ जायें और परिवार का पालन-पोषण भी होता रहेगा ।

'.....

नायक : म्हे जार्यां छां शैर कमाबै. टाबर थे सब फडज्यो,

नान्हां- नान्हां भैण भायां को ध्यान सभी मिल रखज्यो,
ल्यो ये जेवर जडाऊ सब बेच चले जाज्यो थे फडबा.नै।

नायिक : चालो-चालो जी मत करो दे.र भट्टां पर ईंटां ढोबा.नै,

नायक : जार्यां-जार्यां छां म्हे दोन्यूं अब शैर
थे तो अण्डे र्‌हो फडबा. नै।

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 3)

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा के गीत संग्रह 'मेरे गीत दिखायें गाँव' के 'पडौसण' गीत की कथावस्तु भी 'बम्बई की डायरी' के लेखक को स्वजनों से मिले प्रोत्साहन के जैसी ही है।

किसी गाँव में एक औरत का पति परदेश कमाने गया हुआ है। काफी दिनों से उसका कोई समाचार नहीं मिल रहा है। ऐसी स्थिति में उसके परिवार पर आर्थिक संकट आन पड़ा है तथा बच्चे भूख से व्याकुल हैं। उनकी ऐसी में उन बच्चों की माँ मन ही मन बहुत दु:खी है। वह अपनी पड़ौसन से कहती है कि बहिन मेरे बच्चे भूख से व्याकुल हैं अत: तुम थोड़ा अनाज उधार दे दो। उसकी पड़ौसन उससे कहती है कि हे बहिन तुम व्यर्थ में चिन्ता क्यों कर रही हो। हमारे दोनों के घर एक ही हैं और हमारे घर में अनाज का भण्डार है अत: तुम जितना अनाज चाहो मेरे से ले लो।

'.....स्त्री- स्थाई म्हारै घर मैं कोनै नाज पडोसण दे दै तू
पिवजी म्हारो गयो परदेशां, कद आवै कोनै थाक पडोसण दे दै तू

1. स्त्री म्हारा टाबर बास्या आज पडोसण दे दै तू
+ स्थाई- म्हारै घर मैं कोनै नाज पडोसण दे दै तू
2. पडोसण- म्हारै घर मैं छै भण्डार, पडोसण ले लै तू 2
क्यूं चिन्ता कर री बावळी, दोन्यूं घर की सुणलै एक पडोसण ले लै तू'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, गीत सं. 32)

लेखक अपने बम्बई प्रवास के दौरान पैसे-पैसे को तरस गये थे। ऐसी स्थिति में उनके लिये एकाएक एक रूपये का मिल जाना भी बहुत मायने रखता है।

'आज शर्ट धुलवाने डाल आया हूं। डाल तो आया पर सोच रहा था कि इसकी धुलाई के 2.50 रूपये दो दिन बाद कहां से दूंगा। आज तो मेरे पास सिर्फ 90 पैसे ही थे। इसी फिक्र में ऑफिस चला गया जहां पर मालूम पड़ा कि कम्पनी की तरफ से (सी.ए.साहब) प्रतिदिन एक चाय के पैसे सब आर्टिकल को देते हैं। उन्होंने मुझे पूछा कि क्या यहां प्रवेश लेने के बाद चाय अपने पैसे से पी है? तो मैंने हां में जवाब दे दिया और 7 दिन के 60 पैसे के हिसाब से 4.20 रूपये मुझे मिल गये। यहां निर्धन को धन मिलने वाली कहावत लागू हो गयी। इन पैसों को प्राप्त करके मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है और विश्वास हुआ है कि भगवान सबकी सुनता है। वैसे मेरे जीवन में भगवान ने हमेशा ही आगे से आगे पैसे की व्यवस्था कर दी है, इसीलिए पैसे की कमी से मैं विचलित नहीं होता। मुझे पूरा विश्वास है कि जब मेरे पास सब पैसे समाप्त हो जायेंगे तो भगवान फिर कहीं से दिला देगा।

आज से मैंने निश्चय किया है कि चाय तो पीऊंगा नहीं (वैसे बम्बई में आने के बाद पी भी नहीं कभी), और सी.ए. साहब से 60 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से चाय का खर्चा ले लूंगा जिससे मेरा गुजारा चल जायेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि प्रतिदिन लंच टाइम में नीचे आकर 5-7 मिनट घूमना पड़ेगा।

.....आज गणेश को पत्र लिखा । न चाहते हुए भी मैंने उसे लिख ही दिया कि शास्त्रीनगर वाले जीजाजी से 150 रूपये लाकर कैसे भी करके भिजवा देना। मैंने उसे यह भी लिख दिया है कि मेरे पास सिर्फ 80 पैसे ही रहे हैं। शुरू में तो मुझे ग्लानि सी हुई कि मुझे ऐसा नहीं लिखना चाहिए था परन्तु अब बोझ हल्का महसूस कर रहा हूं।

..... आज जब मैं कपड़े धोने हेतु जा रहा था तो पैंट की जेब से कलदार एक रूपया मिला। पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी कि आज से पहले खोजने पर एक पैसा भी नहीं मिला और आज क्यों। भगवान हनुमानजी ने सहायता की है, उन्हें मैं भूलता थोड़े ही हूं।

..... ढाबे का मालिक मंशाराम जी इस समय बहुत अच्छा आदमी साबित हो रहा है। आज उसका महिना पूरा हो गया है। यहां पर सब एडवांस लेते हैं परन्तु उसने बिना कुछ लिए महीने भर खाना खिलाया है। मैं खाना

खाने जाता हूं तो मन में बड़ा संकोच होता है। आज मैंने उससे 2-4 दिन और रुकने का निवेदन किया है।

अब मेरे पास कुल 2 रूपये हो गये हैं। एक रूपया पहले वाला भी मिल गया है। मुझे अब थोड़ी राहत महसूस हो रही है। आज कई दिनों बाद 50 पैसे के 2 चीकू खाये हैं।'

(बम्बई की डायरी : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा)

शर्मा जी के गीतों में उन्होंने अपने जैसी इस स्थिति का ग्रामीण जीवन में साक्षात् कराया है। उनके गीत 'छप्पन्या को काळ' गरीब किसानों के लिए वैसा ही समय है जैसा कि लेखक के लिये उनका बम्बई प्रवास रहा।

हमारे देश में सन् 1856 में भयंकर अकाल पड़ा था जिससे जीव-जन्तु भी पानी के बिना मरने लगे थे।.....गाँव में अकाल पड़ा है तथा एक किसान के घर में खाने को एक दाना भी नहीं है।

इतने में ही सामने से दामाद को आता देखकर स्त्री ने कहा कि हमारे यहाँ तो अकाल पड़ा हुआ है आपके यहाँ की स्थिति बताओ। इस पर दामाद ने कहा कि इन्द्र भगवान जरूर बरसेंगे और युग-युग से उन्होंने भक्तों की परीक्षा ली है। परन्तु यदि सारा गाँव मिलकर उनको बुलाएगा तो वह अवश्य बरसेंगे।

'स्थाई : पुरूष - बरस्यो कोऽनै इन्दरराज, धरती देखै मूऽण्डो फाड़
स्त्री - झोझरू की रोऽटीऽ मूंगांऽ की दाऽळ,
खालै जँवाईं जीऽ पड गयो काऽळ

.....7-पुरूष पाड्या झोझरू टीबा सूंऽ पल्लै लिया बाँध
कूटकाट रोटी बऽणाई और मूंग की दाळ
देख्या साऽमैं आया जँवांईं ढोक लगावीं रै

8- स्त्री सासू बोली आओ जीऽ काळ पड्यो ईं देऽश
थे आया परदेश सूं कांईं इन्दर को संदेश

9- पुरुष बोल्यो सुणो सासूजीऽ इन्दरजी आवैगो
जुग जुग मैं वा लिई परीक्षा भक्तां की वा लेगो
मिलकर सारो गाँव बुलावैऽ तो सुणलेगो जी'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 49)

शर्मा जी का गीत 'काठी' तो बम्बई की डायरी के अधिकांश पन्नों को अपने अंतर में समेटे हुए है। दृष्टव्य है।

कोई कहता होगा कि गरीबी और कठिन परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन में अवरोधक होते हैं परन्तु सही मायने में तो ये मनुष्य के जीवन को एक सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। कठिन परिस्थितियों से निकला हुआ व्यक्ति अपने जीवन में कभी हताश नहीं होता और वह निरन्तर सफलता की ओर बढ़ता ही रहता है। उसे अपना वक्त याद रहता है और वह अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी विचलित नहीं होता। यह सर्वविदित है कि अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन भी एक लकड़हारे थे और कठिनाई से जीवन जीते हुए उन्होंने जन-सामान्य के समक्ष एक अनोखा आदर्श प्रस्तुत किया।

एक गरीब स्त्री अपने विद्यार्थी भाई को लेकर लकड़ियों का गट्ठर लाने के लिए पहाड़ी पर पहुँच गई। जब वे लकड़ियों का गट्ठर लेकर वापस अपने घर की ओर आ रहे थे तो जंगल में उन्हें वनरक्षक (फिरवाल) मिल गया और उनको कहने लगा कि तुम मेरी इजाजत के बिना लकड़ियाँ कैसे काटकर ले जा रहे हो। इन गट्ठरों को नीचे डाल दो अन्यथा मैं तुम्हारे विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करूँगा।

.....उसकी बात पर फिरवाल ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और कुछ सोचने लगा। पश्चाताप में भरकर फिरवाल स्त्री से कहता है कि हे बहन मुझे माफ करो। मैं तुम्हारी नेक-नीयति और धर्म-कर्म से बड़ा प्रभावित हूँ। आप लोग अपने-अपने गट्ठर लेकर घर जाओ। यह मेरा आशीर्वाद है कि तुम सुखी रहो और तुम्हारा यह भाई पढ़-लिखकर अपने जीवन में उन्नति करे यही मेरा आशीर्वाद है। इस प्रकार यह गीत मनुष्य के जीवन में सत्य, धर्म-कर्म आदि के महत्व को उजागर करता है।

'पुरुष काठी लियां बोलो थे बिन पूछ्यां कैंयां जार्‌या रै
स्त्री काठी लिया घर आटै म्हे जार चूलो बाळां रै
1 पुरुष मैं छूं ईं डूंगर को रै फिरवाळ कोनै जाणो
बन्द करूं ज्यो बिन पूछ्यां पत्ता अर लकडी काटो
गेरो नीचै काठ्यां नै माथा सूं मैंऽ खैर्‌यो + स्थाई

2 स्त्री दया करो फिरवाळ जी म्हे कोनै यांनै बेचां
टाबर बैठ्या भूखा वांनै जार रोटी देद्‌यां
थे खो तो म्हे गेरद्‌यां पण रोटी कैंयां बणांवां + स्थाई
.....
4 स्त्री या छोरो छै भाई मेरो फडबाटै र्‌ह कन्नै
खै साँची फिरवाळ जी नै डरपै तू मन्नै
रोटी या सेकै न्यारी या बात साँची छै +स्थायी
5 पुरुष ऊपर सूं नीचा तांयां यूं देख्यो वा फिरवाळ
सोच्यो कपड़ा खाकी पैर्‌यां बाई खै छै साँच
बिन बात मैं रोक्यो ऊंनै मन या पीड़ उठी रै
.....
7 पुरुष माफ करो बाई थे मूंनै बात थारी साँची
नेकनीयती धन्य करम थांको वापिस ठाल्यो काठी
भाई तेरो करै उन्नति देर्‌यो आशीर्वाद रै
पुरुष करम कर्‌यां जा भाई रै स्त्री - धन्य-धन्य फिरवाळ रै'

(मेरे गीत दिखायें गाँव : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, गीत सं. 65)

यह गीत शर्मा जी के निजी जीवन से कितना मेल खाता है। दृष्टव्य है।

'बात शायद 1975 की है। मैं नाहरी का नाका, जयपुर की कच्ची बस्ती में अपनी बहिन गीता जीजी के घर रहकर पढ़ाई कर रहा था। राजकीय दरबार उच्च माध्यमिक विद्यालय में हायर सैकेण्डरी का विद्यार्थी था। एक दिन अँधेरे ही जीजी के साथ नाथू और मैं भी जलाने के लिये लकड़ियां लेने नाहरी का नाका के डूंगर में गये। जब लकड़ियों का गट्ठर लेकर वापस लौट रहे थे तो फिरवाल ने पकड़ लिया और जुर्माना मांगने लगा। बहिन ने उससे विनय की कि हम इन्हें बेचने के लिये नहीं अपितु अपना चूल्हा जलाने के लिये ले जा रहे हैं। तब फिरवाल ने मेरी स्कूल की ड्रेस पर तरस खाकर हमें छोड़ दिया। इसमें फिरवाल का दोष नहीं था क्योंकि हमारे गाँव का घींसा कण्डेरा भी तो

एक-एक दिन में पाँच-पाँच छह-छह काठियां तक लाकर बेच दिया करता था। आज वही फिरवाल, मेरे स्वर्गीय पिताजी एवं गीता जीजी मुझे जीवन में और आगे बढ़ने हेतु प्रेरित कर रहे हैं'।

(कुछ कुछ यादें : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से)

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार किसी रचनाकार की कृति में कहीं न कहीं उसका निजीपना भी होता है। यह शर्मा जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से स्वयं सिद्ध होता है।

❑❑❑

29

तरुणाई (काव्य संग्रह)

डॉ. रामकृष्ण शर्मा

'तरुणाई' डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित 39 कविताओं का संग्रह है। इसमें कवि की 26 वर्षों की लम्बी काव्य-यात्रा के पदचिन्ह अंकित हैं। प्रथम कविता 'वस्तु-पात्र सम्बन्ध' सन् 1975 में जयपुर में लिखी गई थी तथा 'दीपशिखा' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। काव्य संग्रह की अन्तिम कविता 'विशाल भारत' सन 2001 में लिखित है। इस संग्रह में संग्रहीत कविताओं में काल अन्तराल के अनुरूप ही धीरे-धीरे परिपक्वता आती गई है। प्रारंभ की 13 कविताएं बाल कवि, किशोर कवि तथा युवा कवि के भाव एवं विचारों को उसी स्तर की भाषा-शैली में व्यक्त करती हैं।

चौदहवीं कविता से अन्त तक अनवरत निखार आता गया है तथा प्रतिपाय एवं सम्प्रेषण, दोनों में ही परिवर्तन दिखाई देता है।

श्रेष्ठ काव्य में रमणीय भाव को मूलाधार माना जाता है । भाव ही वह पूंजी है जिससे काव्य- व्यापार चलता है । डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा स्वभाव से ही भावुक और संवेदनशील हैं। फलस्वरूप इनकी अधिकांश कविताओं में भाव धारा सहृदय सामाजिक को मज्जन कराती है। साधारणीकरण की यह क्षमता 'प्रतीक्षा' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है :-

रंगमहल सूना पड़ा पिय बिन तड़पूं आज।
रैना बीती जाय ज्यों मन में बढ़ी पियास॥
दीपक भी थक सो गया, मानो अवसर देय।
मन में उद्वेलन बढ़ा, पिय बिन दीपक देख॥

*पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय महारानी श्री जया महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

रमणीय भाव की अनुभूति इन कविताओं में उत्तरोत्तर वृद्धिमान है।

काव्य का द्वितीय महत्वपूर्ण तत्त्व जो काव्य को श्रेष्ठत्व प्रदान करता है, वह पद-मैत्री कहलाता है। इसी में नाद सौन्दर्य भी अन्तर्निहित रहता है। वर्णमैत्री कठिन कवि-कर्म है। इसके लिये बहुत साधना करनी पड़ती है। इस हेतु गुरु-शिष्य परम्परा का आद्योपान्त महत्व रहा है। गुरु से इसका प्रशिक्षण मिलता है।

इसीलिये हमारे यहां आचार्य पूज्यपाद माने जाते हैं। सम्पूर्ण काव्य शास्त्र में इसका उल्लेख मिलता है।

'तरुणाई' की कविताओं में तुकान्तता से लय उत्पन्न करने में कवि को सफलता मिली है। कहीं - कहीं आँचलिक बोलियों में ठेठ शब्द की प्रयुक्ति भी हुई है। इससे नाद सौन्दर्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ता है। उदाहरणार्थ 'कूवा को मींडको' कविता में ढूंढाड़ी बोली के आंचलिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे वर्ण-मैत्री का सौन्दर्य पैदा हुआ है। टर्र-2, चर्र-2, घल्यो, आँख्यां, गेर्‌यो, सगळा, खट्-खट्, फट्-फट् आदि ध्वन्यात्मक शब्द सौन्दर्य प्रदान करते हैं। वर्ण-मैत्री की झलक यत्र-तत्र आभासित हो जाती हैं।

श्रेष्ठ काव्य का तृतीय गुण चमत्कार-सक्षमता को माना जाता है। यह आचार्य कवियों में मिलता है ।'तरुणाई' की कविताओं में न तो यह अपेक्षित था, न इसके लिए कोई अवकाश था।

यह तो समय-समय पर स्फुटित भाव-लहरें तथा विचार कण हैं जो कवि -शावक की पँख फड़फड़ाने जैसी स्थिति को दिग्दर्शित करते हैं। ऐसा लगता है जैसे किसी ऊँची उड़ान के लिये कोई विहँग-शावक तैयारी कर रहा है।

कवि रंगकर्मी होने के कारण अभिनय एवं संगीत का भी यथोचित ज्ञान रखता है। फलस्वरूप इन छोटी-छोटी कविताओं में कहीं -कहीं नाटकीयता आभासित होती है तथा गीतिकाव्य का माधुर्य भी मोहता है। कोमलाकान्त पद प्रयोग से गेयता का माधुर्य इन पंक्तियों में अनुभव होता है :-

मन्द मन्द सन्ध्या की लाली मुस्काती मन भाये ।
पायल की छम छम मन- वीणा को झंकृत कर जाये॥

*** *** ***

रिम झिम रिम झिम मन को करती, मन्द मन्द मुसकान।
होठ गुलाबी पंखुडियों में लेते मन को बाँध ॥

चित्रात्मकता एवं काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। कहा गया है कि एक अच्छी कविता एक गीत गाता चित्र होती है।'तरुणाई' की कुछ पंक्तियों में चित्रात्मकता का सौन्दर्य भी दिखाई देता है :-

केश खुले यों लगते जैसे, चँदा बादल बीच।

*** *** ***

घिरी घटाएं रिमझिम रिमझिम, झड़ी लगी चहुँ ओर ।

*** *** ***

शीतल चन्दा नभ प्रकट हुआ, घनघोर घटाएं घिर आईं।

*** *** ***

नील गगन में उड़ते पँछी , हरियाली के साये में ॥

''तरुणाई'' कवि की प्रथम उड़ान है। यह एक सोपान है, जिसके सहारे आगे की यात्रा तय होगी। काव्य सग्रंह की अन्तिम कविताओं में यह भी इंगित मिल जाता है कि राष्ट्रीयता का सूर्योदय सन्निकट है, तथा अगले संग्रह में देशभक्तिपूर्ण कविताएं भी उपलब्ध होंगी ।

❑❑❑

30

'तरुणाई' के अरुणिम कवि : कैलाश

डॉ. नन्दलाल कल्ला

'यह बात शायद मेरे मस्तिष्क में कभी आयी भी न होगी कि मैं साहित्य की किसी विधा में कुछ सृजन कार्य करूंगा। लेखन मेरा उद्येश्य कभी न रहा और न ही मैंने लिखने के लिये कभी लिखा। मैं शौकिया तौर पर अपने मन के भावों को लेखनीबद्ध करता रहा , जिसके परिणामस्वरूप मुझे सदैव ही आत्मसन्तुष्टि की प्रतीति हुई और इस प्रकार अपने लेखन का संचय करना एक आदत बन गई।' (अपनी बात : काव्य संग्रह तरुणाई)

लब्ध प्रतिष्ठ शब्द साधक तथा माँ भारती के वरद पुत्र डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा कृत 'तरुणाई' से उधृत 'अपनी बात' का यह कथ्य उनकी काव्य दृष्टि की सृष्टि की प्रयोजनीयता को उद्घाटित करता है। यह 'आत्मसन्तुष्टि' ही गोस्वामी तुलसी दास का 'स्वान्तः सुखाय' है। इसी 'आत्मसन्तुष्टि' में जीवन और जगत् का यथार्थ अनुभव काव्य सृजन का हेतु बन जाता है तथा बहुमुखी सृजन का व्यापक फलक प्रयोजन बनकर चरितार्थ हो जाता है। श्री कैलाश की मनस्विता का प्रातिभ कौशल काव्य की रचना भले ही 'शौकिया तौर पर अपने मन के भावों को लेखनीबद्ध करने' तक सीमित रही हो लेकिन कवि मन की 'तरुणाई' की अरुणिमा के दिव्य आलोक में भक्ति की पवित्रता, नैतिकता का उदात्त सौन्दर्य, जीवनानुभवों का यथार्थ, जीवन मूल्यों का आदर्श, काव्य का तेजाबीपन तथा अभिव्यक्ति का 'सुन्दर्य' बनकर प्रस्फुटित होता है। श्री कैलाश का रचना संसार द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का सामिप्य दिखलाता है और अभिव्यक्ति कौशल, प्रगतिवाद का यथार्थ तथा प्रयोगधर्मिता समकालीन कवियों की पंक्ति में उन्हें

*(पूर्व) आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,जोधपुर (राजस्थान)

ससम्मान प्रतिष्ठित करती है। उनका बहुज्ञ कवि कर्म पाठकीय भावों का विरेचन करता है तो आज के भ्रष्ट, विसंगति, विद्रूप तथा विडम्बनाओं से आक्रान्त 'मनु' को श्रद्धा का उदात्त जीवन-दर्शन भी प्रदान करता है। उनके रचना-सँसार में परम्पराओं के प्रति आस्था है लेकिन रूढ़ियों के प्रति वे मोहान्ध नहीं हैं, नूतन जीवन पद्धति और प्रगतिशीलता के प्रति तीव्र आकर्षण है लेकिन दूसरी ओर उनमें किसी भी प्रकार दुराग्रह भी नहीं है। श्री कैलाश की काव्य-सृष्टि में एक स्वस्थ जीवन दर्शन की आभा झिलमिलाती है। जीवन और जगत् को समझने की गहरी आस्था ही उनमें सृजन की प्रेरणा जगाती है, इसीलिये वे सहज ही में कहते हैं - 'मेरा अतीत मेरे जीवन की अमूल्य धरोहर है। जीवन की राहों पर मिले साथी, प्रकृति का दर्शन, समस्त वातावरण, घटनाएं एवं परिस्थितियां, चाहे वे अनुकूल थीं या प्रतिकूल, सभी को मैं अपने जीवन की अमूल्य निधि मानता हूँ।' (डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, अपनी बात)

एक अच्छे, प्रभावी तथा सशक्त सृजनधर्मी हस्ताक्षरी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वह अपने परिवेश के प्रति कृतसंकल्पी होता है। यह परिवेश ही कवि के लिये सृजन की उर्वर भूमिका निर्मित करता है इसीलिये तो कवि कैलाश कहते हैं -'अपने बाल्यकाल और गाँव के स्कूल में अपने शिक्षण काल, इन सबको आज भी जब मैं याद करता हूँ तो हठात् मेरा मन अपने गाँव जाने को मचल पड़ता है। मेरे लिये सब कुछ वही है, मेरे वर्तमान लेखन का आधार वही है जो आज भी मेरी प्रेरणा बनकर आगे बढ़ने का एक सशक्त आधार बना हुआ है।'

(काव्य संग्रह तरुणाई : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा, अपनी बात से)

कवि की यह प्रेरणा मात्र बौद्धिक नहीं है बल्कि उसके साथ भक्ति की पवित्रता भी सम्पृक्त है। सृजन-पथ पर अपने ईष्ट की कृपा-प्राप्ति के लिये कवि करबद्ध होकर पुकार उठता है -

'आप हमारे रक्षक, जय हनुमान बली।
दुःखहर्ता बजरंगी, मुक्त करो जल्दी।।
सब दुःख से हो अवगत, तुम अन्तर्यामी।
आशीर्वाद मुझे दो, कार्य करूं स्वामी॥'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 17)

श्री कैलाश का जीवन दर्शन न तो कभी कुंठित रहा और न ही हताश। न दिक्भ्रमित रहा और न ही संशय से आक्रान्त। कथनी और करनी की एकरूपता ही उनमें एक अपूर्व आत्मविश्वास सृजित करती है। अतीत की असफलताएं उन्हें निष्क्रीय नहीं करतीं, अतीत की पीड़ा उन्हें अकर्मण्य नहीं बनाती बल्कि आपदायें उनमें संघर्ष करने की अजस्र शक्ति का संचार करती हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' के नायक श्री राम की शक्ति उपासना के दौरान जब दुर्गा छुपकर अन्तिम कमल उठाकर ले जाती है और राम एक बार तो कह उठते हैं - 'धिक् ! जीवन को जो पाता ही रहा विरोध।'

लेकिन दूसरे ही क्षण 'वह एक और मन रहा, जो कभी न थका' का चिन्तन उन्हें फिर संघर्ष करने की अनुपम प्रेरणा देता है। ठीक ऐसा ही भाव श्री कैलाश अभिव्यक्त करते हैं -

'तेरे दु:ख से दुखित हूँ, और बड़ा बेचैन,
सोच-सोच घुल-घुल मरूं, दिवस बचा न रैन ।
.....
मत मन को छोटा करो, धैर्य धरो दु:ख छोड,
मिलकर विपदा जाल को, देंगे तोड़ मरोड। '

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, बालसखा को पाती)

जीवन यात्रा में अनुभवों का चिन्तन फलक क्रमश: विस्तृत एवं व्यापक बनता जाता है। वैयक्तिक चिन्तन की धारा अन्तत: स्वाधीनोत्तर भारत के यथार्थ जन आकृति पर केन्द्रित हो जाती है। स्वतन्त्र भारत ने विज्ञान, उद्योग, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, सैनिक क्षेत्र में भले ही कीर्तिमान स्थापित किया है लेकिन यह भी तेजाबी सत्य है कि चतुर्दिक सुरसा की तरह फैलता भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, सत्तानुराग तथा अराजकता ने जनमानस को हताश ही किया है। कृषि प्रधान देश 'भारत', कुर्सी प्रधान हो गया है। जनतन्त्र की दुहाई केवल वोट अर्जित करने का साधन मात्र है वरना चुनाव में विजयश्री प्राप्त करने के उपरान्त तो तन्त्र ही प्रमुख बन जाता है और 'जन' उपेक्षा और विस्मृति के तमस में विलुप्त हो जाता है। साम्प्रदायिकता का वैषम्य और जातिवाद, भाषावाद तथा क्षेत्रीयता का तक्षकीय दंश सम्पूर्ण देश को क्षत-विक्षत कर रहा है तभी तो कैलाश की काव्य-संवेदना एक प्रश्न चिह्न खड़ा कर कहती है-

'हे मित्र कहो कहाँ से आये, ले मन में भाव उदासी का,
ये पैर ठिठक कर रूकते क्यों, कैसे यह मुखड़ा है फीका।
क्यों चाल हुई बेमानी सी, हसरत लगती क्यों टूटी सी,
.....
नवशौर्य कहाँ पर लुप्त हुआ, इन लम्बी- लम्बी राहों पे,
वह धैर्य कहो क्यों टूट गया, बेचैनी क्यों इन आँखों में।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस राष्ट्रीय नैराश्य का प्रतिउत्तर अपने एक निबन्ध में दिया था जिसका शीर्षक है- 'अभी थकने का समय नहीं आया' ठीक इसी तर्ज पर श्री कैलाश का कवि हृदय भी राष्ट्रीय चेतना का आह्वान करते हुए कहता है-

'हे वीर जगो ! हिम्मत धारो, समझो अपनी महत्ता को भी,
इस किस्मत पर अवरोधों पर, समझो मानव सत्ता को भी।
.....
हे दोस्त उठो धर जोश हिये, मन्ज़िल थोड़ी ही बाकी है,
रूकना मत चलते ही जाना, मुश्किल तो अपनी साथी है।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 26)

श्री कैलाश की सृजन यात्रा में उत्साह है, ऊर्जा है, आत्मविश्वास है, शक्ति है, कर्मण्यता है, रचनाधर्मिता है, जीवन के प्रति विश्वास है, भविष्य के प्रति आस्था है। वे अतीत को मानते हैं, वर्तमान को जानते हैं और भविष्य की कल्पना करते हैं। वे मानव को एक ऐसे 'पथ के राही' के रूप में देखते हैं जो यह सन्देश बार-बार सुनता है कि -

'आराम के ये हेतु सब बाधा बनें तेरी,
लक्ष्य पथ तुझको बुलाता क्यों करे देरी।
.....
आमोद भी दूना वहाँ सुख स्वर्ग के सब भी,
सोच से भी बाहर के रस जा वहाँ पर पी।
कस कमर चल दे अभी क्यों देर करता रे,
बीत जायें क्षण नहीं कुछ उठ अभी चल दे।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 50)

उनका स्वप्न विश्वगुरु, स्वर्ण विहग कहलाने वाला 'भारत' है। वे 'विशाल भारत' के स्वप्नदृष्टा हैं। उनका स्वर्णिम 'भारत' महान् है। वे कहते हैं–

'सूर्योदय पीताभ छटा, भारत का भाल विशाल,
सागर की गहराई से, अभिभूत हुए बेहाल।
ऐसा भी क्या स्वर्ग दूसरा , होता होगा और,
पँछी अपने देश चले पर मन उनका इस ओर।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 74)

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के काव्य में उदात्त जीवन दर्शन का 'कैलाश' है तो अत्युच्च कोटि की आस्था-ज्योत्स्ना प्रदायक 'चन्द्र' विद्यमान है। उनमें पांडित्य का बोझ, शास्त्रीय ज्ञान की चेतना तथा बौद्धिक दर्शन का भार नहीं है बल्कि लोकहृदय की सजगता, सरलता, सरसता एवं स्वाभाविकता है। उनके चिन्तन में आज के बाज़ारवादी उपभोक्तावादी दर्शन की स्वार्थपरता नहीं है, भौतिकवाद के प्रति अँधाकर्षण भी नहीं है, पश्चिमी संस्कृति के अँधानुकरण की मनोवृत्ति भी नहीं है बल्कि वे एक आत्मविश्वास को जीते हैं। उनकी व्यक्ति चेतना लोकमंगल की साधनावस्था की उपासक है। सत्यम ...., शिवम् प्रयोजन तथा सुन्दरम् साधन है। भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन मूल्यों की चिरन्तनता की उपासना का पर्याय नाम है—

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा।

❑❑❑

31

यथार्थ एवं सहजता के कवि : डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

डॉ. नागेश्वर सिंह

यथार्थ एवं सहजता का साक्षात् सृष्टि मात्र का अभिप्रेत होता है, पर इस तक कौन पहुँच पाता है? मनुष्य अपनी मानसिकता की सीमाओं, द्वन्द्वों और उसके बीच विवेक केस्वीकार-निषेध में फँसा रहता है जिसके परिणामस्वरूप अपने मन के भावों की यथार्थ एवं सहज अभिव्यक्ति की पूर्व पीठिका को वह उचित-अनुचित, नीति- अनीति, नीति एवं उपदेश आदि की तराजू पर तोलने के झंझावात में उलझकर कभी-कभी अपने सृजन के माध्यम से अपने मन के सहज भावों की अभिव्यक्ति करने का साहस नहीं कर पाता है।

यह सत्य है कि काव्य की उपादेयता एवं उसकी मौलिकता मन के भावों की सहज अभिव्यक्ति में ही है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की कविताओं में यह सहजता एवं यथार्थता देखने को मिलती है। उनकी प्रारम्भिक कविताएं उनकी किशोरावस्था की भावनाओं की निश्छल परिणति है जो उनके व्यक्तित्व की प्रौढ़ता के साथ-साथ अपने मूल से जुड़े रहकर भी मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है।

सहजता में प्रौढ़ता, दर्शन, प्रेरणा एवं कर्मपथ पर चलने की लालसा के श्रृंगार रथ के संयोग एवं वियोग रूपी के दोनों पहियों के सहारे काव्य-पथ पर अग्रसर होना, यही है डॉ. शर्मा के कवि व्यक्तित्व की वह विशेषता जो उन्हें एक सामान्य कवि होने पर भी काव्य जगत् की एक अलग पंक्ति में ले जा खड़ा करती है और यही उनके काव्य की विशेषता है। शर्मा जी की कविताओं

*पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

में युगबोध मानवीय भावनाएं, नियति, कृति, संवेदनाएं आदि बहुत सी ऐसी बातें हैं जो साहित्य के अध्येताओं हेतु शोध का विषय है जिसका विवेचन करना आवश्यक है-

शर्मा जी की प्रारम्भिक कविताएँ उनकी किशोरावस्था में उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में लिखी हैं। उन्होंने वर्तमान शिक्षा प्रणाली की कमियों एवं शिक्षकों के पक्षपातपूर्ण रवैये को नजदीक से देखा है और कहीं-कहीं वे उनके कोप का भाजन भी बने हैं। संभवत: उनकी प्राम्भिक कविताओं में शिक्षा प्रणाली पर किया गया व्यंग्य चार दशक व्यतीत होने पर भी अपने चरमोत्कर्ष पर मौजूद है-

'प्राध्यापकों के पुत्र एवं भानजे पढ़ते कभी
दस में से दस वे प्राप्त करते टैस्ट चाहे दें नहीं '

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 14)

शर्मा जी के जीवन की पृष्ठभूमि ठेठ देहात रहा है। उनका जन्म राजस्थान प्रान्त के ग्राम मैड़ स्थित उनके पैतृक घर में हुआ जिसमें उनका परिवार रहता नहीं था परन्तु किले की तलहटी में स्थित इस दुमंजली हवेली में ब्याह-शादी, जन्मोत्सव आदि का आयोजन होता था और उनका परिवार यहाँ से एक किलोमीटर दूर बाणगंगा नदी स्थित श्री सियावरजी के मंदिर पर निवास करता था। शर्मा जी ने होश संभालने के पश्चात् अपना छात्र जीवन निर्जन जंगल में स्थित इसी मंदिर में अपने परिवार के साथ व्यतीत किया। निर्जन वन, प्रकृति का अँचल, पशु-पक्षियों का प्रत्यक्ष दर्शन, ये सब उन्हें देहात से भी पृथक करते थे। यदि स्पष्ट एवं देहाती बोली में कहा जाय तो यह कि उनका बचपन जंगल में बीता । गाँव में उन्होंने आठवीं तक की शिक्षा ग्रहण की और आगे की स्कूली शिक्षा हेतु वे पहले शाहपुरा एवं बाद में जयपुर गये जहाँ उन्होंने जीवन के हर पक्ष में पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण देखा। चूँकि उनका स्वयं का जीवन देहात के जंगल में व्यतीत हुआ था अत: उन्हें कस्बे एवं शहरों का यह आधुनिकतापूर्ण जीवन बेमानी सा लगा जिसे उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है—

युवा लोग अभिनेताओं से सूट हैं पहने हुए
उन जैसी ही वे बात करते गर्व से बैठे हुए

बुड्ढ़े महाशय देखते जब छोकरों के हाल हैं
वे भी पहनते सूट वैसे फिर बढ़ाते बाल हैं

साधारण से परिवार में उनका जन्म होना, आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए पिताश्री का उनके अध्ययन में सहयोग, प्रोत्साहन एवं तत्कालीन स्वजनों-मित्रों की स्वार्थलोलुपता, इन सभी ने शर्मा जी को आहत किया। एक संस्मरण में उन्होंने इस तथ्य को उजागर किया है—

'बात उस समय की है तब मैं शायद दरबार उ.मा. विद्यालय जयपुर में 11 वीं कक्षा में पढ़ रहा था। मुझे फीस एवं पुस्तकों के लिए बीस रु. की आवश्यकता थी। पिताजी के पास कुछ रूपये कम पड़ रहे थे अत: वे रूपये उधार मांगने लक्ष्मीनारायण जी नरेठवाला के यहाँ गये जहाँ पिताजी का उधार खाता चलता था। काफी सम्पन्न सेठ थे लक्ष्मीनारायण जी। उन्होंने बहाना बनाकर पिताजी को टाल दिया। पिताजी काफी दुखी हुए परन्तु पता नहीं कैसे उन्होंने मेरी व्यवस्था कर दी और मैं अपनी फीस के रूपये जमा करा सका।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : कुछ-कुछ यादें)

डॉ. शर्मा ने मानव जीवन की इस स्वार्थलोलुपता को अपनी कविताओं में उकेरा है—

'लगा हूंकने जोर से हुक्की-हुक्की स्यार ,
मालिक था उस खेत का बैठा बस तैयार
लाठी लेकर आ गया गीदड़ भागा तेज
ऊँट बिचारे के लगे उसके लट्ठ अनेक ।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई, पृष्ठ 16)

सियार और गीदड़ की लोककथा के माध्यम से मानव की स्वार्थलोलुपता को उजागर करने वाली यह कविता अपने आप में अद्वितीय है।

शर्मा जी के पिता, श्री सियावरजी का मन्दिर, मैड़ के महन्त थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवान की भक्ति एवं मानव-मात्र के हित में लगा दिया। कवि पर अपने धर्मप्राण पिता के संस्कार अंतर की गहराइयों से हैं और संभवत: इन्हीं का परिणाम है उनके द्वारा अपने पिता की जीवनी 'कर्मयोगी' का लेखन। उनका ईश्वर की भक्ति एवं आराधना में अटूट विश्वास है—'हनुमानजी मेरे

इष्टदेव हैं। श्री सियावरजी के मन्दिर स्थित हनुमानजी की मूर्ति को मैं इच्छित समय पर उसके मौलिक रूप में देख सकता हूं और संभवत: यह इस कारण से हो सका है कि मेरे पिताश्री द्वारा उमंग एवं श्रद्धा से स्थापित इस मूर्ति के समक्ष उनके द्वारा सत्संग एवं भजन की सैंकड़ों प्रस्तुतियां दी गई हैं और तब एक छोटे बालक के रूप में मैंने उस प्रत्येक पल को आत्मसात् किया है, सत्संगियों को रामझारे में से कपों में चाय भर-भरकर पिलाई है। आज भी मेरे जयपुर स्थित निवास पर हनुमान जी महाराज की भभूत पूजाघर में रखी रहती है। चाहे घर का कोई भी सदस्य घर से बाहर निकले या किसी शुभकार्य का आरम्भ हो हम लोग हनुमानजी महाराज की भभूत लेना या शुभ कार्य के अवसर पर उसे लगाना नहीं भूलते।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा से साक्षात्कार 25 दिस. 2005)

शर्मा जी के काव्य में यत्र-तत्र ईश-भक्ति एवं अराधना के भाव भी देखे जा सकते हैं। यथा, काव्य संग्रह 'तरुणाई' की कविता 'हनुमानजी की आरती' में यह भाव देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त उनका खण्डकाव्य तो सम्पूर्ण रूप में ही माँ संतोषी की भक्ति धारा में समर्पित-प्रवाहित है। हरीगीतिका छन्द में लिखित इस खण्डकाव्य में संतोषी माँ की कथा को लयात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके विभिन्न ढूंढाड़ी गीतों में भी ईश्वर की भक्ति एवं आराधना की स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है। डॉ. शर्मा जी ने अपने नाटक 'लड़ी मैड़ की' के 26 दिसम्बर 2006 को रवीन्द्र मंच जयपुर पर किये गये प्रस्तुतीकरण में 11 ढूंढाड़ी गीतों को समाविष्ट किया था जिनमें भी ग्राम मैड़ अंचल के विभिन्न देवी-देवताओं की महिमा का बखान किया गया था। इन देवताओं में श्री सियावरजी (राम, लक्ष्मण, सीता) हनुमानजी, भैरुंजी भोम्याजी, शिवजी आदि प्रमुख हैं। असल में 'लड़ी मैड़ की' नाटक संगीत एवं काव्य से भरपूर एक ऐसा सशक्त कथानक है जिसमें शर्मा जी ने अपनी जन्मभूमि ग्राम मैड़ के आसपास स्थित विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों, व्यक्तियों, खान-पान, रीति-रिवाज, बोली-भाषा ,वार-त्यौंहार, देवी-देवताओं आदि का सजीव चित्रण किया है जिसे स्पष्ट करने हेतु बैकग्राउण्ड में गीतों की कैसेट चलाई गई और उस गीत विशेष की थीम को स्पष्ट करने हेतु अभिनेताओं द्वारा जीवन्त अभिनय किया गया। ईश-भक्ति एवं अराधना को दर्शित करने वाले उनके प्रमुख गीत इस प्रकार हैं—

कोनै निकळूं ,शेर्‌यो बावर्‌यो, म्हन्त गणेश दास जी, बावन कूणा , पींजरा, चींटी नंगरो, भाई का जन्म आदि।

डॉ. शर्मा के पिताश्री महन्त श्री गणेशदास जी महाराज ने आजीवन श्रद्धा एवं लगन से भगवान की पूजा-अर्चना की अत: शर्मा जी की न केवल ईश्वर में अस्था रही अपितु उन्होंने अपने स्वर्गीय पिताजी की जीवनी 'कर्मयोगी' लिखकर उनकी आराधना की। उनके निम्नांकित गीत उनकी पितृ भक्ति को उजागर करते हैं—

श्री विश्वनाथ शर्मा द्वारा लिखित भजन का संकलन-

'ग्राम मैड़ के संस्कृत के विद्वान स्व. श्री सुवालाल महन्त उर्फ श्री विश्वनाथ शर्मा द्वारा महन्त श्री गणेशदासजी की ईश-अराधना, पूजा एवं भक्ति के समर्पण तथा उनके दैनिक क्रिया कलापों को उद्‌घाटित करने वाला एक भजन लगभग आज से 65 वर्ष पूर्व लिखा गया था और आज से लगभग 35 वर्ष पूर्व तक यह भजन ग्राम मैड़ अँचल में आयोजित भजन-सत्संगो में श्रद्धापूर्वक गाया जाता था।'

परन्तु काल की प्रवाहित धारा इस गीत को भी लील गई और संभवत: इसकी पीड़ा से आहत होकर वर्ष 2002 में शर्मा जी इसके रचयिता श्री विश्वनाथ शर्मा से मिलने मैड़ पहुँचे।

'जब मैंने मेरे भतीजे से विश्वनाथ जी के बारे में पूछा तो उसने बताया कि महन्त जी पागल हो गये हैं और गाँव के बच्चे उन पर पत्थर फेंकते हैं। संस्कृत के इतने प्रकाण्ड पण्ड़ित की यह दशा। मैंने अपने भतीजे को साथ लिया और ढूँढ़ने निकला उन्हें मैड़ गाँव में। छतरी के बाजार की धर्मशाला में वे रहते थे जहाँ वे न मिले। आगे बढ़े तो सेढ़ माता के चबूतरे के पास वे दिखाई दिये। बच्चों का हुजूम उनके पीछे पड़ा था। मुझे गाँव के बहुत कम लोग पहचानते थे। जब मैं महन्त जी के पास पहुँचा तो मुझे कोई परदेशी व्यक्ति समझकर एक ओर हट गये। मैंने उनके पैर छुए और अपना परिचय दिया कि मैं सियावरजी के महन्त स्व.श्री गणेशदासजी का सबसे छोटा पुत्र कैलाश हूँ। सुवालालजी मेरे पिताजी की भजन-मंडली के नियमित सदस्य थे। शायद 35 वर्ष पूर्व की ओर दृष्टि डालकर वे मुझे पहचान गये और मुझे गले लगा लिया । उनके हृदय में मेरे प्रति वात्सल्य भाव उमड़ आया था। उन्होंने मेरे परिवार एवं क्रिया-कलापों

के बारे में जानकारी ली। जब मैंने उन्हें अपना आने का प्रयोजन बताया कि मैं वह पूरा भजन लिखना चाहता हूँ जो आप द्वारा रचित है और 35-40 वर्ष पूर्व तक गाँव के सत्संग-भजनों में गाया जाता था तो उनकी आँखे सजल हो आयी और बोले- 'बेटा सब कुछ समाप्त हो गया। इन्सानियत, नैतिकता, ज्ञान, दर्शन सब लुप्त होता जा रहा है। परन्तु तुम आये हो तो मैं तुम्हें बहुत सी ऐसी जानकारी दूंगा जो अन्य किसी को अभी तक पता नहीं और वे तुम्हारे स्वर्गीय पिताश्री के सत्कार्यो को उद्घाटित करती हैं।'

मैंने महन्त जी के पैर छुए और 21 रू. दक्षिणा देना चाहा परन्तु उन्होंने यह कहते हुए लेने से इन्कार कर दिया-

'बेटा हम सदा देने वाले रहे हैं। तुम छोटे हो अत: तुम्हारा हक़ केवल लेने का है, यही हमारी संस्कृति कहती है।'

और उन्होंने आशीर्वादस्वरूप अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर वह सब कुछ दे दिया जिसकी मैं कल्पना तक न कर पाया था। मैं अपने भतीजे के साथ मंदिर (अपने निवास स्थान) आ गया और उसे 60 रू. यह कहते हुए दिये—

नौ रू. के कागज खरीदना और इस पैन के साथ सुवालालजी महन्त को देना। उनकी स्थिति ऐसी है कि वे पैन-कागज भी नहीं खरीद सकते और चाहे कितना ही मना करें पर मेरी ओर से 51 रू. दक्षिणा के रूप में दे देना।

कुछ महिनों बाद जब मैं वापस अपने गाँव गया तो पंडितजी के हाथ से लिखा वह भजन मुझे मिल गया जिसे मैंने 'कर्मयोगी' में छापा। उनसे और लिखवाने की मेरी मनोकामना पूर्ण नहीं हो सकी क्योंकि 'कर्मयोगी' छपने के लगभग 6 माह पश्चात् ही मुझे महन्त जी के स्वर्गवास की दुखद सूचना मिली।

मेरे मन में आज भी यह पीड़ा है कि एक मनीषी को गाँव के लोगों ने पागल बना दिया क्योंकि उन्होंने अपनी संस्कृति नहीं छोड़ी, नैतिकता का दामन न छोड़ा। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि पागल कौन है, हम या वह 'कर्मयोगी' जिसने अपने आदर्शों से मुँह न मोड़ा।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : कुछ-कुछ यादें)

डॉ. शर्मा द्वारा संकलित यह भजन ईश भक्ति, गुरुभक्ति और देश भक्ति का अद्भुत उदाहरण है—

स्थाई - 'कहो धन्य गणपति दास नै हनुमत नै ध्यावै छै
हनुमत नै ध्यावै छै वो बजरंग नै ध्यावै छै।
छोटे-छोटे बाल बच्चे रोग मे हुए थे जाम
उनके खाली झाड़ा देवे औषधि का ले ना नाम
झाड़ा ही से ब्हाल होवे ऐसा देख्या हनुमान
.....
सुनो तुम नाम गणेशईदास
करत है हनुमत की अरदास
करेंगे हनुमत बेड़ा पार
करेंगे हनुमत बेड़ा पार
भजन विश्वनाथ बणावै छै'

(स्व. श्री विश्वनाथ शर्मा उर्फ सुवालाल जी महन्त ,
ग्राम मैड़ द्वारा रचित एवं 'कर्मयोगी' से उद्धृत)

समय की धारा का प्रवाह मुड़ा । ईश-भक्ति एवं आराधना के प्रति लोगों की अस्था में भी कमी आई जिससे भी कवि हृदय आहत हुए बिना नहीं रहा। जिस सियावरजी के मन्दिर की पूजा-अर्चना महन्त श्री गणेशदास जी ने मनोयोग से की थी आज उसी मंदिर की व्यथा-कथा कुछ कम नहीं है। और यह वर्तमान युग की कथा है। पुजारी भगवान की सेवा के प्रति कम और मन्दिरों की ज़मीनों से प्राप्त आय की ओर, उसे बेचकर पैसा बनाने की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं। यदि बेमन से पूजा की भी जा रही है तो यह मन्दिर की सम्पति के दोहन हेतु उनकी विवशता है। शर्माजी ने इस यथार्थ को अपने ढूंढाड़ी गीत 'पूजा को ओसरो' में उजागर किया है-

'पूजा करीं पुज्यारी धरती खाबा तांई
तू लै देख तमाशो सियावर तेरा टुकड़ा व्हैर्‌या छीं'

(अर्थ-वर्तमान समय में पुजारी मन्दिर की पूजा इसलिए करने को विवश हैं ताकि वे मन्दिर की ज़मीन का दोहन कर ऐश कर सकें। कवि कहता है कि हे सियावर भगवान, तू भी इस तमाशे को देख ले कि आज तेरे किस प्रकार से

टुकड़े हो रहे हैं। अर्थात् पुजारियों द्वारा तेरी पूजा करने के उनके दायित्व को भी बारह महिनों में आये उनके नम्बर के हिसाब से बाँट लिया गया है।)

'छान धूणी की लूटी अर फेर बाडो लूट्यो
सामैं रूंखड़ा लगाया लाठी कै पाण जी .....'

(अर्थ-कर्मयोगी पुस्तक में संतों की प्राचीन धूणी का वर्णन किया गया है जिस पर छप्पर बँधा रहता था और उसकी अग्नि कभी नहीं बुझती थी। उसके पास में ही खाली जगह थी जिसके चारों ओर काँटो की बाड़ लगी थी। इस स्थान को बाड़ा कहते थे। हनुमान जी के मन्दिर के सामने ही रामनवमी के मेले में भिसायतियों आदि की दुकानें लगाने हेतु खाली स्थान था जिसमें कुश्ती होती थी, दुकानें लगती थी और श्रद्धालु इकट्ठे होते थे। 'त्रिवेणी कैसेट' के शीर्ष गीत 'चालो रै चालो सियावरजी का मेळा मै' में इस स्थान एवं इस मेळे का सजीव चित्रण किया गया है। कैलाश शर्मा जी द्वारा लिखित एवं निर्देशित एवं 5 फरवरी 2011 को जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनियां' में प्रसारित नाटक 'मेरी लाडो पढ़ेगी' में इस गीत को पार्श्व से बजाया गया तथा नाटक के सैट के रूप में निर्मित 'महन्त श्री गणेश दास हटवाडा बाणगंगा मैड़' और 'श्री सियावरजी का मन्दिर बाणगंगा मैड़' शर्मा जी की पुस्तक 'कर्मयोगी' के मुखपृष्ठ को जीवन्त रूप में साकार कर रहे थे।

परन्तु आज मन्दिर के उत्तराधिकारियों द्वारा उस धूणी की छान, बाड़े और मेळा लगने वाले मैदान पर कब्ज़ा कर लिया गया है। अब न धूणी में अग्नि है और न ही हनुमान जी का वह मेळा लगता है जिसका शुभारम्भ महन्त श्री गणेशदास जी महाराज द्वारा किया गया था।)

'लोभ आयो पाछाळां का मन मैं छोड़ भक्ति नै
कोई लूटै छै खिजूरयां कोई डोळा काटै
संत जिण्डे छा दफणाया ऊं क्यारी नै कोनै छोड्या रै'

(अर्थ— महन्त श्री गणेशदास जी तक के संत-महात्माओं द्वारा बिना किसी लोभ लालच के भगवान की सेवा-पूजा की गई परन्तु उनके बाद की पीढ़ी के पुजारियों के मन में लोभ-लालच आ गया। कोई तो अपने खेत की सीमा के पास की मन्दिर की ज़मीन की खजूरों पर अपना हक़ जताता है और कोई अपनी सीमा तोड़कर मन्दिर की ज़मीन को अपनी में मिलाने का प्रयास

करता है, यहाँ तक कि जिस खेत में महन्त श्री गणेशदास जी का दाह संस्कार किया गया था उस खेत के मालिक एवं महन्तश्री के एक उत्तराधिकारी ने उस श्मशान क्यारी को भी काट-पीटकर अपनी भूमि में मिला लिया है और उस स्थान पर फसल बो दी है।)

माँ बापां नै दुख देर्‌या अर देखो करीं पूजा
काँईं मंतर बोलर्‌या वांको मतलब कोनै जाणी
कर्‌या ओसरा सियावर का देख तमाशो भाई रै

(अर्थ— पहले मन्दिरों के महन्त के रूप में योग्यतम व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता था परन्तु आज अयोग्य व्यक्ति भी मन्दिरों की पूजा कर रहे हैं। पूजा में जो मंत्र बोले जा रहे हैं न तो उन्हें उनके मर्म-अर्थ का पता है और न ही वे अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य को समझने में सक्षम हैं, परन्तु फिर भी वे भगवान की पूजा कर रहे हैं यह तमाशा देखने योग्य है।)

अन्त में कवि इन ढ़ोंगी पुजारियों को चेतावनी देते हुए कहता है कि हे पुजारियों ! ये ढ़ोंग-पाखण्ड बन्द करो और जितना तुम्हारा हक़ बनता है उतनी ज़मीन का ही उपयोग करो और भगवान की सच्ची भक्ति करलो वर्ना तुम्हें नर्क में जाना पड़ेगा—

सुणो पुज्यारी ज्यो खावोगा करम कर्‌यां बिन धरती नै
अन्न-अन्न फूटैगो देह सूं कोनै जाय पचायो रै
जित्तो थांको हक़ धरती पर उतरो ही थे ल्यो रै
स्वर्ग नरक ईं जन्म मिलैगो क्यांटै देखो बाट रै
अब भी थे चेतो रै
जितरो थांको हक़ बणर्‌यो बस उतरो ही थे ल्यौ रै
सांची भक्ति करल्यो रै भाई सांची भक्ति करल्यो रै

'तरुणाई' काव्य संग्रह की एक अन्य कविता 'वनवास' भी कवि की भक्ति-भावना की ही परिचायक है। इस कविता में कवि ने राम, लक्ष्मण, सीता के वनगमन का काव्यात्मक बिम्ब प्रस्तुत करते हुए इसे सामान्यजन से जोड़ने का प्रयास किया है। यहाँ पर कवि ने यह कल्पना की है कि वनवास के दौरान जब राम, लक्ष्मण और सीता नंगे पैरों निर्जन वन में चलते हैं तो उनके पाँवो के

नीचे के काँटे और धरती की क्या भावनाएँ है। यहाँ पर कवि ने निर्जीव में जीव और उसमें भी भावनाओं की कल्पना की है जो काव्य जगत् का एक अनूठा प्रयास है—

'कोमल-कोमल पैर पड़ें जब धरती भी सकुचती है
धक्-धक् करे धरा का दिल भी पर मन में हर्षाती है।
छुप जाओ कानन के कञ्टक नहीं सकेंगे सह आघात,
रे प्यारे परसेवी पेड़ो पथ में पाटो सुन्दर पात।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : काव्य संग्रह तरुणाई पृष्ठ 19-20)

कवि ने तरुणाई काव्य संग्रह के बाद की अपनी कविता 'वन्दना' में प्रेम की आराधना की है जो स्त्री-पुरुष के आत्मिक सम्बन्धों का नि:रूपण करती है—

'कितनी भी प्रतिकूल दशायें अवरोधों के कञ्टक भी
निज मन के अनुकूल मिलें जो ये बन जायें पुष्प सभी
मधुर-मधुर संगीत बज रहा, मिलन हुए दो मन जो थे
करूं वंदना मधुर राग में मन मेरे में बरसों से
आज तुम्हें पा धन्य हुआ साँसों में जीवन प्रकट हुआ
'अभिव्यक्ति' को तुम पूरा कर स्वीकार करो ये वंदना'

कवि ने अपने काव्य में जहाँ एक ओर श्रद्धा एवं भक्ति का सूक्ष्म चित्रण कर उसे साकार किया है वहीं दूसरी ओर इसके भ्रम को भी तोड़ा है। श्रद्धा एवं भक्ति के अन्तर को भी कवि ने अपनी कविता 'मैं तो हूं श्रद्धेय नहीं' में उद्घाटित किया है जो संभवत: उनके प्रेम-पथ पर अनुभूत भावनाओं की पीड़ात्मक अभिव्यक्ति है जो पाठक के मन पर एक अमिट प्रभाव छोड़ती है—

'मन की बात कहूं किससे मन व्याकुल है अभिव्यक्ति को
जिसको भी कहना चाहा कहता तुम मेरे श्रद्धेय हो।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : 'मैं तो हूँ श्रद्धेय नहीं')

यह कविता संभवत: अतृप्त प्रेमी की पीड़ात्मक अभिव्यक्ति है। संभवत: कवि हृदय बार-बार उसी से प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने को तत्पर हुआ जहाँ

उसे कोई पीड़ित पक्ष बेबसी से तड़पता हुआ दिखा और कवि इसे ही जीवन का सच्चा ध्येय मानता है—

'मैं वैवाहिक प्रस्तावों के दौरे से गुज़र रहा था। कई लड़कियां देख आया था। जोधपुर में एक बैंक के प्रबन्ध निदेशक की पुत्री से विवाह न करने का निर्णय कर चुका था। झाबुआ के राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त प्रधानाध्यापक जी की पुत्री से विवाह करने की बात तय करके मैं जयपुर लौट आया परन्तु वहां मुझे आगरा से एक हिन्दी के प्रोफेसर की पुत्री हेतु विवाह-प्रस्ताव मिला। मैं अकेला आगरा गया। सब कुछ सामान्य था उनकी पुत्री रेनू के सोरोईसिस की बीमारी थी। हाथों पर बड़े-बड़े चकत्ते थे जिसे वह साड़ी के पल्लुओं से छुपाने का प्रयास कर रही थी । प्रोफेसर साहब ने इसे सामान्य सी बीमारी बताया था। मैंने महसूस किया कि उनकी यह सुयोग्य पुत्री इस बीमारी से पीड़ित हो मन में दु:खी है, अत: मैंने उससे विवाह करने का निर्णय किया और आगरा से ही झाबुआ के प्रधनाध्यापक जी को तार कर दिया कि मैं आपकी पुत्री से विवाह न कर पाने हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। कारण था कि झाबुआ वाली कन्या किसी दु:ख से पीड़ित न थी जबकि आगरा के प्रोफेसर साहब की पुत्री सोरोईसिस जैसी असाध्य बीमारी से पीड़ित थी और संभवत: इसी के कारण उसे मेरी जीवन संगिनी बनने का अवसर मिला। वह मेरी प्रगति की सहचरी बनी और इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।' (डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : कुछ-कुछ यादें)

कवि का सजल हृदय किसी की भी पीड़ा को देखकर आर्द्र हो उठता है पर वह उनसे श्रद्धा की नहीं अपितु प्रेम की कामना करता है—

मैं साधारण सा मनुज किया पीड़ा को अंगीकार सदा
अवरोध दिखे जिसके जीवन व्याकुल मन उस ओर चला
मन को थोड़ा दे धैर्य चला आगे जीवन की राहों पर
रूदनमय चीत्कारें सुन झट से जा पहुँचा मेरा मन
वृत्तांत सुना कुछ ढ़ाढ़स दे प्रिय सखा मान कहना चाहा
दृग-नीर भरे बोला श्रद्धेय मैं यह उपकार न भूलूंगा
पिंजरे में पँछी तड़पे जा मुक्त किया था युक्ति से
वह बोला तुम मेरे श्रद्धेय जब तक मेरा जीवन है

कवि जीवन में पग-पग पर अपने पीड़ित प्रेमी को आश्रय देता है पर उसे हर जगह प्रेम नहीं अपितु श्रद्धा मिलती है, भले ही यह कवि के सफल जीवन का हेतु रहा हो पर इसकी अनुभूति मात्र से वह पीड़ित हो अपने प्रेमी से प्रेम की अभिव्यक्ति की कामना करता है—

'तुमको मैंने ना देखा अनुभूत किया अन्तर्मन से
मन कहता तुम मेरे प्रियतम भटक रहे सौ जन्मों से
अभिव्यक्ति जब मैंने की तो क्यों कहते मैं श्रद्धेय हूँ
कई हजारों घाव हृदय में कह दो प्रिय, आ सहला दूँ
नहीं कहो श्रद्धेय नहीं तो सौ जन्मों की और गई
प्रेम बड़ा श्रद्धा से यहाँ कह दो 'अभिव्यक्ति' जीत गई।

कवि अपने प्रेमी से प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति की कामना करता है परन्तु वह प्रतिपक्ष द्वारा की गई श्रद्धा में भी प्रेम की अपेक्षा रखता है। कवि का उपन्यास 'अभिव्यक्ति' अपने सम्पूर्ण रूप में ही इस तथ्य को उजागर करता है और उनकी कविता 'अभिव्यक्ति' तो मानो अपने आप में इस सम्पूर्ण उपन्यास को समेटे हुए है—

'उठ खड़े हुए दोनों राही, जाना जीवन की राहों पर
खण्ड़ारे की दहली पर आ, मन ठिठक गये उनके यों तब
दृष्टि उठाकर रहे देखते दोनों मन की आँखों से
निज मन की वाणी को कैसे अभिव्यक्ति दें साँसों से
अँक पसारे झिझके से संकोच सहित आगे आये
युग-युग से तड़प रहे मन को आपस में राही सहलायें,

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : 'अभिव्यक्ति')

यह सर्वविदित है कि बालक स्वभाव से ही चँचल होते हैं और नवीनता एवं बेतुकेपन को शीघ्र अंगीकार करते हैं। चमत्कारिक एवं आश्चर्यजनक घटनाओं, सन्दर्भों एवं शब्दों को प्रमोदवश अंगीकार करने की अतिश्योक्ति के साथ कहने-सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। शर्मा जी सदैव ही बच्चों के सहचर एवं मित्र रहे हैं जो उनके जीवन के विभिन्न पक्षों से स्वत: उजागर होता है। संभवत: यही कारण है कि 'त्रिवेणी कला संगम जयपुर' संस्था के विभिन्न बाल नाट्य

शिविरों का वे कुशल निर्देशन करते हुए रंगमंच के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करने में सफल रहे हैं। काव्य संग्रह 'तरुणाई' की कविता 'बाल संग्राम' में उन्होंने कुत्तों के बीच हुए घमासान युद्ध का बाल सुलभ भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में बड़ा ही रोचक वर्णन किया है-

'उठकर सभी बच्चों पकड़ लो हाथ में लकड़ी सभी
कुत्तों की फौजें युद्ध करने पास में ही आ गई
मूसल उठा लो हाथ में तुम काम कुछ आ जायेगा
कुत्ता सिर्फ दो चोट में ही युद्ध में मर जायेगा।
चकला व बेलन साथ लेना भूल मत जाना कहीं
सब दुश्मनों को बेल देना रख वहाँ तत्काल ही
साधू तुम्हारे साथ में है मत जरा चिन्ता करो
यह श्राप देकर मार देगा दुश्मनों की फौज को'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 21-22)

मनुष्य की प्रवृत्ति एवं उसकी सोच में परिवर्तन कठिन है। यह सत्य है कि जीवन-धारा में बहते हुए मानव-मन धुल धुलकर परिष्कृत होता है और समय व्यतीत होने के साथ-साथ मनुष्य के विचारों में कमोबेश रूप से बदलाव आता है परन्तु मनुष्य के मौलिक भावों में परिवर्तन कठिन है। एक लोकाक्ति है कि 'पूत के पाँव तो पालणे में ही दिख जाते हैं।' इस सामान्य सी लोकोक्ति में बहुत गहरी बात छिपी है जो उक्त कथन की पुष्टि करती है।

शर्मा जी का स्वयं का जीवन संघर्षपूर्ण रहा है। उन्होंने कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए अपना रास्ता स्वयं तय किया है जो उनकी विभिन्न कविताओं में परिलक्षित होता है।

शर्मा जी जैसा कर्मठ व्यक्ति ही जीवन के रहस्यों को जान सकता है, सोच सकता है और इस सम्बन्ध में अपने उद्‌गार व्यक्त कर सकता है। कवि-हृदय में ये भावनाएँ उनकी मात्र बाईस वर्ष की उम्र में देखी जा सकती हैं जो उन्होंने अपने 'तरुणाई' काव्य संग्रह की 'जीवन का रहस्य' कविता में प्रकट की हैं—

'मैं बड़ा सजकर चला बहु गर्व था
दम्भ था मुझको बड़ा सम्पत्ति का
.....
दिव्य दृष्टि तब चली मेरी वहाँ
था जनाजा जा रहा निष्फ़िक्र हो
.....
अंत मेरा भी यही होगा कभी
साथ ना होगा वहाँ सम्पत्ति का
छोड़कर रथ मैं चला श्मशान को
शान्त मन था मैं बड़ा निश्चिन्त था

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 23)

परिस्थितियों की पगडण्ड़ी के सोपान पार करते हुए कवि-हृदय ने अनेक विपदाओं का सामना किया है और उनके हृदय में रहस्यवाद का जज़्बा पल्लवित होता रहा जो जीवन की आधी यात्रा के दौरान उन्होंने अपनी कविता 'एक प्रश्न' में उनके उपन्यास 'अभिव्यक्ति' की समीक्षिका डॉ. गीता सक्सेना को एक पत्र लिखकर प्रकट किया था। यह पत्र एवं कविता कवि के सृजन पथ का एक महत्वपूर्ण बिन्दु-स्थल है। वर्ष 2007 में डॉ. गीता सक्सेना ने उपन्यास की समीक्षा के दौरान शर्मा जी से दूरभाष एवं पत्रों द्वारा लगातार सम्पर्क बनाये रखा। इसी बीच उन्होंने अपने मन की दुविधा को गीता जी के समक्ष रखा जो उनके जीवन की एक सामान्य सी प्रक्रिया थी परन्तु यह कविता उनकी रहस्यवादी विचारधारा का द्योतक है—

'एक पल के लिए भी साहित्य-सृजन से विलग होना मेरे लिए पीड़ादायक है। सब कुछ जानने के बाद भी मन की अनिश्चितता की स्थिति से रोम-रोम पीड़ित है और उसी का परिणाम है यह कविता—'एक प्रश्न'।'

(डॉ. गीता सक्सेना को लिखे गये पत्र दिनांक 25/2/07 से)

'सोचता हूँ- क्यों चला जा रहा हूँ स्वजनों की लाशों पर,
इन्हें ढ़ोना, उनकी मंज़िल तक पहुँचाना,
यही होनी थी मेरी मंज़िल,

सोचता हूँ बार-बार, फिर क्यों बहका
उस बेमानी सी मंज़िल को पाने की लालसा में
न करेंगे सहकर भी प्रतिकार,
स्वजनों को मिले आत्म सन्तुष्टि,
हे विधाता! इन्हें मत प्रताड़ना।
मंज़िल को आगोश में ले कितना ही छिटकूँगा
इस पीड़ा की अनुभूति को ।
पर क्या अपना साया हो सकेगा मुझसे विलग'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : एक प्रश्न 25/2/07)

कवि का मानवीय संवेदनाओं से निकट का साक्षात् रहा है। वे जीव मात्र की धड़कनों को महसूस करने में सक्षम हैं। उनके हृदय में अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में सूक्ष्म भावनाएँ उनके काव्य में यत्र-तत्र देखी जा सकती हैं। दो पक्ष जो प्रेम से पूरित हैं अंतत: अपनी-अपनी अभिव्यक्ति को साकार कर सुखद मिलन का आनन्द प्राप्त करते हैं—

'भरमायी सी मदमस्त हुई, अपने को भी यों भूल गई
ललचाकर दृष्टि अधीर हुई, यह प्रथम बार अनुभूति हुई
साँसो को सहला दृष्टि रही उत्तेजित मन के भाव हुए
सर्वस्व समर्पित करने को दो मन यहाँ पर बेचैन हुए
आलिंगन कर दोनों की दृष्टि करे जीवन का रसस्वादन
नर-नारी करें खग वृन्द सभी इस नव सृष्टि को अभिवादन

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 68)

कवि ने अपनी कविताओं में मानवीय अभिव्यक्ति की छटपटाहट को महसूस करते हुए भावनाओं को व्यक्त कर मिलन को साकार स्वरूप में देखने की कल्पना की है—

'जब भाव मिले मन भी मिलकर तड़पे रह-रह कुछ कहने को
संकोच समाया मन में था जो विवश करे चुप रहने को
तड़पे दोनों के चँचल मन व्याकुल निशि-दिन आहें भरते

था नज़रों का साक्षात् हुआ कुछ कहने को चलते-चलते
अवसर ऐसे भी थे आये जब कहने का परिवेश मिला
पर हा रे संकोची मानव, उस क्षण का क्या उपयोग किया
छोड़ ज्ञान-आदर्श विवेकी स्पर्श करो सह राही को
आत्मसात् कर लेगा तुमको मन की प्यास बुझेगी यों

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 71)

कवि का हृदय प्रेम से ओत-प्रोत है। उनकी अधिकांश कविताएँ प्रेम के धागे से और प्रेम के ही ताने-बाने पर साकार हुई हैं। वास्तविक रूप में यह सत्य है कि नाटककार, नृत्यकार, कहानीकार एवं उपन्यासकार शर्मा जी ने अपनी साहित्यिक यात्रा का शुभारम्भ ही काव्य लेखन से किया है—

'सच माने में जब मैं अपने गाँव के श्रीराम प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय में अध्ययनरत था, तभी से मुझे साहित्य के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा ने मुझे कविता एवं साहित्य की अन्य विधाओं से साक्षात् कराया और तत्कालीन विज्ञ गुरुजन इसके हेतु रहे।'

(काव्य संग्रह 'तरुणाई' अपनी बात से)

'तरुणाई' काव्य संग्रह की कविताओं का विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट रूप से उभकर सामने आती है कि कवि की अधिकांश रचनाएँ प्रेम से पूरित हैं और संभवत: यही एक ऐसा पक्ष है जो एक बाल-कवि को साहित्य, संगीत एवं नाटक के क्षेत्र में शीर्ष पर ले जाकर खड़ा कर देता है। 'तरुणाई' में कविताओं के लेखन का काल एवं समय अंकित है जिसके प्ररिप्रेक्ष्य में प्रेम एवं उसकी अपरिमित शक्ति को देखा जा सकता है—

'आतुर हो तब चल पड़े राधाजी के साथ
बढ़ी समझ इज्ज़त करें गर्दन को तैनात
गर्दन को तैनात नशा यौवन का छाया
'चन्द्र' ठगा से देख बड़ा मन में तरसाया
दिखने लगे तमाम चले आते जो सब सुर
चन्द्र तड़प लख उठा हुआ फिर मन में आतुर'
.....

'दो सुन्दर बाला खड़ी लेकर पुष्पाहार
जो जायेगा सफल हो उसका यह उपहार
ऐसा कारज हम करें पाकर विपदा घोर
हार सहित बाला मिलें खुशियाँ चारों ओर'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 27)

'आँख की ज्योति गई तो आँख भी
आह तू क्यों छोड़कर मुझको चली
डूबने दे सुन्दरी उस झील में
घूमने स्वच्छन्द दे जो जी लगे
नैन तेरे उठ गये मैं जी गया
दूर क्यों अब भी खड़ी आ जा प्रिया'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 29-30)

इस कविता में कवि ने प्रेम की शक्ति को सर्वोपरि बताते हुए प्रेमी द्वारा प्रेमिका के प्रति उसके उस अनुरोध को बताया है जिसके स्वीकार कर लेने पर प्रेमी को जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है। यह कविता 9 फरवरी 1981 को लिखी गई है। यह कवि के जीवन का शैशवकाल था चाहे वह साहित्य सर्जना का हो या जीवन में स्थापित होने का। परन्तु उस समय उनके जीवन में कई सुनहरे सपने थे और संभवत: प्रेम की शक्ति के प्रति उनकी अगाध आस्था ही वह अमोघ अस्त्र थी जो उनके उत्तरोत्तर गति से विकास में सहायक रही। उन्हें जीवन के हर पड़ाव पर प्रतिपक्षकारों से प्रेम मिला जिसने उनके जीवन में एक शक्ति-पुञ्ज बनकर उनका मार्ग प्रशस्त किया। चाहे फिर वह उनकी जीवन संगिनी हो या फिर संगीत, नृत्य एवं नाटक की उनकी कोई शिष्या। कवि ने समय-समय पर उन सबमें प्रेम की शक्ति को पहचाना है। उनका उपन्यास 'अभिव्यक्ति', कहानी संग्रह 'अबला की मंज़िल' की कहानी माधवी, साक्षात्कार, मौन समर्पण या उपन्यास 'विरह का इन्द्रधनुष', इन सभी में कवि के जीवन में आये विभिन्न स्त्री-पात्रों से उन्हें मिली प्रेम की शक्ति को देखा जा सकता है जिसे शर्मा जी ने पूर्ण ईमानदारी से उजागर किया है।

इस सम्बन्ध में उनकी शिष्या ज्योति कटारा का सन्दर्भ देना इस समीक्षा को गुणवत्ता प्रदान करना होगा जिसका वर्णन शर्मा जी के संस्मरण 'नाट्य निर्देशन का एक अविस्मरणीय संस्मरण' में किया गया है। ज्योति कटारा ने कवि के भरतपुर प्रवास काल में उनसे संगीत, नाटक एवं नृत्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया और रवीन्द्र मंच, जयपुर पर उनके साथ प्रस्तुतीकरण भी दिया। परन्तु शर्माजी द्वारा लिखित ढूंढाड़ी गीतों के लेखन, स्वर संयोजन एवं प्रस्तुतीकरण में ज्योति ने उनका जो साथ दिया और जो प्रेरणा दी वह उनके लिए आज भी अविस्मणीय है। उन्हीं के शब्दों में—

'ज्योति ने मेरे द्वारा लिखे ढूंढाड़ी गीतों पर अपना स्वर देकर एवं उन्हें मेरे साथ नृत्य रूप में प्रस्तुत करके मुझे और गीत लिखने हेतु प्रेरित किया। वह प्रतिदिन मेरे पास आकर गीतों की पृष्ठभूमि एवं भावार्थ पर मनोयोग से ध्यान देती और चर्चा करती। मैं उसे उच्चारण, सुर, ताल एवं लय की जानकारी देता। जब कभी-कभी डाँट भी देता तो उसकी आँखों में आँसू छलक आते परन्तु वह दृढ़तापूर्वक यही कहती कि मैं इस कमी को पूरा करूंगी और उसने अधिकांश गीत सही उच्चारण के साथ गाये। बस अन्त तक भी 'लल्डी' शब्द को शुद्ध रूप में न बोल सकी। 'त्रिवेणी कैसेट-सी.डी.' के अधिकांश गीत मैंने ज्योति के साथ ही तैयार किये। उसमें सीखने की अपूर्व क्षमता थी । वह प्रतिदिन मेरा लिखा हुआ एक गीत तैयार करती और मुझे हर अगले दिन के लिये एक नया गीत लिखने की आवश्यकता महसूस होती। जब उसने मुझसे सीखना प्रारम्भ किया तब तक मैंने केवल पाँच गीत लिखे थे और उसने मुझसे लगभग बारह और गीत लिखवाये तथा मेरे निर्देशन में गाया भी परन्तु मुझे अफ़सोस है कि वह मेरे साथ 'त्रिवेणी कैसेट-सी.डी.' में न गा सकी।'

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : कुछ-कुछ यादें)

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने अपने निजी जीवन में प्रेम की शक्ति को पहचाना है जो 18 जून 2007 को ज्योति कटारा के जन्म दिवस पर प्रेषित उनकी कविता में परिलक्षित होता है-

कैसे भूलूं उन यादों को हृदय-रक्त का जो आधार,
जीवन के बहुमूल्य क्षणों को जो मेरा रचना संसार
.....

आँखें बोझिल हुई पीड़ से पर छवि देखी जीवन आया
साँस हुई तरोताजा रे,
कौन कहे मैं मृत्यु-शैय्या पर बेबस हो निष्कर्म पड़ा,
अभिव्यक्ति जो हुई तुम्हारी उठकर पथ पर दौड़ पड़ा ....

कवि के जीवन की राहों पर उन्हें विभिन्न प्रकार के लोग मिले जिनमें स्त्री एवं पुरुष दोनों ही थे और जिनसे कवि को प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली, सहयोग मिला और प्रोत्साहन भी। भले ही वह व्यंग्य, उपहास आदि का परिणाम रहा हो। कवि ने अपने काव्य संग्रह 'तरुणाई' में इस बात को स्वीकार किया है-

'आज जब मैं अपने अतीत को पीछे मुड़कर देखने का प्रयास करता हूँ तो एक आत्मिक सन्तुष्टि का अनुभव करता हूँ। मेरा अतीत मेरे जीवन की एक अमूल्य धरोहर है। जीवन की राहों पर मिले साथी, प्रकृति का दर्शन, समस्त वातावरण, घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ, चाहे वे अनुकूल थीं या प्रतिकूल, सभी को मैं अपने जीवन की एक अमूल्य निधि मानता हूँ। जिस प्रकार मुझे अपने द्वारा ही सृजित रचनाओं के पठन से आनन्द की अनुभूति होती है, उसी प्रकार अतीत के दर्शन से अपने भीतर नवसंचार का अनुभव करता हूँ, और यही सब मेरे लेखन का मूलाधार है। मैं पीछे मुड़-मुड़कर देखता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ।' (काव्य संग्रह तरुणाई : अपनी बात से)

कवि की औपन्यासिक कृति 'अभिव्यक्ति' प्रेम की शक्ति एवं सामर्थ्य को दर्शाने वाली हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट निधि है। इस उपन्यास की विस्तृत समीक्षा कर कोटा की डॉ. गीता सक्सेना ने शोधपरक कार्य किया है। गीता जी ने इसकी समीक्षा हेतु शर्मा जी से दूरभाष एवं पत्रों द्वारा अनेक बार सम्पर्क किया, उनसे व्यक्तिश: मिलकर उनका साक्षात्कार लिया और विचार जाने। कवि ने अपने मन के उद्वेलन को और अन्तर में छुपी भावनाओं को तार- तार करके गीता जी के समक्ष प्रस्तुत किया और वह भी एक कविता के रूप में

दिनांक 22-03-2007 को दूरभाष पर गीता जी से अभिव्यक्ति की समीक्षा के सन्दर्भ में विचार-विमर्श करने के उपरान्त मन के उद्वेलनवश इस कविता का सृजन हुआ ।

'गीता जी! यह कविता आपके लिखे पत्र के पृष्ठ संख्या 19, बिन्दु 3 से समानता रखती है। वही भाव, वही उद्‌गार। पर यहाँ पर ये भाव विस्वास के हैं सरला के प्रति।

उद्वेलन

चोंच में दाना लिए पँछी चले आकाश में,
सहचर उड़ें सँतोष भर सुख सब मिले सँसार के ।
नीचे रहा लहला सरोवर खींच मन को ला रहा,
खाता हिलोरें वह युगल हरितावली में जा रहा।
कुछ देर तक दृग बन्द कर रसपान प्रकृति का किया,
इस हाल मदहोशी मिली था चोंच का दाना गिरा।
गिर गये दाने भले पर प्रेम पूरित थे हुए,
संयोगवश दोनों युगल के, उर समाये से वे थे।
भोगकर सुख प्रकृति के पँछी चले आकाश में,
निर्वाह जीवन का करें, विस्मृत हुए दाने गिरे।
गिर गये जो चोंच से दो ओर दोनों धँस गये,
महि ने लिया था अँक में वे ोह से अँकुरित हुए।
एक उनमें फल-तरु और दूसरी कोमल लता,
यही रूप उनको था मिला, जो विधाता ने दिया।
पर नियति तो नियति रही कैसा उन्हें आश्रय मिला,
फल-तरु लिपटी लता पर लता को झंझड़ मिला।
जन्म के वे पूर्व में थे प्रेम के सँसार में,
नियति ने कर दिया पृथक पर मिलन को बेताब थे।
सौ जन्म तक भी तड़पते वे सिसकते बेचैन हों,
मौन से प्रतीकारते प्रतिबद्धता संसर्ग को।
समुदाय में वे थे फँसे ओढ़े विवश हो आवरण,
अभिव्यक्ति वे कैसे करें कैसे करें प्रिय का वरण।

साक्षात् है प्रिय सामने अभिव्यक्ति करना चाह रहा,
प्रतिबद्धता हे क्रूर! मेरा प्रिय व्यथित है हो रहा।
फल-तरु लिपटी लता काँटों सरीखी लग रही,
कँटकों में फँस गई कोमल लता मृतप्राय सी।
एक ही अब राह है संताप को जो कम करे,
खुसफुसाकर मौन सी ही तरु-लता अभिव्यक्ति दें।
पर समझ अब प्रतिपक्ष तू ले प्रेम की अभिव्यक्ति को,
साँस ले नि:श्वास भर अब समझ ले अभिव्यक्ति को
इसकी प्रणेता प्रिय गीता को प्रथम प्रति सस्नेह भेंट

कैलाशचन्द्र शर्मा, शाहजहाँपुर

एक अन्य कविता में प्रेम की शक्ति एवं सामर्थ्य को पहचानकर उसे महत्त्व देते हुए प्रेम-पथ पर अग्रसर दो पक्षों द्वारा एक दूसरे के सान्निध्य में सफलता के शिखर पर पहुँचने की परिकल्पना की गई है -

सम्बन्धों का जाल बुनें आ बेचैनी की आहों से,
दूर खड़ा क्यों आजा प्रियतम जीवन की इन राहों पे।
.....
तूफानों से टकरायेंगे हाथ पकड़ आजा साथी,
राह करें आलोक स्वयं का तुम दीपक मैं बन बाती।
काँटों से यह युक्त कठिन पथ तेरे संग मन को भाता,
मंज़िल ज्यादा दूर नहीं आ हाथ पकड़ जल्दी आजा।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई पृष्ठ 34-35)

प्रेम में ही वह शक्ति एवं सामर्थ्य है जो मानव को कर्म-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। किसी पुरुष को उसकी प्रेमिका से मिली प्रेरणा जहाँ उसे सफलता के शिखर पर पहुँचाने में सक्षम है वहीं प्रेमिका का विछोह पुरुषार्थी को किस प्रकार निष्कर्म बना देता है यह कवि की 'प्रेरणा' कविता से उद्‌घाटित होता है जो उन्होंने अपने जन्मदिन पर 19 जुलाई 2007 को भरतपुर में लिखी थी। संभवत: यह कवि के ढूँढाड़ी गीतों के सृजन का वह काल था जब वे

भरतपुर में अपनी शिष्या ज्योति कटारा से मिली प्रेरणा से प्रेरित हो नित्य कम से कम एक गीत का सृजन करते थे। ऐसा लगता है कि इस स्वर्णिम कालखण्ड़ में किसी कारण से कवि-हृदय को आघात पहुँचा है-

'क्या हुआ मानव मनीषी .... अंत हो।'

कवि द्वारा प्रेम सागर में एक पक्ष द्वारा प्रतिपक्ष की यादों के सहारे पीड़ात्मक आनन्द की कल्पना की गई है -

घायल हुआ बेचैन सा दिन रात फिरता हूँ,
तुम्हारी याद में प्रिय मैं तड़पता रोज सिसका हूँ,
तुम्हारी याद की टीसें दुखी मुझको कर देती है,
सिसकती साँस को भी वो तरोताजा कर देती हैं

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 57)

यहाँ प्रेमी या प्रेमिका की साँसें प्रतिपक्ष के विछोह में सिसक रही हैं। परन्तु अपने प्रिय का स्मरण करने मात्र से साँसों में ताजगी आ जाती है। कवि ने यहाँ पर श्रृंगार के संयोग पक्ष को प्रस्तुत किया है।

एक अन्य कविता में 'विछोह' की पीड़ा की उत्कृष्ट प्रस्तुति करके मन की भावनाओं को उजागर किया गया है-

जान की कीमत ठहर कुछ क्षण यहीं,
अन्यथा दिल रुक गया साँसें गयीं,
जान तुझमें है फँसी आ लौट आ,
दिल बिलखता छोड़कर रुक जा न जा,
आँख की ज्योति गई तो आँख भी,
आह तू क्यों छोड़कर मुझको चली।

यहाँ पर निराशा में आशा की एक किरण की कल्पना की गई है और कवि इसी उम्मीद के सहारे जीवन में आगे बढ़ा चला जा रहा है-

नैन तेरे उठ गये मैं जी गया ,
दूर क्यों अब भी खड़ी आ जा प्रिया।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 30)

रंगमहल सूना पड़ा प्रिय बिन तड़पूं आज,
रैना बीती जाय ज्यों मन में बढ़ी पिपास।
दीपक भी थक सो गया मानो अवसर देय,
मन में उद्वेलन बढ़ा पिय बिन दीपक देख।
ज्यों-ज्यों लौ धीमी पड़े व्याकुल कर तड़पाय,
पिय बिन ऐसे हाल में अब तो रहा न जाय।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 66)

कवि ने श्रृंगार के वियोग पक्ष का गहराई से चित्रण करते हुए जीवन में आशा की एक किरण को अन्तर्मन में संजोये हुए कर्मपथ का चयन किया है और इसमें उसे आशातीत सफलता मिली है-

राह नहीं कोई मिल पाई प्रियतम के घर जाने की,
चक्षु द्वार बिन पहरेदार यही राह शेष प्रिय पाने की।
.....
बन्द पलक में बैठा दिल सर्वस्व समर्पित कर बैठा,
यौवन रस को छककर पीकर शर्माये चँचल नैना।
मर्म हुई अतृप्त क्षुधा से छोड़ रही ना प्रियतम को,
नादानी में दिल दे बैठी प्रियतम ना जाने किसको।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 66)

प्रेमी- प्रेमिका के मिलन की सुखद अनुभूति को कवि ने अपनी कविताओं में सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया है-

घुंघरू छनन छन बोलते वे आ गई,
उनकी झलक से आँख भी चुंधिया गई।
दिल में उतर घुंघरू गये पीड़ित करें,
उस चन्द्रमाँ की चाँदनी विचलित करे।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 62- 63)

प्राकृतिक सौन्दर्य में प्रेमी को अपनी प्रेमिका की प्रतिच्छाया की अनुभूति होने से हृदय में आनन्द का संचार होता है जिसे कवि ने काव्यात्मक बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

बिजली चमकी पायल झनकी, चँदा की एक झलक पाई,
बेहोश पड़े तन में हलचल, साँसों में हरकत सी आयी।
देख चन्द्रमाँ व्याकुल मन कैसी यह मनमोहक माया,
चहुँ ओर हुई रिमझिम रिमझिम धरती का आँचल सरसाया।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 69)

प्रेमी- प्रेमिका ने दृष्टि-सेतु के माध्यम से प्रेम-पथ को पार कर किस प्रकार मिलन का सुख प्राप्त किया है इसे शर्मा जी ने बहुत ही अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है -

भरमायी सी मदमस्त हुई अपने को भी यों भूल गई,
ललचाकर दृष्टि अधीर हुई, यह प्रथम बार अनुभूति हुई।
साँसों को सहला दृष्टि रही उत्तेजित मन के भाव हुए,
सर्वस्व समर्पित करने को दो मन यहाँ पर बेचैन हुए।
.....
आलिंगन कर दोनों की दृष्टि करे जीवन का रसस्वादन
नर-नारी करें खग-वृन्द सभी इस नवसृष्टि को अभिवादन।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 68)

जीवन की राहों पर साथ-साथ चलते-चलते दो पक्षों में प्रेम अँकुरित होना सहज बात है, परन्तु फिर भी उसकी अभिव्यक्ति को प्रतिपक्ष संकोचवश अभिव्यक्त नहीं कर पाता है जिसे कवि ने ईमानदारी से प्रस्तुत किया है-

जब भाव मिले मन भी मिलकर तड़पे रह-रह कुछ कहने को,
संकोच समाया मन में था जो विवश करे चुप रहने को।
तड़पें दोनों के चँचल मन व्याकुल निशि-दिन आहें भरते,
था नज़रों का साक्षात् हुआ कुछ कहने को चलते-चलते।

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 70)

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा की कविताओं में शृंगार के दोनों ही पक्ष अपने चरमोत्कर्ष पर हैं । तरुणाई काव्य संग्रह की कविता-यादें, विछोह, तड़पन, एवं इस संग्रह के प्रकाशन के बाद में लिखी कविता उद्वेलन आदि में शृंगार के वियोग पक्ष के माध्यम से मानव-मन के अंतर में छिपी वेदना को प्रकट करते हुए इस

बात के स्पष्ट संकेत हैं कि जिस प्रकार उमस एवं घुटन से जीव मात्र को पीड़ा होती है उसी प्रकार अपने प्रिय के विछोह में प्रेम के दोनों पक्ष वेदना भोगते हैं।

कवि ने अपने सृजन के कालखण्ड के प्रत्येक सोपान पर प्रेम की शक्ति एवं सामर्थ्य को अनुभूत किया है, उसे सम्मान दिया है। यदि किसी कारणवश उसने कुछ क्षण के लिये भी अपने प्रेम को विस्मृत किया है या खोया है तो उससे जनित पीड़ा उसके लिये असह्य है और इस कारण से एक बारगी तो मनुष्य के जीवन में अवरोध आने, उसके प्रगति पथ पर बाधा प्रकट होने एवं हृदय के छिन्न भिन्न होकर जीवन में विरक्तता सी आ जाने वाली स्थिति को दर्शाया गया है। दो पक्षों का सुखद संयोग, परिस्थितिवश उनका अलगाव, उससे जनित पीड़ा एवं संजीवनी औषधि के रूप में अपने प्रेम को पुन: पाने की कल्पना शर्मा जी की 'तड़पन' कविता में देखी जा सकती है जिसका टाउन हॉल भतपुर में आयोजित एक काव्य गोष्ठी में सिटी केबल से सीघा प्रसारण हुआ था। कवि द्वारा इस कविता के प्रस्तुतीकरण के संयोजक श्री मनमोहन अभिलाषी थे और श्रोताओं की अग्र पंक्ति में शर्मा जी की शिष्या रीना भी उपस्थित थी जो उनके ढूंढाड़ी गीतों के सृजन का मूल थी-

लौट गये अपने तन-मन में पर फिर भी क्यों चैन नहीं,
सब कुछ यहाँ पर वैसा ही है कटती क्यों फिर रैन नहीं।
.....
एक पलक भी विलग रहूँ यों सोच रहूँ पीड़ित प्रियतम,
तुम भी क्या अब रह पाओगे दूर कहीं मुझसे प्रियतम।
सौ-सौ आँसूं मन रोये मेरा तुम को कैसे छोड़ सकूं,
पर बन्धन की दीवारों को मैं भी कैसे तोड़ सकूं।
तुम बिन अब मैं कैसे काटूं पल-पल लगता युग-युग सा,
तुम बिन कैसे प्राण रहें रे बोल-बोल तू बोल सखा

(डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा : तरुणाई , पृष्ठ 70)

❑❑❑

32

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ढूंढाड़ी गीतों में प्रकृति, प्रेम एवं यथार्थ

प्रोफेसर मायारानी टाक

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा को हिन्दी साहित्य एक नाटककार के रूप में जानता आया है, किन्तु शर्मा जी मूलत: कवि भी हैं। उनकी लेखनी से कविता के शब्द उसी समय से अवतरित होने प्रारम्भ हुए जब वे आठवीं कक्षा में अध्ययन कर रहे थे। उनका जन्म स्थान मैड़ है ही ऐसा सुरम्य स्थल जो जीव मात्र के मन में आनन्द का संचार कर देता है और मानव के हृदय में काव्य-भाव अँकुरित कर देने में सक्षम है। सोचो तो बाणगंगा नदी का किनारा, चारों ओर खजूरों के हज़ारों पेड़, बीच-बीच में आम्र-कुँज और जामुनों के विशाल झुण्ड, नदी का कल-कल करता नाद, चहकते हुए पँछी, नाचते हुए मोर और भेड़-बकरियां चराते हुए किशोर-किशोरियों की चुहुल किस व्यक्ति के मन में काव्य-भाव पैदा न कर देंगे।

यही वातावरण मिला डॉ. शर्मा जी को जन्म के समय से उनकी किशोरावस्था तक जिसे उनके कहानी संग्रह 'अबला की मंज़िल' और जीवनी 'कर्मयोगी' में देखा जा सकता है।

वर्ष 1979-80 तक शर्मा जी का अपनी जन्म-स्थली से सतत् सम्पर्क रहा। अपने पिता के प्रति आपकी अपार श्रद्धा रही। आपकी सैकेण्डरी से आगे की शिक्षा जयपुर में हुई। आपके पिताश्री ने अपनी सामर्थ्य से भी अधिक किया आपको उच्च शिक्षा दिलाने हेतु। परन्तु 29 मार्च 1980 को आपके पिता महन्त श्री गणेश दास जी की मृत्यु का आपके मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपको अपने गाँव से विरक्ति सी हो गई और एक लम्बे अन्तराल तक (शायद वर्ष

*संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1983 से 1991 एवं 1994 से 2000 तक) आपका गाँव से सम्पर्क टूटा रहा। वर्ष-दो वर्ष में एकाध रात के लिए या कुछ घण्टों के लिये चले जाया करते थे गाँव। वहाँ जाकर पिताश्री की श्मशान क्यारी को घण्टों निहारा करते और वापस लौट आते।

इस अन्तराल में आपकी साहित्य-साधना निरन्तर चलती रही। कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, जीवनी, खण्ड काव्य, गीत एवं डायरी आदि विभिन्न विधाओं में आपकी लेखनी सक्रिय रही। वर्ष 1991 में आप पंजाब नैशनल बैंक की अपनी नौकरी में पदोन्नत होकर अजीतगढ़ आये। यह स्थान शर्मा जी के जन्म-स्थान ग्राम मैड़ से लगभग चालीस किलोमीटर की दूरी पर है, अत: वर्ष 1991 से 1994 तक की समयावधि में कभी-कभी मंगलवार को आप रात भर के लिए मैड़ चले जाया करते और इस प्रकार आपके मन में अपनी जन्मभूमि की पुरानी स्मृतियां ताज़ी हो उठी। इसी दौरान आपने प्राईवेट परीक्षार्थी के रूप में एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा पास की और अपने जन्म-स्थान से निकट सम्पर्क में रहने के कारण इन दिनों दैनिक जीवन में आप ढूंढाड़ी बोलते थे। इसी दौरान अपने बैंक के खजांची के व्यवहार से पीड़ित होकर ढूंढाड़ी बोली में अपनी प्रथम कविता 'कूवा को मींडको' लिखी। आपका इस स्थान से तबादला हुआ और आप नीम का थाना, श्रीगंगानगर, जयपुर एवं जोधपुर होते हुए भरतपुर पहुँच गए।

संभवत: वर्ष 2005 की बात है। राजस्थानी भाषा को मान्यता देने के विरोध में भरतपुर में जन-आन्दोलन चल रहा था। 'तरुण समाज मित्र मण्ड़ली' की ओर से शर्मा जी के पास सचिव का फोन आया कि इस आन्दोलन को समर्थन देते हुए आप हमारी संस्था की सदस्यता ग्रहण कर लें। शर्मा जी ने इसके लिए स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया परन्तु उन्होंने इस सन्दर्भ में अपनी कविता 'कूवा को मींडको' राजस्थान बृजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री मोहन लाल जी मधुकर को प्रकाशनार्थ दे दी। कविता छपी और देश के अनेक भागों से इसको प्रशंसा मिली जिसे 'नवयुग सन्देश' पत्र के आगामी अंक में प्रकाशित किया गया। अब तक डॉ. शर्मा जी नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और एक साहित्यकार के रूप में हिन्दी जगत में आपकी एक पहचान बन चुकी थी। 'कूवा को मींडको' की सफलता ने आपको ढूंढाड़ी बोली की क्षमता से अवगत कराया जिससे प्रेरित होकर आपने अपनी ही बोली में लिखने का निश्चय किया। अब तो शर्मा जी के मन-मस्तिष्क पर अपनी जन्मभूमि का

ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपका मन ग्राम मैड़-विराट नगर के इर्द गिर्द ही मंडराने लगा और तब से मुख्य रूप से आप ढूंढाड़ी गीत ही लिख रहे हैं।

सर्वप्रथम अपनी कथक नृत्य की शिष्या रीना शर्मा के घर पर आपने अपने पहले गीत 'टर्रै' का सृजन किया। यह गीत डॉ. शर्मा को आज भी प्रिय है और किन्हीं विशेष अवसरों पर ये इसे सुनाकर इस गीत के नींव के प्रस्तर होने के सत्य को उजागर करते हैं।

डॉ. शर्मा जी ने अपने गीतों में भारतीय ग्राम्य जीवन के हर पक्ष को उकेरा है। गीत 'सिरस्यूं को खेत', 'बरस्यो कोनै इन्दर राज', 'हुयो उजाळो च्यारूं मेर..' आदि में प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'सिरस्यूं को खेत' में वृक्ष-लताओं, मच्छर-मक्खी, तितली-भौंरों, जँगल के सम्पूर्ण वातावरण इन सभी को एक साथ समेटते हुए इनका जीव मात्र से सम्बन्ध दर्शाया गया है तथा इस हेतु नवीन उपमानों का किया गया प्रयोग बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है।

प्रकृति को देखकर मन उसे आगोश में ले लेने को बेचैन हो उठता है-

'सिरस्यूं हँसरी खेतां मांयां पीळा पीळा दाँत
करै चमाचम खेत सारो लागै उजळो उजळो
मन मैं आवै भरल्यां ऊंकै जार कसकर बाथ'

प्रकृति को सम्पूर्ण रूप में अँगीकार कर लेने की उत्कण्ठा -

'म्हे तो रह रह खेतां मांयंनै सिरस्यूं कै मूंडै बैठ्या
ज्यो कोनै मिल्यो मधु आज तक वा अण्डे ही छै
पीता जार्‌या भर भर घूंट तो भी कोनै धाप्या'

प्राकृतिक वातावरण में निर्मित मन के आन्तरिक भाव -

'फर फर फर फर पँख पसार्‌यां माछर माळै डोलीं
हरो लहरियो मन लहरावै मुसकाती मन भावै
मेरो मन बळखातो तडपै जद जद मोर्‌या बोलीं'

जीव मात्र प्रकृति का एक अभिन्न अंग है जिसे गीतकार ने सहज रूप से नवीन सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है और प्रकृति द्वारा जीव मात्र को एकाकार

कर लेने की उत्कण्ठा इस गीत में न केवल प्रकृति के लिये ही कही गई है अपितु यह जीव मात्र की जीव मात्र के लिए सांकेतिक अभिव्यक्ति है -

'भौंरां नै म्हेतो देख हँसरी रोम रोम पुळकित छै
सारी की सारी कुळबुळ व्है बाट देखां छां
फर फर फर फर माछरड़ा गुँजाता भौंरा आओ रै'
'वीराना सा जंगळ मैं म्हे सौ जन्मां सैं हँसरी
कसी खुशी म्हांनै आज हुई ज्यो थांनै देख्या
रह रह मन मैं सीळ उठै जद फर फर सर सर निकळीं'

गीत के अन्त में प्रकृति के उभय पक्षों के मिलन में श्रृंगार के संयोग पक्ष को देखा जा सकता है -

'पुरुष : हँसती चोखी लागो सिरस्यूं म्हे अब कोनै जावां
स्त्री : आता कन्नै चोखा थे भी लागो रै माछरड़ा
स्त्री : मत जाज्यो ज्यो हँसती र्‌हां म्हे
पुरुष : कौने जावां छोड़ थांनै
स्त्री : मत जाज्यो ज्यो हँसती र्‌हां म्हे
पुरुष : कौने जावां छोड़ थांनै'

एक अन्य गीत 'हुयो उजाळो च्यारूं मेर' में प्रकृति के सम्पूर्ण वातावरण को मानवीय दैनिक क्रियाकलापों के परिप्रेक्ष्य में इस भाँति उकेरा गया है कि सहज रूप में ही मन-मस्तिष्क पर प्रकृति आच्छादित होकर मन को आनन्द से सराबोर कर देती हैं।

प्रात: काल होने को है चारों ओर उजाला फैलने लगा है। जीव-जन्तु, पशु-पक्षी एवं मानव-मन को शायद इस अवसर की बेताबी से प्रतीक्षा थी अत: सभी के सभी प्रकृति का आनन्द लेते हुए अपने-अपने ढ़ंग से अपनी-अपनी दैनिक क्रियाओं में जुट जाते हैं और प्रकृति की छात्रछाया में सहजता से जीवन का आनन्द भोगते हैं-

हुयो उजाळो च्यारूं मेर कोयल कूकै रै
नीमड्यां का पेड़ां माळै चीं-चीं व्हैरी रै

कवि ने इस गीत में पक्षियों के अनुशासन को भी दर्शाया है-

सुवां की बरात चाली देखो बणी लैण
झपझप करता पाँखड़ा कतरा चोख लागीं
आगै-पाछै जौ बराबर म्हाडा कोनै व्हैर्‌या रै

प्रकृति में संगीत की लयबद्धता को भी दर्शाया गया है -

मोर्‌या बोलीं पीहो-पीहो चोखा लागीं
कोई-कोई तान छेड़ै लाम्बी-लाम्बी सी
एक साथ चींचाहट व्हैरी चिड़ियां की रै

प्रकृति के वैषम्य एवं उसमें उत्पन्न हुए अवरोध को मानव-मन स्वीकार नहीं करता। कवि को आस-पास बिखरी हरितावली लुभाती है, नीम के हरिताच्छादित वृक्ष एवं उन पर पक्षियों एवं जीव-जन्तुओं द्वारा की जा रही अठखेलियां और नाना प्रकार की क्रीड़ाएं मन को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। परन्तु इस हरितावली में भी टीकर (बबूल) के दो वृक्ष एवं एक ठूँठनुमा काँटेदार वृक्ष कवि-हृदय को खटकते हैं। मन को उनकी विद्यमानता स्वीकार्य नहीं जो कवि के कोमल हृदय को दर्शाता है-

सीळी-सीळी भाळ चालै डाळी हालीं
अइयां लागै भीजणी कोई चलावै
टीकर का दो पेड़ नीमां बीच खटकीं रै

प्राकृतिक वातावरण में मानवीय क्रियाएं अधिक लुभावनी प्रतीत होती हैं और कवि-हृदय इन्हें देखने में तल्लीन है। बच्चे कपों में चाय पी रहे हैं, लड़कियां गोबर उठाकर कण्डे थाप रही हैं और बच्चे अपने-अपने बस्ते लेकर स्कूल जा रहे हैं, कोयल कूक रही है, मोर पीहो-पीहो कर रहे हैं और नीम के पेड़ों पर चिड़ियाएं चहचहा रही हैं। इस सम्पूर्ण वातावरण की झलक जीव मात्र को आन्दोलित कर जाती है-

बाड़ा मैं खात्यां कै माई चूलो बाळ्‌यो
टींटकां को ढेर लाग्यो चूला कन्नै
टाबर टोळी कप्पां घाल चाय पीवीं रै
गाय ढांढा अल्डार्‌या छीं देखो बाड़ा मैं
गोबर नै उठाबाटै छोर्‌यां चाली
कोई छाणा थापरी कोई रेवड़ी गेरीं रै

सासूजी को खैबो मान बीनणी ऊठी
दही की खडावणी बिलोवणी गेरी
रई गेर छाछ बिलोवै नेतो घाल्यां रै
लूण्या घी नै लाडुवां नियां उछाळै
ऊंकै पाछै राबडी नै छाछ मैं मिलावै
कचोळा मैं घाल देखो सारा पीवीं रै
लेर बस्तो टाबर चाल्या फडबा तांईं
बळदां नै जूडा मैं देर हळ नै जोड्यां
बाबो, भायो, काको सारा खेतां चाल्या रै
कोयल कूकै रै
मोर्‌या बोलीं रै
नीमड्यां का पेडां माळै चीं-चीं व्हैरी रै
टाबर खेलीं रै
भागता बळदां का देखो घूघरा बाजीं रै
घूघरा बाजीं रै देखो घूघरा बाजीं रै

प्रकृति के चक्र का पहिया घूमते हुए किन्हीं मान्यताओं को भी उजागर करता है। ग्रामीण अँचल में ऐसी मान्यता है कि यदि बारिश के समय धूप निकली रहे तो वह गादड़ा और गादड़ी (सियार और सियारनी) के ब्याह की घटना का परिचायक है। गीतकार ने ऐसे अनोखे प्राकृतिक संयोग को इन्द्रधनुष में बाँधते हुए इस ग्रामीण मान्यता को सहज रूप में उजागर किया है।

स्थाई तावड़ा मैं मेह बरसै पैलाद्‌या काँईं बात
गादड़ा अर गादड़ी को ब्याव व्हैर्‌यो आज
अन्तरा च्यारूं ओर हरियाली ही हरियाली छा री
मोर्‌या बोल र्‌हिया छीं बन मैं सुस्या सर-सर भागीं
चालो गादड़ा अर गादड़ी का ब्याव मैं चालो
चिलको पडर्‌यो देखो धूप सैं इन्द्रधनुष बणगो।

गीतकार ने अपने गीतों में न केवल शृंगार के संयोग पक्ष के माध्यम से प्रकृति को उकेरा है अपितु वियोग रूपी मानवीय पीड़ाओं को भी प्राकृतिक

परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। गीत 'बरस्यो कोनै इन्दरराज' में छपन्या के अकाल का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व संवत् 1956 में हमारे देश में भयंकर अकाल पड़ा था और तब मनुष्य मात्र दाने-दाने को तरस गया था। अनावृष्टि की उस स्थिति में ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो प्रकृति की सुन्दरता को ग्रहण लग गया हो। खेतों में आग बरस रही है। जिन पेड़ों की हरियाली के वशीभूत होकर कभी पक्षीगण वृक्षों की ड़ालियों पर बैठकर चिचियाते थे उनसे वे आज दूर भाग रहे हैं क्योंकि उनके सूखे ठूंठों पर बैठने से उन्हें झुलस जाने का भय है-

खेतां मैं देखो धूळ उड़ै रै लाय बरस री सामैं
ऊभा-ऊभा रूंख सूखगा हरियाली छी ज्यांमैं
कैंयां वां पर पँछी बोलीं झुळस-झुळस भागीं रैं

लू के थपेड़ों एवं प्यास से आहत होकर पशु भी रूदन कर रहे हैं परन्तु उनके रूदन को सुनकर आकाश में अपने भोजन की तलाश में उड़ रहे गिद्ध तो इन्दर भगवान से यही प्रार्थना कर रहे हैं कि आप अभी बरसना मत जिससे पशु-पक्षी, मनुष्य और जीव मात्र निष्प्राण हो जायं तभी तो हमारी उदरपूर्ति हो सकेगी।

ढां ढां करता अल्ड़ार्‌या छीं ढ़ोर और ड़ंगर
आकाश मैं देखर्‌या सब चील-काँवळा बन्दर
काँवळा खैर्‌या मत बरसै पेट भरैगो रै

परन्तु अन्य सभी इन्द्र भगवान का आह्वान कर रहे हैं जिससे उनके प्राणों की रक्षा हो सके-

बाकी का सब जीव-जिन्दावर खैर्‌या इन्दर आजा
बिन पाणी मरजावांगा खावींगा काँवळा
वांको पेट तो भरजावैगो म्हांको कांईं व्हैगो रै

इस गीत में मानवीय सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में त्याग एवं बलिदान का जो वर्णन किया गया है वह अपने आप में अद्वितीय है। विषम परिस्थिति में भी त्याग एवं बलिदान करने की होड़ एक भारतीय परम्परा रही है जिसे आधुनिकता के इस दौर में इस गीत के माध्यम से प्रस्तुत कर गीतकार ने अपनी लेखन क्षमता का परिचय दिया है।

कई दिनों से पानी नहीं बरसा है अत: नहाना-धोना तो दूर पीने के लिये भी पानी उपलब्ध नहीं है। माताएं अपने-अपने बच्चों को लेकर सूखी हुई नदी में जाकर छोटे छोटे गड्ढे खोद रही हैं और सब लोग खड़े होकर रिस-रिसकर आते हुए बूँद-बूँद पानी की प्रतीक्षा करते हुए सोच रहे हैं कि यदि आज प्राण बचे तो अवश्य ही इन्द्र भगवान से बरसने की प्रार्थना करेंगे। जब गड्ढों में थोड़ा सा पानी इकट्ठा हुआ तो माता स्वयं प्यासी रहकर भी एकत्र जल को चरणमृत के रूप में अपने बच्चों को देकर उनकी जान बचाती है। लेकिन जब बच्चे अपनी माँ से कहते हैं कि हे माँ, कई दिनों से भूखे हैं हमें खाने को रोटी दे दो तो अपनी विवशतापूर्ण स्थिति में पीड़ा से छटपटाते हुए माँ की आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ती है। निश्चय ही यह गीत प्रकृति के प्रताड़नात्मक रूप को सटीक रूप में प्रस्तुत करता हो जो दृष्टव्य है-

न्हाबो-धोबो छोड़ दिया सब पीबा का भी सांसा
बाणै मैं खाड़ा खोदो जींसै थोड़ो पाणी मिलज्या
बाट देखर्‌या खाड़ां मैं थोड़ो पाणी आज्या रै
रिस-रिस थोड़ो पाणी आर्‌यो काढ़ आँदळा सूं
आओ टाबर चरणामृत सो थोड़ो-थोड़ो द्‌यूं
ज्यान बचै तो करां प्राथना इन्दर जी भगवान नै
चरणामृत पी टाबर बोल्या भूख लगी छै मा ए
दो दिन सैं कांइँ खायो कोनै खैड्या सूं भी ल्याए
देख टाबरां की पीड़ा नै मा रोरी छै रै

अन्त में इस विकट स्थिति से निपटने हेतु जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, ये सभी मनुष्य का साथ देते हुए इन्दर भगवान का आह्वान करते हैं जिससे प्रसन्न होकर इन्द्र भगवान बरसते हैं और कुछ समय पश्चात् चारों ओर हरियाली ही हरियाली और खुशहाली फैल जाती है-

ढ़ोल-नगाड़ा-पीपा बाज्या जै-जै इन्दरराज
पँछी और ज्यानबर बन का करर्‌या सब मनवार
आओ-आओ इन्दरराजा ज्यान बचाओ जी
गड़ गड़ गड़ गड़ हुई गर्जना काळो व्है आकाश
टप टप टप टप बूँदां पड़री व्हियो हर्ष-उळ्‌ळास

धरती की काया हरषी सब खुशी मनांवीं रै
इन्दर बरसो बरसो रै
बरसो बरसो रै इन्दर बरसो बरसो रै

शर्मा जी एक सहृदय रचनाकार हैं, तभी तो आपके गीतों में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु इन सभी के मानव से आत्मिक सम्बन्ध एवं भावनाओं को अनुभूत किया जा सकता है। इन गीतों को पढ़ने-सुनने से मानव-मन इन पशु-पक्षियों एवं जीव-जन्तुओं में समा कर पेड़ की किसी ड़ाली पर या किसी कच्चे छप्पर के अग्रभाग पर जा बैठता है और तब इन गीतों की विषय वस्तु को देख-सुनकर आनन्द से सराबोर हो जाता है। गीत 'दंताळी' में कुत्ते एवं नीलगाय के ग्रामीण परिवेश एवं किसान से उनके सम्बन्धों का चित्रात्मक वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त नीलगाय एवं कुत्ते के आपसी सम्बन्धों को भी उनकी कर्तव्यपरायणता के सन्दर्भों में सजीव रूप से प्रस्तुत किया गया है। नीलगायें किसान की फसल को मनमाने ढंग से नष्ट करती हैं तब कृषक अपने पालतू पशु 'कुत्ते' को संकेत-भाषा में रोंझ (नीलगाय)को भगाने का आदेश देता है। कुत्ता अपने स्वामी की आज्ञा का किस प्रकार पालन करता है, यह सब इस गीत में चित्रात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है-

रोंझ आयो खेत मैं स्यो स्यो रै काळ्या कुत्ता
पाछो मत ना छोड़जे ऊंकै पाछै पाछै जा
सींव सैं तू बाऽर भगार ऊंनै आजे रै

कुत्ते की कर्तव्यपरायणता के वशीभूत किसान उसे अपना पारिवारिक सदस्य ही मानता है तभी तो जब वह भोजन करने बैठता है तब उसे भी आमन्त्रित करता है-

त्यो त्यो त्यो त्यो कूकरा तू भी रोटी खा लै आ
राबडी कूंडा मैं घाली ऊंनै तू पीऽजाऽ
तेंरै बिन्ना खेत की रूखाली कैंया व्हैरैऽऽ ..

कुत्ता एक संवेदनशील पालतू पशु है। अपने परिचित व्यक्ति विशेष को देखकर वह अपनी पूँछ हिलाकर उसकी अगवानी करता है। गीत 'चोकरदा फिरगा माई कै छोरा-छोरी' में जब पास ही की ढ़ाणी की एक बुढ़िया शहर से लौटकर आती है तो जहाँ आस-पड़ौस के बच्चे उससे खाने-पीने की चीजें लेने के लिये उसे घेरकर खड़े हो जाते हैं वहीं राह का एक कुत्ता अपनी पूँछ हिलाकर

उस बुढ़िया माँ की अगवानी करता है और माँ के लौट आने की प्रसन्नता के मारे उसके पैरों में लोटने लगता है। तब माई भी उसे बच्चा-टोली का एक सदस्य मानते हुए ही खाने के लिये पूवे (गुलगुले) और पूड़ियां देती है।

.... नरसिंहहाळी मैं पोंछी माई तो कूकरो घुस्यो
पूँछ हलातो माई कै देखो चोकरदा फिरगो
च्यूं-च्यूं करतो लोटगो देखो माई कै पगां मैं
माई पूवा और पुड़ी दे ऊंनै आगै चाली रै...

र्वमान बदलते हुए युग में कहीं-कहीं इन्सान अपने धर्म, नैतिकता एवं कर्तव्य से गिर गया है। मनुष्य मनुष्य का आहारी हो गया है और अधिकांश प्राणी छीना-झपटी एवं आपाधापी में निर्लिप्त हो गये हैं।

शर्मा जी ने 'कोनै चालबाद्यां हळां नै' गीत में इस परिवर्तन को इस प्रकार उजागर किया है मानो इस प्रकार के वातावरण में घटित किसी घटना के वे चश्मदीद गवाह हों।

गाँव के किसान परिवार का एक किशोर-युवक अपनी पढ़ाई-लिखाई एवं नौकरी के सिलसिले में लगभग तीस वर्ष तक अपने गाँव से बाहर रहा और वर्ष में एकाध दिन के लिये अपने गाँव आया करता था। इस दौरान उसके हिस्से की ज़मीन का उपयोग उसके भाई-भतीजे ही किया करते थे। तीस वर्ष पश्चात् जब वह अपने गाँव आकर किसानों को अपने हिस्से की जमीन बँटाई पर देना चाहता है तो उसके भाई-भतीजे उसे उसके हिस्से से बेदखल करने का हर संभव प्रयास करते हैं। कभी तो वे उसके किसानों के साथ मारपीट करके उन्हें भगा देते हैं, कभी उसके खेत में काम कर रहे मजदूरों को काम करने से रोक देते हैं। कोई-कोई उसके खेत में चल रहे इंजन को जाकर बलात् बन्द कर देता है। और एक दिन तो वे इतनी नीचता पर उतर आये कि जब खेत का वह मालिक युवक अपने किसान को साथ लेकर शहर के लिये रवाना हुआ तो उसके भाई-भतीजों ने अपने घर की औरतों को साथ लेकर राह में ही उस पर हमला कर दिया। किसी ने उसकी गर्दन पकड़ी, किसी ने हाथ और किसी ने अपने पैरों से जूती निकालकर उसकी पिटाई कर दी। उसके एक भतीजे ने अपनी पत्नी के साथ उसके हाथ पकड़े और अपने पिता को उस युवक की पिटाई करने हेतु उकसाया और उस सीधे-सादे इन्सान पर उसकी बहू ने अपने साथ छेड़ छाड़ करने का झूठा आरोप लगाया।

ऐसे में आस-पास के सभी लोग मूक दर्शक बने तमाशा देखते रहे और कुछ कमजोर वर्ग के लोग उन दुष्टों के डर के मारे केवल चुप रहने को विवश थे। परन्तु उस जंगल के पशु-पक्षी अपने धर्म, ईमान और नैतिकता पर कायम हैं और वे सभी इस दृश्य से आहत होकर यह निर्णय लेते हैं कि इन सीधे-सच्चे व्यक्तियों को इनके दुष्ट परिजन अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर तंग कर रहे हैं अत: हम इनका साथ देंगे। वे किस प्रकार उनका साथ देने की योजना बनाते हैं वह शर्मा जी ने अपने इस गीत में बताया है-

स्थाई कोनै चालबाद्यां हळां नै फत्या सुण लै
तेरा खेत का मालिक नै खीजे टांट फोड़ांगा
टांट फोड़ांगा रै टांट फोड़ांगा
तेरा खेत का मालिक नै खीजे टांट फोड़ांगा

1 हीरां कै फत्यो छै भाई सीधो सादो
वा तो बायो छै ज़मीन एक सीधा जणा की
अइयां सोचै ईंसै टाबरो को पेट भरूंगो + स्थाई

2 ऊंका खेत का मालिक का भाई और भतीजा
म्हाडा अइयां खीं तूनै खेत कोनै बाबाद्यां
भोळा बरसां का चटरस नै फत्यो खोस लियो रै + स्थाई

3 कदे कोई आर ऊंको इंजन डाटै
कोई वां दोनी जणां की माँ-भैण करै
एक अडगो टट्टू जियां देखो हळां कै आगै रै + स्थाई

4 एक बोल्यो कोनै बाबाद्यां रै फत्या खेत
कुचद्दर खड़ो व्हैज्यागो मान जा तू देख
तेरा मालिक सैं हिसाब म्हांनै ब्होत लेणो रै + स्थाई

5 फड़ायो-लिखायो ऊंनै मैं तू सुण लै
ब्याव ऊं रण्डवा को कर्‌यो मैं पीसा दिया
ऊंका खेत की फसल को आधो बाँटो मैं ल्यूंगो रै + स्थाई

6 एक की लुगाई बोली हाथ पकड्यो मेरो
अइयां बोल्यो चाल पैली एकोड़ी नै
तेरा कब्जा मैं हाथां सूं घालूं नोटां की गड्डी रै + स्थाई

7 टट्टू बोल्यो साळो मेरो गैलो अण्डी सैं
चोर लेगा साळाओ थे मेरा नळका
इंजन का हैण्डल नै लेगा भूखां मरो रै + स्थाई

8 पेड़ां माळै ज्यानबर बैठ्या-बैठ्या
बात अइयां करीं देखो झूंठ बोलर्‌या
सारा का सारा कुआ मैं भाँग घुळी रै + स्थाई

9 कागलो खैर्‌यो रै आपां साथ द्यांगा
दोन्यूं का दोन्यूं सीधां नै तंग कर्‌र्‌या
आँख मैं मारूंगो चूँच काणा व्है जावीं रै + स्थाई

10 अइयां बोल्यो गधैडो मैं लात मारूं
टट्टूपणो साळा को आज निकाळूं
स्यांप बोल्यो साळा कै गळा मैं पूँछ घालूं रै + स्थाई

12 गाय बोली लुगाई क्यूं झूँठ बोलै
कांईं तूनै खैयो कोनै मैं छी चर री
ऊदळबाळी राण्ड बळींडै साँप बतावै रै
झूँठ बोलै रै तू बदमाश रै
ईंमैं बदनामी तेरी हुई रै
खूब रही रै खूब रही रै
कोरस - भाई खूब रही रै

महाभारतकालीन स्थान ग्राम मैड़-विराटनगर के आसपास कई छोटी-छोटी ढ़ाणियां एवं बस्तियां हैं जिनमें बड़ की ढ़ाणी, झाड़ोदियों की ढ़ाणी, बाळ की ढ़ाणी, सेवरियों की ढ़ाणी, तेवड़ी, पालड़ी, पणदो, छींड़, भ्याजर, ताळवा, पूराळा, सताणा, गालास आदि प्रमुख हैं। आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व न तो इन ढ़ाणी ढ़पाणियों एवं बस्तियों में सड़कें थीं और न ही आवागमन के आज जैसे साधन। ऐसे में यदि वहाँ पर कोई बीमार पड़ जाता तो क्या होता?

ग्राम मैड़ में महन्त श्री गणेश दास जी महाराज की भजन मण्ड़ली के एक गवैये थे श्री भूरजी वैद्य। सन् 1965 के आसपास ये राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय मैड़ से सेवानिवृत्त हुए, जिनके पास उस समय एक घोड़ी थी। यदि

इन ढ़ाणियों एवं बस्तियों में कोई बीमार पड़ जाया करता तो उसके परिजन इन वैद्यजी को इसकी सूचना देते और तब वैद्यजी अपनी घोड़ी पर सवार होकर तथा समुचित दवा-दारू लेकर चल पड़ते बीमार को देखने।

गीत 'घोड़ी' में एक ऐसे ही अवसर का वर्णन किया गया है। वैद्यजी घोड़ी पर बैठकर श्री सियावरजी के मन्दिर के पास स्थित बड़ की ढ़ाणी (कीरों की ढ़ाणी) में छोटू कीर के बेटे महादेव कीर की बीमार पत्नी को देखने जाते हैं। इस यात्रा में वैद्यजी एवं घोड़ी के मन के भावों का किस सहृदयता से आदान-प्रदान होता है यह इस गीत में बताया गया है जो पशुओं के साथ मानव के हृदयग्राही सम्बन्धों को उजागर करता है-

2. स्त्री पैरां मैं नेवर घडवाद्यो , पीठ नई जीऽण
माथा पै कसीदा काढी झालर जी रंगीन
ग्यारा बरस उमर छै मेरी चालूंगी बिन्नौट जी

3. पु. दो पीपा तूनै घी का द्यांगा स्याळा कै जी मांयनै
नेवर, झालर सै बणवाद्यूं , बात मेरी मान लै
जल्दी चाल बाट देखीं, ढाणी का सै लोग रै

4. स्त्री जातां तो थे बैठगाजी सजधज मेरै माळै
आता बख्तां बोरी लादो ज्यो ढाणी का दीं रै
पगां-पगां थे आवो लाद्यां चोखो कोनै लागै रै

5. पु. नैं ल्याऊं ज्यो यजमानां की बोरी घोडी साथ मैं
बैदाणी घुसबा न देगी घर मैं घोड़ी जाण लै
खैद्यूंगो अबकै वांनै मैं थे ही घर पौंछाओ रै

कौआ एक चालाक पक्षी के रूप में कुख्यात है। हमारे देश में प्रचलित जनश्रुतियों में कौवे को न केवल एक चालाक पक्षी ही बताया गया है अपितु इसे चारों वेदों का ज्ञाता भी माना गया है जिससे हमें यह सन्देश मिलता है कि मनुष्य कितना ही पढ़-लिख जाय परन्तु यदि उसका आचरण सही न हो तो वह उसे विद्वता के स्थान से धराशायी कर निम्नकोटि में ले जा खड़ा कर देता है। हमारे देश के ग्रामीण जनजीवन में कौवे के इन दोनों ही रूपों को सहजता से स्वीकारा गया है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने गीत 'सुपातर भू' में किसी अवसर विशेष पर कौवे के पाण्डित्य की विवेचना की है।

एक अनुशासनप्रिय सास घर ग्रहस्थी का दायित्व ठीक से निभाने हेतु अपनी पुत्रवधू के साथ कड़ा रुख अपनाती है जिससे दुखी होकर बहू कौवे का आह्वान करके उससे कहती है कि हे कौवे, तू उड़कर जा और मेरी माँ से मेरी सास के इस निर्मम व्यवहार की शिकायत कर दे।

कौवा चारों वेदों का ज्ञाता है अत: वह बहू को सलाह देता है कि मैं तो उड़ता भी हूं तो शुभकार्य के लिये ही और जो तुम मुझे ग़लत काम के लिये जाने को कह रही हो इससे तो तुम्हारा अहित ही होगा जो अपशकुन का द्योतक है। अत: हे बहू, तुम अपनी सास का कहना मानो क्योंकि इसी में तुम्हारा हित है और जब किसी का विवाह हो जाता है तो उस स्त्री का पीहर नहीं अपितु ससुराल ही घर माना जाता है। इस बात पर बहू कौवे से कहती है कि हे कौवे, यह भी तो देख कि मैं तो ससुराल को ही अपना घर मानकर दिन-रात कोल्हू के बैल की भाँति काम में जुटी रहती हूँ परन्तु फिर भी मेरी सास मुझे गालियाँ देती है अत: अब तो मेरी बात मान ले और मेरे पीहर जाकर सारी बातें ज्यों की त्यों बता दे। इतने में ही सामने से बहू के भाई को आता हुआ देखकर कौवा उससे कहता है कि हे भद्रे, तुम्हारा भाई आ रहा है और ये बातें तुम उसी से कहना जिससे तुम्हारा मन हल्का हो जायेगा। बहू के भाई को आया देखकर सास उसके भाई की खूब आवभगत करती है तथा अपनी बहू को आदेश देती है कि वह घर के सारे कामकाज छोड़कर अपने भाई से बातचीत करे तथा अपने पीहर की कुशलक्षेम पूछे।

जब बहू का भाई अपनी बहिन की सास से अपनी बहन के कार्य-व्यवहार एवं आचरण की जानकारी चाहता है तो सास अपनी बहू की खूब प्रशंसा करते हुए कहती है कि मेरी बहू तो सुपातर (सुपात्र) है और घर की लक्ष्मी है। बहू अपनी सास के इस व्यवहार से विह्वल होकर मन ही मन अपनी भूल पर पश्चाताप करती है। अब कौवा पुन: बहू से पूछता है कि हे भद्रे, यदि तुम कहो तो मैं अब उड़कर तुम्हारे पीहर चला जाऊं और तुम्हारी माँ से तुम्हारी सास की शिकायत कर दूं। तब बहू कौवे को कहती है कि नहीं भाई मेरी सास तो बहुत अच्छी है और इस बात के लिये मैं तुम्हारा धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ कि तुमने मेरी आँखें खोल दी और यह इसलिए संभव हो सका कि तुम चारों वेदों के ज्ञाता हो। अत: हे कौवे! मैं तुम्हारे ज्ञान के प्रति नतमस्तक हूँ।

डॉ. शर्मा जी ने इस गीत के माध्यम से न केवल एक पक्षी से मानव के सम्बन्ध को दर्शाया है अपितु एक छोटे से काल्पनिक घटनाक्रम के माध्यम से मानव को आदर्श का जो पाठ पढ़ाया है वह अपने आप में अद्वितीय है-

स्थाई टूट्या चाटू सैं मारी सासूजी कुण नै खूं मैं रै
परण्यो थर-थर काँपै माँ सूं अब मैं काँईं करूं बारै

.....

2 अब या तेरो घर छै बाई तेरी सासू ही तेरी माँ रै
मैं तो स्योण सैं उड़ूं छूं तू कुस्योण की खै रै +स्थाई

3 तेरी सासू खै ज्यो मान ऊंमैं तेरो भलो छै रै
बेटी बाप की अब कोनै तेरो सासरो घर रै +स्थाई

4 घर को काम करूं मैं सारो खटती रात भर र्‌हूं छूं
म्हारी नणद सुणावै सोयला मैं कुण नै या सब खूं +स्थाई

6 आयो भाई सामै तेरो बाई राजी व्हैजा
ऊंनै खीज्यो सारी बात मन तेरो हळको व्हैज्या
भाई आर मिल्यो बाथ्यां भर बाई राजी व्हैगी रै

12 बाई बोली ना रै कागला म्हारी सासू चोखी छै
तू लै खीर खा लै कूण्डा मैं तू खूब फड्यो..डो
च्यारूं बेदां को तूनै ज्ञान मेरी आँख्यां खोली रै
म्हारी सासू चोखी रै
सासू चोखी रै
म्हारी सासू चोखी रै

दुधारू पशुओं के साथ मनुष्य के अपने पारिवारिक सदस्यों के समान ही सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। गाय, भैंस, बकरी आदि इस प्रकार के प्रमुख पशु हैं। मनुष्य इन्हें खाने को भोजन देता है और बदले में ये पशु उसे पीने को दूध देते हैं। भेड़, ऊँटनी आदि भी दुधारू पशु ही होते हैं परन्तु इनके दूध का प्रयोग अधिक प्रचलित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र में दूध निकालने का कार्य अधिकतर स्त्रियां ही करती हैं और इन दुधारू पशुओं में से कोई-कोई भैंस या गाय अपनी मालकिन से इतना अधिक स्नेह रखती है कि वह उसके अतिरिक्त अन्य किसी को दूध निकालने ही नहीं देती। ऐसी अवस्था को ग्रामीण बोली में उस गाय या भैंस का 'हथियार' होना कहा जाता है।

गीत 'हथियार' में एक ऐसी ही अवस्था की कल्पना की गई है जहाँ किसी की भैंस केवल उस घर की बहू को ही दूध देती है। एक बार बहू को

किसी पारिवारिक कार्य से कहीं बाहर जाना पड़ गया और वह हथियार भैंस अन्य किसी को दूध नहीं दे रही। तब घर वालों ने एक युक्ति सोची और घर का कोई पुरुष सदस्य उस बहू के कपड़े पहनकर भैंस का दूध निकालने बैठ गया। अब भैंस ने दूध देना तो प्रारम्भ कर दिया परन्तु वह दूध निकालने में प्रयुक्त की जा रही च्यूंटी (उंगलियों एवं अँगूठे की एक मुद्रा विशेष जिससे दुधारू पशु के थन को दबाकर दूध निकाला जाता है।) के स्पर्श के नयेपन को अनुभव करके बीच-बीच में दूध निकालने वाले की ओर संदिग्ध निगाहों से देख भी लेती है।

शर्मा जी ने इस गीत में ग्रामीण जनजीवन में प्रचलित गाय-भैंस के हथियार होने एवं उसके प्रचलित विकल्पों का यथार्थ चित्रण कर न केवल पशुओं के साथ मनुष्य के सम्बन्धों को दर्शाया है अपितु भैंस जैसे निरीह पशु के माध्यम से जीव मात्र की संवेदनशीलता को सटीक रूप में अभिव्यक्त किया है जो अपने आप में विशिष्ट बन गया है-

स्थाई म्हारी भैंस हुई हथियार दूध कैयां काढूं
म्हारी गई बीनणी पीर अब मैं कांईं करूं

1 दूध काढबै टोकणी नै लेर चाल्यो
ज्योंही कन्नै पोंछ्यो ऊंकै भैंस मूंडो फेर्‌यो
फट-फट टांगड़ा फैंकै देखो चकरी सी व्हैगी रै

2 ईंको दूध रोजीना काढै छी मेरी बीनणी
पण ऊंकी माँ बेमार व्हैगी वा उण्डे चलेगी
ऊंका कपड़ां काणी देखै भैंस दूध कोनै दे

जिस प्रकार शर्मा जी ने 'सुपातर भू' में कौवे के धवल पक्ष को उजागर किया है उसी प्रकार एक अन्य गीत 'बेगारण' में इसी चारों वेदों के ज्ञाता की खलनायकी का भी नि:रूपण किया है। एक मज़दूरन का नन्हा बच्चा खेत के किनारे पुरानी साड़ी की बनी झोली में सो रहा है, परन्तु एक दुष्ट कौवा पास में ही आकर काँव-काँव करने लगता है और बच्चा जागकर रोने लगता है। तब बच्चे की बड़ी बहन उस कौवे को गालियाँ देते हुए उससे कहती है कि अरे दुष्ट कौवे तुमने व्यर्थ ही मेरे सोते हुए भाई को जगा दिया-

स्थाई बेगारण चाली खेतां मैं मजूरी करबा
नान्हा टाबर आँगळ्यां अर गोदी मैं लियां

2 पेड़ की छाया मैं जार झूलो बाँध्यो
बोबो देर टाबर नै सुवायो झूला मैं
दीजे झोटा जीजी अब मैं लावणी करूं रै

9 बाई फैंकै काँकरा कागला काणीं
तीर तीर तीर तीर बापकणा तू भाग
बिना बात मैं भाई की मेरी नींद उड़ाई रै
भाग भाग रै
तीर तीर रै
सो जा भाया रै सो जा भाया रै

प्रेम की अभिव्यक्ति

जीव मात्र का जीव मात्र से जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु कभी-कभी दो आत्माएं कई जन्मों तक भी एक दूसरे से मिल नहीं पाती हैं। जब कभी उनका मिलने का संयोग बनता है तो वे एक दूसरे की ओर आकर्षित होती हैं। चाहे वे अपने किसी भी रूप में अवस्थित हों परन्तु उनकी आत्माओं का आकर्षण उन्हें समीप लाने को प्रतिबद्ध रहता है।

फिर चाहे वे आत्माएं किसी भी रूप में एक दूसरे के सम्पर्क में आयें- चाहे दैनिक जीवन के कार्य-कलापों में, चाहे राह में चलते हुए सहराही के रूप में या फिर किन्हीं सामाजिक सम्बन्धों से आबद्ध हो रिश्तों के रूप में। उनका आकर्षण एक दूसरे के प्रति बढ़ता ही जाता है और उसका परिणाम होता है उनका मिलन, चाहे वह अल्प समय के लिए ही क्यों न हो। यदि क्षण भर के लिए भी उनका मिलना हुआ या ऐसा संयोग बनकर भी न मिल सके तो उनकी आत्माएं मिलन हेतु भटकती रहेंगी जन्म-जन्मान्तर के लिए।

यह सत्य डॉ. कैलाशचन्द्रशर्मा के गीत मिलन, सौ जन्मों का मेल, बुद्ध्या बंश्या की दुकान, ल्हैडकी, तैराक, टीटोड़ी, सांझ्यापुर को चोर, काँटो, रंग दै मेरी बाछडी आदि में देखा जा सकता है। शर्मा जी ने अपने इन गीतों में प्रेम की अभिव्यक्ति को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनके प्रेम की यह अभिव्यक्ति उनके गीतों के विभिन्न पात्रों के क्रिया-कलापों में देखने को मिलती है जिनका भावार्थ यहाँ पर दिया जा रहा है-

मिलन

तेज बारिश से बचने के लिए गूलर के पेड़ के नीचे खडी कुछ औरतों ने बारिश हल्की होने पर जब एक राहगीर को आवाज़ दी तो वह तुरन्त उनके पास पहुँच गया और एक स्त्री को भरोटा उंचाने (किसी के साथ मिलकर उसके सिर पर बोझा रखवाना) लगा। जैसे ही भरोटा उस स्त्री के सिर तक पहुँचा तो उन दोनों की नज़रें एक दूसरे से मिली और राहगीर की दृष्टि उस स्त्री के मस्तक से होते हुए आँखों पर जा टिकी और फिर थोड़ी नीचे ढलक गई। तब उस राहगीर को ऐसा महसूस हुआ मानो वह कश्मीर के सुन्दर गोलाकार पहाड़ों के बीच से गुजर रहा है।

अन्य सभी स्त्रियां तो वहाँ से चली गयी परन्तु वे दोनों स्त्री-पुरुष उस भरोटे को धरती पर पटककर ताप में झुलसे एक दूसरे में समा गये। अब उन्हें अपना-अपना पिछला जन्म याद हो आया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सैंकड़ों वर्षों के बाद आज उनका मिलन हुआ है।

भीज गया गाबल्या.. मेह सूं. रै..
चिपक्या शरीर सूं.. म्हा.ड़ा.. का..
अइयां लागै बटको भर्‌यां मस्त व्हिया रै।

चिपक्योड़ा गाबां सैं सुंवांत व्हैरी..
उफणता शरीर नै पाणी चो.खो.
लागै जद ही बीनण्यां ऊभी न्हांवीं रै।

मूंड़ा सै आँख्यां फिसळ होठां पों.छी
फेर वै ढ़ळकगी.. थोड़ी नीचै
अइयां लागै फ्हाडां कशमीर घूम्या रै
धीरै धीरै वांनै याद आवै
पाछला जनम मैं भी.. साथ छा
आज मिल्या सैंकड़ां साल पाछै रै
साल पाछै रै
साल पाछै रै

सौ जन्मों का मेल

इस गीत में सैंकड़ों जन्मों से बिछुड़े एक प्रेमी युगल के मिलन को उनके भावनात्मक धरातल पर उकेरा गया है।

एक युवक सामने से आ रही एक युवती को एकटक निहारते हुए उससे यह विनती कर रहा है कि तुम थोड़ी देर के लिए यहीं खड़ी हो जाओ जिससे मैं तुम्हें जी भरकर देख सकूं और मेरे इस प्रकार के आचरण का तुम बुरा मत मानना क्योंकि मेरे मन में कोई दुर्भाव नहीं है।

स्थाई पु. तेंरै काणी देखूं तो.. मान बुरो मत छोरी ए,

वह युवती भी उसके आकर्षण में बँधी उससे केवल इतना ही कहती है कि तुम सच्ची-सच्ची बात बताओ कि तुम मुझे इस प्रकार क्यों निहार रहे हो।

स्त्री क्यूं तू मूंनै देखै रै.. बात बता तू साँची रै।

इसके प्रत्युत्तर में वह युवक कहता है कि सैंकड़ों वर्षों से मैं अपने मन की बात किसी के समक्ष प्रकट न कर पाया परन्तु तुम्हें देखकर मन कर रहा है कि तुम्हें सब कुछ बता दूं। वह उसे यह भी बताता है कि मुझे जीवन की राहों पर जितनी भी लड़कियां मिली उन सब में मुझे तुम्हारी ही प्रतिच्छाया दिखलायी दी और मैं कुछ-कुछ पलों के लिये उनमें खो सा गया था जिससे लोगों ने मुझे पागल समझकर पीटने का प्रयास किया।

1 पु. सौ बरसां सै पैली की.. बात मन की..
कुण नै खैतो आज तक कोई न मिली..
तूंनै देख अइयां लागै खैद्यूं तूनै रै

3 पु. चालतो रि्हयो छूं मैं.. ज़िन्दगी मैं..
जींनै देख्यो ऊंमै रै तू ही तू दीखी
लोग खीं.. बावळो छै मारो मारो रै..

अब वह युवती उस युवक को अपलक निहारते हुए कहती है कि मेरी आँखों के सामने का अँधेरा हट गया है और अब मैं तुम्हें पहचान गई हूं। परन्तु हमारे मिलन में अभी भी यह कठिनाई है कि हम दोनों ही अलग-अलग जाति में पैदा हुए हैं। इस विषय पर दोनों विचार-विमर्श करके यह निर्णय लेते हैं कि भले ही हम अनेक जन्मों में अलग-अलग जाति में पैदा हुए हों या फिर

आयु में एक दूसरे से छोटे-बड़े भी रहे हों परन्तु ये सब ऊपरी दिखावे की बातें हैं। वास्तविकता तो यह है कि हमारी आत्माओं में एक समान भाव है और वह है प्रेम का। अत: हम दोनों मिलकर संयुक्त रूप से इस विचित्र सँसार को देखेंगे।

स्त्री मैं अब तूनै जाणगी.. तू छै.. मे..रो..
दूर हटगो आँख्यां को.. अँ.धे..रो..
न्यारी-न्यारी जात मैं पण पैदा व्हिया रै..

पु. कदे रि्हयो मैं बड़ो और कदे तू..
न्यारा न्यारा जनमां की या ही कहाणी..
आज पण पिछाणगा.. एक दूजा नै रै..

स्त्री आत्मा मैं भाव छै एक दोन्यां को..
छोटा बड़ा छां.. बस दीखबा का..
आजा दोन्यूं मिल.र सँसार देखां रै..

अब आसमान पर बादल घिर आये हैं जिससे छाया हो गई है। ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगी है और बारिश की फुहारें भी गिरने लगी हैं। इस मनमोहक वातावरण में उन दोनों प्रेमियों की आत्माएं मिलकर सब कुछ भूल गयी। परन्तु इससे सृष्टि का निर्माण हुआ जिससे आनन्दित होकर पँछीगण चहक रहे हैं और मोर पीहो-पीहो करके इस खुशी का सँदेशा चारों दिशाओं में प्रवाहित कर रहे हैं। इस प्रकार चारों ओर खुशहाली ही खुशहाली छा गयी है।

बुद्ध्या बंश्या की दुकान

किसी अवसर विशेष पर एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहने लगा कि मैं तुम्हें नाक में पहनने का काँटा दिलवाऊंगा, जैसा चाहो वैसा ले लेना। प्रेमिका ने काँटा पसंद किया उसके बाद प्रेमी ने उसे नाक में पहनने की लौंग और चूड़ियां दिलवायी। तत्पश्चात् दोनों ने डोलर हींदे (ऊपर से नीचे चलने वाला लोहे या लकड़ी से बना आकाशीय झूला) में बैठकर उस सुन्दर सी हाट का आनन्द लिया। उसके बाद चौहट्टा बाज़ार से दही लेकर घर की ओर रवाना हुए।

परभात्यो बोल्यो दिलाऊं नाक को काँटो
चोखो लागै जिस्यो ले लै गूदड़ी आगी
साईकिल नै ऊभी कर अर गूदड़ी देखीं रै

झाबली नै दिवायो वा चूड़ी अर लौंग
ऊंकै पाछै डोलर हींदा मैं दोन्यूं हींद्या
चौहट्टा बाजार सैं दही ले पाछा जार्‌या रै

प्रेमी अपनी प्रेमिका को साईकिल पर लिये सरपट चला जा रहा है। जब प्रेमिका पीछे मुडकर उसकी ओर देखती है तो उसके नाक के काँटे की चमक से उसके प्रेमी की साईकिल डगमगाने लगती है।

घर आ गया। प्रेमिका अपने प्रेमी से यह कहते हुए अपने घर की ओर रवाना होती है कि तुम अपनी बात के पक्के रहे और मुझे सही समय पर घर पहुँचा दिया। और तुम्हारी दिलवायी हुई ये चूड़ियां, काँटा-लौंग और डोलर हींदे में मिला आनन्द मुझे जीवन भर याद रहेगा।

ल्हैड़की (खजूर का फल)

किशोरवय का एक युवक अपनी प्रेमिका को ल्हैड़की देना चाहता है परन्तु वह लेने में आनाकानी कर रही है। इस पर उसका प्रेमी उससे कहता है कि तुम अपनी चूँदडी (ओढ़नी) का पल्ला बाँट लो (पसार दो) जिससे मैं उसमें ल्हैड़कियां डाल दूं। और तुम डरो मत इससे तुम्हारी चूँदड़ी पर दाग नहीं पड़ेगा।

तब प्रेमिका उससे कहती है कि मेरी चूँदड़ी तो पहले से ही रंगी हुई है और देखो तो इसके बहुत सारी बिंदकियां (बिन्दु) भी हैं अत: इससे डरने की तो कोई बात नहीं। बस केवल इस बात से डरती हूं कि तुम्हें मेरी चूँदड़ी के पल्ले में कोई ल्हैड़की डालते हुए देख लेगा तो दुनियां वाले तरह-तरह की बातें बनायेंगे।

स्थाई चूँदड़ी को पल्हो बाँट ले लै ल्हैड़की
छोरी डरपै कइयां दाग ईंकै पड़ै कोनै
स्त्री चूँदड़ी तो रंग्योड़ी ईंकै भोळी बिंदकी
कांईं दाग पड़ैगो ईंकै या तो पैल्यां सैं रंग्योड़ी
डरपूं बात ईंसै मैं तो दुनियां कांईं खैगी रै

उसकी इस बात पर मनन करने के पश्चात् प्रेमी उसे एक सलाह देता है जिसे मानते हुए वह उसके द्वारा बताये गये स्थान पर जाकर खड़ी हो गई। युवक भी वहाँ पहुँच गया और उस युवती का पल्ला ल्हड़कियों से भर दिया जिसे उसने अपनी छाती से चिपकाते हुए कहा कि तुम मेरे लिए कैसे अच्छे और मीठे-मीठे मेवे (खजूर) लाये हो। और फिर दोनों मिलकर मेवे खाने लगे।

पास ही खजूरों के झुण्ड़ से किसी के आने की सरसराहट सी सुनायी देती है जिसके डर से प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है कि अब तुम यहाँ से तुरन्त चले जाओ। कल हम इसी समय बाजरे के खेत में मिलेंगे। इतने ही में खजूरों के झुण्ड़ में से एक कुत्ता निकला। तब प्रेमिका ने उसे उलाहना दिया कि क्यों रे कुत्ते! तुमने हमें व्यर्थ ही डरा दिया और इसके साथ ही प्रेमी-प्रेमिका दोनों हँसते-हँसते लोटपोट हो गये और बेचारा कुत्ता उनकी इस स्थिति को कुछ भी न समझ पाया बस अचम्भे से उन्हें केवल देखता भर रह गया।

टीटोड़ी

(सरकण्डे से बनाया एक खिलौना जो चर्रच्यूं-चर्रच्यूं करते बजता है)

एक किशोरवय प्रेमी युगल खेत के किनारे-किनारे जा रहा है। लड़का एक खिलौने को बजाता हुआ जा रहा है और अपनी प्रेमिका को बजा-बजाकर दिखाता हुआ कहता है कि देख, मेरी यह टीटोड़ी चर्रच्यूं-चर्रच्यूं करके बज रही है। उससे प्रभावित होकर प्रेमिका उससे पूछती है कि तुम यह खिलौना कहाँ से लेकर आये हो मुझे भी बताओ। और या तो वह जगह बताओ या फिर उस स्थान पर मेरे साथ चलो। परन्तु आज मैं टीटोड़ी लिए बिना अपने घर नहीं जाऊंगी।

युवती की ज़िद के आगे उसके प्रेमी को बात माननी पड़ी और उसने प्रयास करके उसे टीटोड़ी बनाना सिखा दिया। युवती से टीटोड़ी न तो चलायी गई और न ही बजायी गई। अत: उसके मुरझाये मन के वशीभूत हो प्रेमी ने उसे टीटोड़ी चलाना भी सिखाया।

टीटोड़ी बज उठी और लड़की मारे खुशी के उछल पड़ी। उसके मुँह से निकली किलकारी से ऐसा लगा मानो कोयल कूक उठी हो। मोर पीहो-पीहो करने लगे और पँछी भी चहक उठे हैं।

नायिका थारी चर्र च्यूं चर्र च्यूं बोलै रै या टीटोड़ी
नायक म्हारी चरच्यूं चरच्यूं बोलै रै या टी..टोड़ी
.....
छोरी गूंथ र्‌हई फल्ड़ां नै छोरो जिय्यां खैर्‌यो
ऊंचा-नीचा फल्ड़ां निय्यां उड़र्‌यो ऊंको लहर्‌यो
छोरा को मन फल्डां निय्यां उड़तो लहरै रै + स्थाई

बणगी पण कोनै बाजै मूंसै चरचर भी कोनै व्है
चरखी की डंड़ी कैंया चालै या भी तो बता दै
पाछा सूं ल्या हाथ पकड उंका टीटोड़ी चलवावै रै + स्थाई
च्यूं-च्यूं करतां ही उछळी वा बोली रै टीटोड़ी
अइयां लागै कोयल बोली ज्यो मारी किलकारी
मोर्‌या पीहो-पीहो कर्‌या पंछी बोलीं रै

अब वे दोनों अपनी-अपनी टीटोड़ी को बजाते हुए चले जा रहे हैं। लडकी इस सफलता की खुशी को अपने अन्तर में समा नहीं पा रही और सोचती जा रही है कि आज मैं अपनी सभी सहेलियों को बताऊंगी कि मुझे भी टीटोड़ी बनाना आ गया है।

तैराक

प्रेम ही वह शक्ति है जिससे मनुष्य को उसके कर्म-पथ पर चलने हेतु प्रेरणा मिलती है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्रेम-पाश के वशीभूत होकर मनुष्य ऐसे-ऐसे कठिन कार्यों को करने में सफल रहा है जिनकी सफलता आज भी अविश्वसनीय लगती है।

गाँव के पनघट पर पानी खींचते समय एक युवती की पानी खींचने की रस्सी कुएँ में जा गिरती है जिससे वह दु:खी हो जाती है। कुए के पास में ही उस युवती का प्रेमी उसको इस दशा में देखकर कहता है कि तुम चिन्ता क्यों करती हो। मैं ऐसा तैराक हूं जो कुएँ में पड़ी अँगूठी तक को निकालकर ला सकता हूं। और जब बात प्रेम की आन पड़ी है तो तुम्हारी इस चिन्ता से मेरा हृदय भी पीड़ित हो उठा है। भले ही यह कुआँ पाताल-तोड़ (बहुत गहरा व खतरनाक) हो परन्तु मैं इसमें से तुम्हारी नेज निकालकर ही लाऊंगा। इतना कहकर वह अपने कपड़े खोलकर नेज लाने हेतु कुएँ में कूद पड़ा और शीघ्र ही नेज लिये पानी से बाहर आकर उस युवती से कहता है कि सुनयना, तुम अब भी रो क्यों रही हो? तुम्हारे ये आँसू ही तो वह ताकत हैं जिनसे मैं अपनी मंज़िल तक पहुंच सका हूं। अब मैं तुम्हारी जेगड़ (पानी से भरे एवं एक दूसरे के ऊपर रखी हुई दो मटकियां) पानी से पूरी की पूरी भर देता हूं अत: खुश हो जाओ।

क्यूं रोवै तू देख सुनैना,नेज लियां मैं आयो रै
तेरा आँसू बण ताकत मेरी, मंज़िल पार लगाई रै,
लै तेरी जेगड़ भर्‌दयूं मै अब, हँसकर मिटा मलाल रै

फिर वह चुटकी लेते हुए उससे कहता है कि मैं कुए से प्यासा ही बाहर आया हूं अत: अब तो मुझे पानी पिला दो।

पण प्यासो कूवा सूं निकल्यो , ल्या अब पाणी प्याव दै 3

उसकी वह प्रेमिका प्रसन्न होकर कहती है कि हे गुवाळ! (चरवाहा) यह सारी की सारी जेगड़ ही तुम्हारी है अत: जितना चाहो पानी पी लो और जीवन भर पीते ही जाओ।

सांझ्यापुर को चोर

प्रेम चाहे किसी भी रूप में हो सदियों से उसे पवित्र माना जाता रहा है। सँसार में समय-समय पर प्रेम की शक्ति को पहचाना गया है। प्रेम न आयु देखता है, न वर्ग और न ही ऊंच-नीच को मानता है। भले ही आतताइयों ने दो प्रेमियों के मिलन में अनेक बाधाएं खड़ी करने के प्रयास किये हों या इस उपक्रम में कई प्रेमियों की जान भी गयी हो परन्तु वे मरकर भी अमर रहे हैं और इस प्रकार सदैव ही प्रेम की विजय रही है।

गाँव के किसी घर में घुसने का प्रयास कर रहे एक चोर को गाँव वालों ने पकड़कर एक पेड़ से बाँध दिया और उसकी पिटाई करने लगे। जब गाँव के कुछ बुजुर्ग लोगों ने चोर से चोरी का प्रयास किये जाने का कारण पूछा तो उसने सामने के घर की मैड़ी (किसी मकान की छत पर बना छोटा कमरा) की ओर देखा जहाँ कोई अपनी आँखों में आँसू भरे चोर को अपलक देखे जा रही थी। अब दोनों की आँखें चार हुई और टपटप करके आँसुओं की झड़ी लग गयी। चोर ने सामने की ओर देखे देखे ही कहा कि मैंने बहुत तगड़ी (बड़ी) चोरी की है जिसे तुम लोग कभी भी नहीं ढूंढ़ पाओगे क्योंकि वह तो मेरी आँखों के ख़जाने में छुपी हुई है।

चोर मैड़ी मांयं देख्यो सामलै घरां
सामानै ऊभी छी कोई आँख्यां नै भर्‌यां
टपटप दोन्यां की आँख्यां सूं बारिश व्हैरी रै +स्थाई
चोर बोल्यो चोरी करी ब्होत तगड़ी

हेर कोनै सकोगा थे कोई ऊंनै
आँख्यां का खजाना मैं वा मैरै छुपी रै

उसने पुन: सामने के मकान की ओर देखा। उसे लाल-पीली सी एक छाया उस मकान की सीढ़ियों से नीचे उतरती हुई सी प्रतीत हुई। तब उसने ऊपर हाथ करके कहा कि हे भगवान, हमारी भी सुनना। उसकी यह दशा देखकर कुछ बूढे लोगों ने कहा कि भाई यह कोई चोर नहीं है अपितु किसी ग़म में डूबा कोई अर्द्धविक्षिप्त है अत: इसे छोड़ दो।

उस युवक को छोड़ दिया गया। भीड छंट गई। थोडी देर बाद सामने वाले घर का भैरूं नाई जैसे ही ब्याळू (रात का खाना) करने बैठा तो अपनी बेटी झाबली को घर में न पाकर चिन्तित हो गया और सारे घर वाले उसे ढूँढ़ने लगे। जब वे उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कांकड़ (गाँव की सीमा) पर पहुँचे तो सामने एक ऊँट भागता सा दिखायी दिया और रास्ते में चोर व झाबली के कपड़े आदि पड़े हुए मिले जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो चोर झाबली को उसकी मर्जी से लेकर ऊँट पर बैठकर भाग निकला है।

काँटो

ऐसा माना जाता रहा है कि प्रेम की राहों में अक्सर काँटे आया ही करते हैं। परन्तु डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने अपने इस गीत में प्रेम की राह पर आये एक काँटे को दो प्रेमियों के मिलन का सेतु बताते हुए इस काँटे से जनित पीड़ा में एक सुखद अनुभूति की कल्पना की है।

एक लड़का और उसकी प्रेमिका जँगल में अपने-अपने पशुओं को चरा रहे हैं। गाय चराते समय लड़की के पैरों में एक लम्बा सा काँटा चुभ जाता है। तब वह अपने प्रेमी को सहायता के लिए पुकारती है। उसका प्रेमी अपने पशुओं को यों ही चरता हुआ छोड़कर अपनी प्रेमिका का काँटा निकालता है।

स्त्री बन मैं गाय चरातां काँटो लाग्यो दर्द व्हैर्‌यो छै
पग मेरो सुन्न व्हैगो, पैलाद्‌या मूंसै कोनै निकळै
तेरा ढांढां नै तू छोड़ काँटों आर निकाळ रै..... + स्थाई

स्त्री जीभ सैं तू थूंक लगाऽ ऽर क्यूं नै देऽखै
नकचूटी मेंरै बंधी कणकती ऊंनै खोल लै
पग गोदी मैं धरलै दर्रद कैंयां सहूं रै..... + स्थाई

अब लड़की से पैदल नहीं चला जा रहा अत: उसका प्रेमी उसे अपनी पीठ पर लादकर कहता है कि तुम मुझे कसकर पकड़ लो जिससे मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक पहुँचा दूं। गाँव की सीमा प्रारम्भ हो गई। अब लड़की अपने प्रेमी से कहती है कि तुम अब मुझे नीचे उतार दो क्योंकि यदि गाँव वाले हमें इस दशा में देखेंगे तो तरह-तरह की बातें बनायेंगे। और अब मैं अपने घर तक लंगड़ाती-लंगड़ाती स्वयं ही पहुँच जाऊंगी।

उसका प्रेमी उससे कहता है कि अब तो तुम जाओ, परन्तु जब कभी मेरी सहायता की अपेक्षा हो तो बिना किसी संकोच के बता देना। और इस प्रकार खुशी-खुशी दोनों प्रेमी एक दूसरे से विदा लेते हैं।

रंग दै मेरी बाछड़ी (मेरी बछिया को रंग दो)

किसी आलम्बन के सहारे प्रेम की नौका का दर्शन कितनी सुखद स्थिति है। इस गीत में एक ऐसे ही आलम्बन की प्रतिच्छाया में कल्पनाओं को साकार किया गया है।

एक प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है कि मेरी बछिया के सींग रंगने के लिये थोड़ा सा रंग दे दो। इस पर उसका प्रेमी उससे चुहुल करते हुए कहता है कि पहले तुम अपनी चूंदड़ी (ओढ़नी) पर रंग से सने डीबस्ये (मिट्टी के दीये) लगवा लो तब मैं तुम्हें तुम्हारी बछिया के सींग रंगने के लिये रंग दूंगा। और रंग भी ऐसा वैसा नहीं बल्कि तुम्हारी आँखों जैसा नीला रंग तलाश करूंगा और फिर उसमें दीये डुबोकर उससे तुम्हारी चूँदड़ी रंगूंगा। चारों तरफ मोर-पँख की आँखों जैसी आँखें ही आँखें हो जायेंगी और फिर ऐसी झोंपड़ी में मैं तुम्हारे साथ सोऊंगा।

स्थाई : स्त्री - म्हारी केल्ड़ी का सींग रंगबाटै रंग दे दै
पुरुष - डीबस्या पैली लगवालै थारी लूगड़ी कै
पुरुष - लीलो रंग तेरी आँख्या निय्यां को मैं हेरूंगो
डीबस्यां मैं ऊंनै डुबोर चूंदड़ी रंगूंगो
च्यारूं मेर मोरपँख की आँख्यां जा व्हींगी
असी झूंपड़ी मैं सोऊं मेरो मन भरजावैगो

प्रेमिका उसे ऐसा करने की अनुमति दे देती है। अब वह युवक अपनी प्रेमिका के पास में जाकर उससे कहता है कि अब तुम मुझे अपनी आँखों में

देखने दो। उसकी अनुमति से वह उसकी आँखों में खो जाता है। पास में कहीं खुड़खुड़ाहट होने पर वह चैतन्य होता है और अपनी प्रेमिका से कहता है कि नीले रंग से मालसा (मिट्टी से बना कटोरेनुमा पात्र) भर गया है जिससे तुम्हारी पूरी चूँदड़ी रंगी गई और बछिया के सींग भी रंगे गये। ऐसे रंग के खजाने, तुम्हारी इन आँखों को तो मैं अपनी आँखों में सहेजकर रखूंगा।

पुरुष कम पडगो लीलो रंग तेरी आँख्यां कर ओलाडी
भर्‌यो मालसो रंग सैं छोरी रंगदी चूँदड़ सारी
केल्डी अर बाछड़ां नै भी रंग पूरो पडगो
असी तेरी आँख्यां नै मैंऽ आँख्यां मैं म्हेलूं रै

❑❑❑

33

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ढूंढाड़ी गीतों का नृत्य-नाट्य पक्ष

सौ. आशा जोगलेकर

नृत्य जगत् में डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का नाम अपरिचित नहीं है। मुझे त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के कार्यक्रमों के माध्यम से कैलाश जी से जुड़ने का मौका मिला। 4 नवम्बर 1998 को अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई के 67 वें दीक्षान्त समारोह के संयोजक शर्मा जी ही थे जिसमें उन्होंने मुझे भी निमन्त्रण पत्र भेजा था पर मैं समारोह में भाग लेने जयपुर न जा सकी थी क्योंकि मेरी बेटी अर्चना के नृत्य का कार्यक्रम उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में होना तय था। मुझे कैलाश जी त्रिवेणी कला संगम के हर कार्यक्रम की जानकारी देते रहे हैं। कई बार वे मुझसे मिलने मुम्बई आ चुके थे। उनके डी.लिट्. के शोधकार्य के सिलसिले में मैंने आपको बाल गन्धर्व नाटक मण्डली की कलाकार श्रीमती सुरेखा नारायण जोशी, स्व. श्री विजय तेन्डुलकर, श्री सुरेश खरे, पद्मश्री, विजय कदम आदि से मिलवाया था। अब कैलाश जी मेरे लिये अपने बेटों के समान ही हो चले थे। एक बार वे सपरिवार मुम्बई आये थे तब हमारे घर पर ही ठहरे थे। इससे पूर्व मैंने त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की आजीवन सदस्यता ले ली थी। कैलाश जी के परिवार के साथ इस अवसर पर संगीत, नृत्य एवं नाट्य विषय पर गहन चर्चा हुई तथा त्रिवेणी कला संगम समिति की औपचारिक बैठक भी तब हुई थी। तब कैलाश जी ने मुझे बताया कि इन दिनों वे ढूंढाड़ी गीत लिख रहे हैं और उन्हें अपने नाटकों में नृत्य को शामिल करके नये-नये प्रयोग भी कर रहे हैं। कैलाश जी ने स्व. श्री तीरथ राम आजाद, श्री

*वरिष्ठ नृत्यगुरु, अर्चना नृत्यालय, ए 105 विनीत टावर, जुहू-वर्सोवा लिंक रोड, अँधेरी (पश्चिम) मुम्बई-53

राजेन्द्र गंगानी आदि गुरुओं से कत्थक नृत्य सीखा है और अपने ढूंढाड़ी गीतों पर अपनी शिष्याओं को नृत्य सिखाकर उनका कत्थक नृत्य में प्रयोग भी किया है।

मैंने उन्हें और गीत लिखने एवं उनका कत्थक नृत्य और नाटकों में प्रयोग करने की सलाह दी जिसके परिणामस्वरूप त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की ओर से उन्होंने 'त्रिवेणी कैसेट-सी.डी.' जारी की । इसका कम्पोजीशन कैलाश जी का ही था और अपनी शिष्याओं के साथ आपने इसमें गाया भी था। इस कैसेट की प्रति मुझे डाक से मिली। शर्मा जी ने प्रेरक के रूप में कैसेट के रैपर पर मेरा नाम भी दिया था जो उनकी, अपने गुरूओं के प्रति श्रद्धा-भावना को दर्शाता है।

शर्मा जी के गीतों की विषय वस्तु

कैलाश जी ने अपने ढूंढ़ाड़ी गीतों के माध्यम से भरतीय ग्राम्य जीवन की कला-संस्कृति, सामाजिक प्रतिबद्धताओं, मान्यताओं आदि की नवीन सन्दर्भों में व्याख्या की है। अनेक गीतों में वर्तमान युग में हुए परिवर्तनों को भी दर्शाया गया है जो श्रोता, पाठकवर्ग, शोधार्थियों तथा राजस्थान के ग्राम्य जीवन की जानकारी चाहने वाले पर्यटकों एवं सामान्यजन के लिए मार्गदर्शक एवं उपयोगी हैं। इन नवसृजित गीतों में मैड़-विराट अँचल के मैड़, बळेसर, तेवड़ी, सेवरियों की ढ़ाणी, रागलों की ढाणी, बड़ की ढाणी नौरंगपुरा, बीलवाड़ी, सताणा, गालास, अँगारी, झोझूला, ताळवा, बिहाज्यर, पालड़ी, पीठाठी, पणदो, धोला, तालवृक्ष, पावटा, बिलाळी आदि स्थानों के कार्यकलापों को सम्मिलित कर एक नवीनतम पुष्पाहार का सृजन किया गया है।

इन गीतों में ग्राम्य जीवन के लगभग हर पहलू को समाहित किया गया है इन गीतों में सेढ़ माता, पथवारी माता, बालाजी, भोम्याजी, ठाकुरजी, गंगाजी, पितृदेव आदि लोक देवता तथा भूत-भूतणी, प्रेत आदि दुष्टात्माओं को भी समाहित किया गया है। इसके अतिरिक्त इन गीतों में मज़दूर-किसान एवं ग्रामवासियों के सहज क्रिया-कलापों, जात-पाँत, शादी-ब्याह, सामाजिक रूढ़ियों-मान्यताओं एवं प्रथाओं का भी सजीव चित्रण किया गया है। इन गीतों में ग्रामीण क्रिया-कलापों की रीति-प्रक्रिया, उनके माप एवं उनकी कलात्मकता की नवीनता भी देखी जा सकती है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक गीत

में एक पूर्ण कथानक को दर्शाया गया है जिससे जहाँ एक ओर जनसामान्य को इनके श्रवण, पठन एवं दर्शन से आनन्द की प्राप्ति होती है वहीं दूसरी ओर इन गीतों को लिखने की सार्थकता भी सिद्ध होती है। इन गीतों से वर्तमान पीढ़ी को अपने अतीत की धरोहर का पता चलने के साथ ही साथ यह भी जानकारी मिलती है कि हमारे पूर्वजों के संस्कार, ज्ञान, नैतिकता, खान-पान, वेश-भूषा, सामाजिक मान्यताओं के प्रति आस्था इन सबकी वर्तमान परिवर्तित युग में भी कितनी उपयोगिता है।

इन नवसृजित गीतों से वर्तमान पीढ़ी को एक नया जोश मिलता है, अपनी संस्कृति, कला एवं प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजों में छुपी सार्थकता एवं पवित्रता के प्रति मस्तक स्वत: ही श्रद्धा से झुक जाता है। इस अँचल के प्रत्येक नवसृजित गीत में एक घटना या कथानक विशेष की पूर्णता है और वह भी रस, छन्द और आलंकारिक समायोजन के साथ, जिससे श्रोता, दर्शक एवं पाठक को पूरी बात समझ में आती है। ये नवसृजित गीत जहाँ एक ओर पुरानी पीढ़ी को आत्मसन्तोष प्रदान करते हैं वहीं वर्तमान पीढ़ी को मार्गनिर्देशन, उन्हें अपने अतीत की जानकारी एवं भावी प्रगति हेतु ठोस आधार प्रदान करते हैं।

इन गीतों में कथानक की पूर्णता होने के कारण नाटकीय तत्त्व अपने पूर्ण स्वरूप में उपस्थित हैं, अत: नाट्य या नृत्य नाटिकाओं हेतु अधिकांश गीत उपयोगी हैं। इनकी उपयोगिता को पाश्चात्य देशों से आये पर्यटकों एवं हमारे देश के अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लोगों ने भी स्वीकार किया है अत: इन गीतों की कथावस्तु को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से राजस्थान बृजभाषा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष एवं वयोवृद्ध साहित्यकार श्री हीरालाल शर्मा 'सरोज' ने इन गीतों की विषय वस्तु, पृष्ठभूमि, भावार्थ आदि का अंग्रेजीकरण तथा सभी गीतों को रोमन लिपि में रूपान्तरित करने का बीड़ा उठाया है। इन गीतों से न केवल देश के ही अपितु विदेशी व्यक्तियों को भी हमारे देश के ग्राम्य जीवन की सही तस्वीर जानने में मदद मिलेगी।

इस प्रकार यह बात उजागर होती है कि शर्मा जी ने अपने गीतों में जीवन के हर पक्ष को शामिल किया है उनके गीतों में नवरस दिखायी देते हैं। उनके गीत अनेक भावों को अपने में समेटे हुए हैं। एक विशेष ख़ूबी जो इन गीतों में देखने को मिलती है वह यह कि हर गीत एक पूरी की पूरी कथा को

बताता है इसलिए शर्मा जी के अधिकांश गीतों पर नृत्य नाटिकाएं तैयार कर प्रस्तुत की जा सकती हैं। हालांकि अभी तक कैलाश जी ने अपने कई गीतों पर आधारित ढूंढाड़ी नृत्यों को अपने नाटक 'तुक्के का बादशाह', 'आधुनिक यमलोक', 'कार्यवाहक हलवाई', 'लड़ी मैड़ की', 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' आदि में शामिल कर देश के विभिन्न भागों में इनके अनेक सफल प्रस्तुतीकरण किये हैं परन्तु नाट्य जगत् में इन गीतों पर नृत्य नाटिकाएं तैयार कर प्रस्तुत किये जाने की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं और इसके लिये नृत्य गुरुओं को पहल करनी चाहिये।

इन गीतों में चूंकि आँचलिकता है और ताल, लय एवं ध्वनि का अनोखा मेल है इसलिये इन गीतों पर तैयार कराये गये नृत्यों से हमारे ग्रामीण जीवन की परम्पराएं साकार हो सकती हैं जिन्हें देखने से दर्शकों को खूब आनन्द मिलेगा, ऐसा अन्दाजा मैं लगाती हूँ।

राधाकृष्ण के पारम्परिक गीतों एवं भजनों से हमें श्रृंगार एवं प्रेम के दर्शन होते हैं, परन्तु कैलाश जी के इन गीतों में प्रेम एवं सौन्दर्य सच्चे एवं मन को छू लेने वाले रूप में मौजूद है और उन पर तैयार कराये गये नृत्य जरूर मन को भायेंगे।

कैलाश जी के ढूंढाड़ी गीतों की सीमाएं (Limitations)

ढूंढाड़ी जयपुर एवं उसके आस-पास के क्षेत्र में बोली जाने वाली एक बोली विशेष है। मैं स्वयं भी ढूंढाड़ी नहीं जानती परन्तु मैंने इन गीतों की कैसेट सुनी है जिसके सुर, ताल, लय एवं ध्वनि संयोजन सब मन को छू लेने वाले हैं और यह समीक्षा मैंने इन गीतों के अंग्रेजी-हिन्दी में लिखे गये भावार्थ एवं विषय वस्तु के आधार पर लिखी है। शुरू-शुरू में ढूंढाड़ी न जानने वालों के लिये इन गीतों पर आधारित नृत्यों को समझना शायद मुश्किल हो सकता है परन्तु थोड़ा देखने-सुनने के बाद सब लोग आसानी से समझ लेंगे।

संभावनाएं

राजस्थान का फोक जगजाहिर एवं मन को लुभाने वाला है अत: जहाँ लोकनृत्यों की बात आती है वहाँ पर कैलाश जी के गीतों पर आधारित नृत्यों का अपना अलग महत्त्व होगा और उन्हें हर दर्शक मन से स्वीकार करेगा। इन

गीतों पर आधारित नृत्यों एवं नृत्य नाटिकाओं के प्रस्तुतीकरण से पहले यदि सूत्रधार से या अन्य किसी रूप में यदि विषय वस्तु की संक्षेप में जनकारी दी जाय तो शायद दर्शकों को समझने में आसानी रहेगी। लोकनाट्य एवं लोकनृत्यों में अपनी शैली विशेष के कारण ऐसे संकेत देने की परम्परा रही है और कैलाश जी ने भी अपने कई नाटकों में इस शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने नाटक 'लड़ी मैड़ की' में तो अपने तेरह ढूंढाड़ी गीतों पर आधारित नृत्यों को शामिल करके नृत्य-नाट्य के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। प्रारम्भ में यह नाटक हिन्दी में चलता है जिसकी शुरूआत लन्दन शहर से होती है। बाद में नाटक के तीन प्रमुख पात्र हिन्दुस्तान में प्रवेश करते हैं और धीरे- धीरे किस तरह वे जयपुर जिले के छोटे से गाँव मैड़ में पहुँचकर शुद्ध ढूंढाड़ी बोलने लगते हैं, पता ही नहीं चलता और ढूंढाड़ी नृत्यों के माध्यम से दर्शक ग्रामीण जन जीवन में इतने खो जाते हैं कि अब उन्हें ढूंढाड़ी बोली भी अपनी लगने लगती है।

❑❑❑

34

कर्मयोगी : कर्म का दर्पण

डॉ. शलेन्द्र स्वामी 'शैल'

भारत आध्यात्मिक देश है, जहाँ अनेक साधु-सन्तों ने जन्म लेकर उज्ज्वल सांस्कृतिक धारा को प्रवाहमान रखा है- जिससे निमग्न होकर आर्त-मानव-हृदय ने सुख-शान्ति की छाया को प्राप्त किया है। सन्तों के मुखश्री से नि:सृत उपदेशामृत की पावन ज्ञान-धारा मनोमालिन्य का निवारण कर अन्त:करण को विशुद्ध बनाती है। सन्तों के जीवन चरित पर आधारित पुस्तक आज के भौतिकवाद की अन्धी दौड़ में दिग्भ्रमित मनुष्य को उचित राह दिखा सकती है। प्रात: स्मरणीय महन्त श्री गणेश दास महाराज के पावन जीवन चरित पर आधारित श्रेष्ठ पुस्तक है 'कर्मयोगी' ।

विद्वान लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की सशक्त लेखनी महन्त श्री गणेश दास महाराज के उज्ज्वल व्यक्तित्व और कृतित्व को उद्घाटित करती है। पुस्तक का आरम्भ महन्त श्री गणेश दास महाराज के जन्म की घटना से होता है। आज से लगभग नब्बे वर्ष पूर्व विराटनगर (जिला जयपुर) नामक ऐतिहासिक स्थान पर स्वाभिमानी धर्मपरायण भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण श्री मंगलदास जी के यहां पुत्र गणेश दास का जन्म हुआ। पुत्र जन्मोत्सव पर खुशियां मनाना स्वाभाविक ही था। बालक गणेश ने प्रारम्भिक अध्ययन में ही कुशाग्र बुद्धि का परिचय दे दिया था। शारीरिक रूप से बलिष्ठ गणेश बचपन से ही भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख हो गये थे।

आरम्भिक दिक्कतों के पश्चात् बालक गणेश को वैष्णव सम्प्रदाय के महन्त तथा श्री सियावरजी मन्दिर, मैड़ (जयपुर) के पुजारी स्वामी रामदास महाराज का शिष्य बनाया गया। बालक गणेश दास गुरु-सेवा तथा भगवद् सेवा में पूर्ण

*महामन्त्री, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, राजस्थान
जोधपुर इकाई, 'मातुश्री' चाँदपोल चौका, न्यू चाँदपोल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

समर्पित हो गये। ग्यारह वर्ष की अवस्था में शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् गणेश दास ने कठोर तपस्या करके तन्त्र-मन्त्र की सिद्धियों को भी परोपकारार्थ प्राप्त किया। गुरू रामदास महाराज के ब्रह्मलीन हो जाने के पश्चात् श्री गणेश दास श्री सियावरजी के मन्दिर के महन्त बने। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए कठोर तपस्या एवं समर्पित ईश-सेवा करके श्री गणेश दास ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। सद्गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए महन्त जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मन्दिर की सेवा-पूजा में समर्पित कर दिया। स्वयं अपने हाथों से भोजन बनाकर भगवान को भोग लगाते थे। ईश्वर की कृपा से महन्त गणेश दास महाराज ने असंख्य दुखी प्राणियों के कष्टों को दूर किया तथा जनता जनार्दन के हृदय में प्रतिष्ठित हुए। शनिवार एवं मंगलवार के दिन मन्दिर में सत्संग होता था। महन्त जी भूत-प्रेत से पीड़ित व्यक्तियों को भी राहत प्रदान करते थे। इस समस्या से पीड़ित व्यक्ति का इलाज आधुनिक आयुर्विज्ञान के पास भी नहीं है। तन्त्र-मन्त्र से पीड़ित व्यक्ति और भूत-प्रेत की आधि-व्याधि से पीड़ित व्यक्ति जब कष्टों से राहत पाते थे तो वे हृदय के अन्त: स्थल से महन्त श्री गणेश दास महाराज के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते थे। वास्तव में महन्त श्री गणेश दास महाराज सच्चे कर्मयोगी थे।

इस प्रकार 'कर्मयोगी' पुस्तक महन्त गणेश दास महाराज की यथार्थपरक जीवनी है। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की लेखनी कल्पना लोक में विचरण नहीं करती है, बल्कि जीवन के यथार्थ धरातल पर अग्रगामी होती हुई जीवन की सच्चाई को अभिव्यक्त करती है। लेखनी मिट्टी से जुड़कर स्वर्ग-दूत के अनुभवों को व्यक्त करती है, हमें आनन्दमय मानवता से परिपूर्ण जीवन जीने का सन्देश देती है।

वस्तुत: 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' तथा 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' की भावना सन्तों के 'ढ़ाई आखर के प्रेम के' में निहित है। सन्तों का प्रेम-प्रसाद पाकर मानव शून्य-हृदय में सरसता का संचार पाता है। सन्तों का जीवन एकांगी नहीं होता। सन्त परोपकार के लिए ही जीते हैं। वे हृदय में प्रेम की ज्योति जगाकर हमें उन्नति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। महन्त गणेश दास महाराज की वाणी भी हमें उद्बोधित कर लक्ष्य की ओर चलने को प्रेरित करती है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि बैंक में प्रबन्धक के पद पर रहते हुए व्यस्त समय में भी डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा साहित्य-संगीत साधना हेतु रत रहते

हैं। जिस प्रकार सूर्यनगरी जोधपुर के निवासी पं. श्रीराम दवे ने बैंक-प्रबन्धक रहते हुए भी संस्कृत साहित्य की अमिट साधना की वैसे ही डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य की अथक साधना कर रहे हैं। डॉ. शर्मा का बहुआयामी व्यक्तित्व साहित्य साधकों को रोमांचित एवं चमत्कृत करता है। डॉ. शर्मा की कहानी-विधा, काव्य-विधा, नाटक-विधा, उपन्यास-विधा तथा जीवनी-विधा पर गहरी पकड़ रही है तथा उनकी प्रखर लेखनी हिन्दी साहित्य की इन विधाओं पर गतिशील रही है। उनकी लेखनी का विस्तृत फलक पाठकों एवं सहृदयों को प्रमुदित एवं आनन्दित करता है। भक्ति, श्रृंगार एवं नीति की त्रिवेणी में निमज्जित उनकी लेखनी कला, साहित्य एवं संगीत के संगम को उद्घाटित करती है। फलस्वरूप त्रिवेणी कला संगम, जयपुर के मानद सचिव के पद पर सुशोभित एवं सुवासित और सुभाषित करना डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के ही विराट व्यक्तित्व का परिचायक है।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा ने 'कर्मयोगी' पुस्तक में सारगर्भित रूप में कुल 88 पृष्ठों में महन्त गणेश दास महाराज की जीवनी प्रस्तुत की है। भाषा सरल एवं प्रवाहमान है। विरक्त, स्त्रोत, आमन्त्रण, परिलक्षित जैसे संस्कृत शब्द, काफ़िर, क़जा, लाइलाज़ जैसे उर्दू-फारसी शब्द, अफ़सर, स्टेट, साहब जैसे अंग्रेजी शब्द तथा मुण्डी, धूणी, टिक्कड़, टनटनी जैसे ग्राम्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी पुस्तक में हुआ है। लेखक की शैली गतिशील है। शैली में विद्वता का अभिमान नहीं है, बल्कि लोकमानस की सरलता, तरलता एवं सहृदयता विद्यमान है।

पुस्तक को पूज्य दीदी स्व. गीता शर्मा की चिर स्मृति में सादर समर्पित करके लेखक ने दिवंगत पुण्यात्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। यह लेखक की उदारता, नम्रता एवं सहजता का परिचायक है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि विद्वान लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'कर्मयोगी' परम् श्रद्धेय महन्त गणेश दास महाराज की उज्ज्वल एवं प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करती है। सरस एवं सरल भाषा-शैली में महन्त जी के उदात्त व्यक्तित्व को यथार्थपरक घटनाओं के माध्यम से उद्घाटित किया गया है। लेखक डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा की यह पावन कृति स्तुत्य है, वन्दनीय है और अभिनन्दनीय है।

❑❑❑

35

संस्मरण

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

अगस्त का आखिरी सप्ताह। अभी-अभी एक ऐसी घटना हुई जिसने आत्मा को झकझोर दिया।

ढूंढाड़ी गीतों का लेखन चल रहा था। भरतपुर की ज्योति कटारा का आज से लगभग 2 वर्ष पूर्व- संभवत: दिसम्बर 2004 में मेरी नाटक की विद्यार्थी विनीता अग्रवाल ने परिचय कराया था। परिचय भी यों कि नाटक 'आधुनिक यमलोक' को रवीन्द्र मंच जयपुर पर प्रस्तुत किया जाना था। चूंकि मैं भरतपुर शहर में कार्यरत था अत: यहीं की प्रतिभाओं को जुटाकर एवं नाटक का प्रारम्भिक प्रशिक्षण देकर एक कलाकार के रूप में उन्हें तैयार करना था। भरतपुर के लड़कों को नाटक की टीम में लेने के विषय मैं सोच भी नहीं सकता था क्योंकि यहाँ के अधिकांश लड़कों में कोई न कोई व्यसन था, और व्यसन भी ऐसे-ऐसे जिनसे मुझे सख्त घृणा थी। गुटखा खाना यहाँ आम बात है। जब घरों की बहुएं तक गुटखा एवं जयंती की पुड़िया खाने को गौरव समझें तो फिर लड़कों का इन चीजों के सेवन करने, बीड़ी-सिगरेट पीने या कभी-कभी दारू पीने को कौनसी बुरी बात माना जाय। राम राम राम राम। ख़ैर, सोचा ये कि लड़कियों को ही कलाकार के रूप में तैयार किया जाय। कम से कम उनमें ये व्यसन तो न होंगे। इसी क्रम में 'आधुनिक यमलोक' में सितारा देवी के मुख्य पात्र हेतु विनीता ने मुझसे कहा था -

'सर एक लड़की है तो, परन्तु उसके चेहरे पर मुँहासे हैं, आप ही देख लीजिएगा कि उस रोल के लिए वह उपयुक्त रहेगी या नहीं।'

*त्रिवेणी कला संगम, बी 177 नित्यानन्द नगर, जयपुर-302021

और फिर वह दूसरे ही दिन एक लड़की को मेरे कमरे पर ले आयी थी जिसका नाम उसने ज्योति ने बताया था।

ज्योति की लम्बाई ठीक थी परन्तु चेहरा मोहरा ठेठ देहाती सा था और चेहरे के कील मुँहासों से वह किसी भी प्रकार से सितारा देवी के करेक्टर के लिए उपयुक्त नहीं लग रही थी। और तिस पर रिज़र्व नेचर की भी थी। लगता था मानो उसे कभी हँसी तो आती ही न होगी। किसी भी आदमी को उसे पहली बार देखने पर उसके अभिमानी होने का भ्रम आसानी से हो सकता था।

चूँकि 'आधुनिक यमलोक' नाटक एक हास्य नाटक है और वर्ष 1997 से लेकर 2004 तक देश के विभिन्न मंचों पर इसके अनेक सफल शो हो चुके थे। मैंने संभवत: हर शो में ऐसे नये कलाकारों को प्राथमिकता दी थी जिन्हें अपने जीवन में पहले थियेटर की जानकारी न हो। मैं त्रिवेणी कला संगम संस्था के लिए काम करता रहा हूँ, और संस्था केवल उन नवीन प्रतिभाओं को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करती है जिनमें प्रतिभा हो, आगे बढ़ने की इच्छा हो परन्तु जिन्हें कभी ऐसा अवसर न मिला हो। यदि कोई मुझसे आकर कहता कि मैंने अमुक-अमुक नाटक में या अमुक - अमुक जाने माने निर्देशक के साथ पहले कभी काम किया है तो मेरे लिए यह उसकी अयोग्यता होती, क्योंकि मैंने हमेशा उन्हीं प्रतिभाओं को तराशने, आगे बढ़ाने का कार्य किया है जो सर्वथा नवीन हों।

ख़ैर, हास्य नाटक हेतु तस्करों की एजेन्ट- वाचाल और चापलूस लड़की की भूमिका और वह भी एक ऊबड़- खाबड़ नाक-नक्स वाली देहातन सी लगने वाली लड़की, जिसके चेहरे पर कील मुँहासे हों उससे कराया जाय। मेरे मन में एक बार ये भाव आये कि मैं इसे लेकर इस शो में असफल तो नहीं हो जाऊंगा क्योंकि मेरे जयपुर के वरिष्ठ रंगकर्मी साथी हर बार यही आशा रखते थे कि मैं इस बार फिर किसी नये कलाकार को प्रस्तुत करते हुए हर वर्ष की भाँति इस बार भी सफलता प्राप्त कर लूंगा। मेरे थियेटर के साथी दिलीप भट्ट, शहजोर अली, कुमार संतोष, नीरज कडेला, हेमू चौधरी आदि समीक्षा भाव से मेरे नाटकों को देखते और उस समय मैं फूला न समाता जब शो खत्म होने के बाद वे मेरी टीम के कलाकारों की पीठ थपथपाते।

ख़ैर! मरता क्या न करता। विवश होकर ज्योति को ही सितारा देवी के रूप में लिया गया। और भी उम्मीदवारों के नाम आये थे इस करेक्टर के

लिये। डॉ. मुकेश वशिष्ठ ने पहले अपनी पत्नी डॉ. संगीता वशिष्ठ का नाम सुझाया। लाख प्रयास करने पर भी जब वे न तो सितारा देवी और न ही मूमलदेवी के डायलॉग ठीक से बोल पायी तो मुकेश जी ने अपनी बेटी का नाम सुझाया जो तब शायद सातवीं या आठवीं में पढ़ती थी। मैंने जब उसके छोटे कद की बात कही तो उन्होंने ऊँची हील की सैंडिल पहनाने की युक्ति सुझायी जो मुझे ठीक न लगी। विनीता के साथ सदा ही आवाज की कठिनाई रही अत: छींका टूटा ज्योति के भाग्य का और रिहर्सल शुरू हुई।

मेरे डी.लिट् के शोध प्रबंध का विषय 'हिन्दी-मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य' था और मैंने अपने इस नाटक के साथ रंगमंच सम्बन्धी कई नये प्रयोग किये थे जिन्हें मैं अपने शोध प्रबन्ध में लेना चाहता था। यहाँ पर मेरे सामने कलाकारों की जो प्रॉब्लम थी उसमें भी मुझे प्रयोग करने की युक्ति सूझी। यहाँ पर यमराज की मुख्य भूमिका के लिए सुधांशु कश्यप उपलब्ध नहीं थी। वर्ष 2003 में उसने रवीन्द्र मंच, जयपुर में प्रस्तुत किये गये इस नाटक में यह भूमिका बखूबी निभाई थी, परन्तु इस बार वह बी.पीएड़ की पढ़ाई के लिए उदयपुर चली गई थी ।

खूब सोचने पर यह तरीकीब सूझी कि जोधपुर के श्री मेघराज जी रामावत को इस बार यमराज की भूमिका में उतारा जाय। आप फलौदी के निवासी हैं और पुलिस सेवा में डिप्टी एस.पी. के पद से 8-9 वर्ष पहले रिटायर हो चुके हैं । मैंने अपने जोधपुर प्रवास के दौरान ऐसी ही विवशता में उन्हें 'आधुनिक यमलोक' में यमराज की भूमिका देकर नाटक का मंचन किया था। अत: सोचा कि वे जोधपुर में ही डायलॉग याद करते रहेंगे और शो से एक दिन पहले जयपुर आ जायेंगे। उनकी तैयारी मैं भरतपुर से जयपुर पहुँचकर देख लूंगा। रही बात टीम से परिचय और एक रिहर्सल करने की, वो शो वाले दिन रवीन्द्र मंच पर कर ली जायेगी। त्रिवेणी कला संगम द्वारा आयोजित इस संगीत, नृत्य एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविर में आधुनिक यमलोक के अलावा तुक्के का बादशाह, जैसे को तैसा, मन चंगा तो कठौती में गंगा , मिठ्ठन हलवाई आदि नाटक भी तैयार कराये जाने थे । इनमें कुछ पात्र वे बच्चे लिये जाने थे जो भरतपुर के थे और कुछ बच्चे इटामडा- भुसावर के थे (इनमें लड़कियां अधिक थीं)। निष्कर्ष यह कि इन सभी नाटकों में भरतपुर, जोधपुर एवं इटामडा के कलाकारों को संयुक्त रूप से मिलकर काम करना था। रिहर्सल अलग-अलग जगह। निर्देशक

के रूप में मैं अकेला। भरतपुर में बैंक की नौकरी और सभी कलाकारों का परिचय केवल शो के दिन 28 दिसम्बर को जयपुर में होना था। खैर, मैं स्वयं बीच - बीच में इटामडा गया। मेघराज जी से सतत् रूप से दूरभाष पर सम्पर्क रखा और उन्हें नाटक के जोधपुर में हुए शो की पुरानी सीडी देखने को कहा। भरतपुर में ज्योति एवं उपकारी के रूप में नये लड़के निखिल जैन को लेकर रिहर्सल प्रारम्भ की। भरतपुर में मेरे समक्ष यह कठिनाई रही कि यहाँ के जो बच्चे पहली बार रंगमंच की ए बी सी डी सीख रहे थे वे मुझे ही बीच-बीच में बेतुके निर्देश देने से बाज़ नहीं आते थे।

'आधुनिक यमलोक' नाटक का प्रारम्भ नट-नटी से करना था । पहले चन्द्रेश ने नटी का अभिनय करने की जिद की। भारी -भरकम शरीर था उसका पर प्रयास सराहनीय था। मैंने सोचा कि ज्योति को सितारा देवी की भूमिका दे देंगे और चन्द्रेश नटी का कर लेगी। परन्तु सूत्रधार के साथ नटी को नृत्य भी करना था जिसमें चन्द्रेश का दम भर आता था। मैंने उसे समझाया कि वह सितारा देवी का रोल कर ले, तब ज्योति को नटी का रोल दे दिया जायेगा। परन्तु चन्द्रेश इस बात पर अड़ी थी कि यदि उसे नटी का रोल मिला तो ही नाटक में काम करेगी और वह रूठकर बिना बताये शो से 2 दिन पूर्व अपने गाँव चली गई। अब दोनों रोल ज्योति को ही करने थे। वह मन लगाकर सीख रही थी परन्तु कभी-कभी मुझे निर्देश देने लगती थी-'सर ऐसा नहीं ऐसा होना चाहिए, ऐसे होना चाहिए, आदि- आदि। जब मैं उसे डांटता तो वह चुप हो जाती जिससे मुझे लगा कि यहाँ के बच्चों में कुछ करने की योग्यता है क्योंकि पहल करने की क्षमता जो है उनमें ।

मैंने इटामड़ा की माधुरी, अलका, पद्मिनी आदि को ख़ूब मिन्नत की कि वे सितारा देवी का रोल कर लें परन्तु वे तैयार न हुईं और अपनी पढ़ाई में हर्ज होने का हवाला दिया। तब मुझे विवश होकर ज्योति को लेना पड़ा था। पूर्व नियोजित कार्यक्रमानुसार मैं 27 दिस. 2006 की शाम को ज्योति एवं उसकी माँ को लेकर भरतपुर से इटामड़ा की ओर रवाना हुआ। स्वामी नहर तक पहुँचते-पहुँचते अँधेरा होने लगा था। हम बाजरे के खेतों के बीच बनी पगडंड़ी पर चले जा रहे थे। आधे घंटे में हम बड़ा नगला पहुँच गये। कमला बहन जी ने खीर- पूड़ी आदि बना ली थी। भरपेट भोजन किया और फिर नाटक की रिहर्सल करने लगे। आधुनिक यमलोक में नट-नटी के दृश्य की रिहर्सल तबले पर करनी

थी। इटामडा की मेरी अधिकांश शिष्याएं तबले पर तीन ताल, कहरवा आदि बजा लेती थीं। जब ज्योति को उन्होंने नटी के रूप में अच्छा करते देखा तो मुझे लगा कि उनमें ईर्ष्या-भाव जागृत हो गया और माधुरी मुझसे कहने लगी- 'सर इसके डांस के स्टैप ग़लत हैं।'

इटामड़ा की लड़कियों ने मुझसे कत्थक नृत्य सीखा था अत: उनका ज्योति के लिए कहना ग़लत तो न था पर चूंकि इसे भरतपुर में नटी का रोल तैयार करा दिया गया था अत: अब तो उसे केवल हौसला दिया जाना ही मैंने उचित समझा।

जब माधुरी ने मुझे कहा कि सर सितारा देवी का रोल ज्योति नहीं मैं करूंगी तो मैंने उसे डांटा कि जब इसने तैयारी की है तो यही करेगी और जब तुमने पहले मना कर दिया तो अब तुम्हारा ऐसा कहना उचित नहीं है।

मुझे इटामड़ा की लड़कियों के इस नवीन आगन्तुक कलाकार के साथ किये गये असहयोग से पीड़ा हुई। हम जयपुर पहुँचे और रवीन्द्र मंच पर तीन स्थानों के कलाकारों का आपस में परिचय हुआ। एक संयुक्त रिहर्सल कराई गई। इटामड़ा की लड़कियों ने न तो ज्योति को ज़रूरत पड़ने पर कोई कॉस्ट्यूम दी और न ही उसकी ड्रेसअप करने में मदद की । उनका पूरा प्रयास रहा कि उसकी भूमिका असफल रहे। ज्योति की माँ ने भी उसकी कोई मदद नहीं की और अपने मिलने वालों के साथ जाकर दर्शकों में बैठ गई । मैं निर्देशन के साथ नाटक में नट एवं किस्मती की भूमिका भी निभा रहा था । मैंने ज्योति को हौसला दिया, जहाँ-जहाँ तक कर सकता था उसकी ड्रेसअप होने में मदद की और नाटक का शो पूरी तरह से सफल रहा। ऐसी विषम परिस्थिति में सफलता मिलना मेरे लिए किसी बड़ी उपलब्धि से कम न था।

शो खत्म कर रवीन्द्र मंच से बाहर आते-आते रात्रि के 9.30 बज गये थे। त्रिवेणी कला संगम की अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष सभी सामान समेटे पैकअप कर चुके थे। सहसा भरतपुर से लायी गई जीप में बैठे इटामड़ा व भरतपुर के कलाकारों में कुछ कहासुनी हो गई। डॉ. मुकेश वशिष्ठ ने भरतपुर से जीप की थी जिसमें भरतपुर एवं इटामड़ा के कलाकारों एवं एक-एक अभिभावक को ही आना था। शुभारम्भ ही ग़लत हुआ। मुकेश जी अपनी पत्नी व बेटी को भी ले आये थे और इटामड़ा में माधुरी की माँ ने अपनी बहिन को भी ठूंस

लिया, अत: आते समय खासी परेशानी हुई। अब झंझट यह हुआ कि इटामड़ा के बच्चों की मौसी कह रही थी कि जीप मुझे मेरे घर छोड़कर आये , उधर ज्योति के कोई मुँह बोले मामा ड्राईवर को कह रहे थे कि ज्योति व इसकी माँ को हमारे घर छोड़कर आओ फिर भरतपुर के लिए रवाना होना। इधर कंचन, प्रीति आदि छोटी बच्चियां सुबह से रात तक व्यस्त रहने के कारण काफी थक गई थीं। अत: संस्था के पदाधिकारियों को बीच में हस्तक्षेप करना पड़ा जिससे इटामड़ा के सारे सदस्य जीप से उतरकर अपने मिलने वालों के साथ चल पड़े, परन्तु ज्योति के मामा दादागिरी पर उतर आये और कहने लगे कि इन्हें पहले हमारे घर छोड़ना ही पड़ेगा। संस्था के पदाधिकारियों ने मुकेश जी को निर्देश दिये कि किसी की न सुनें और सीधे जीप को भरतपुर ले जायें क्योंकि जयपुर आने से पूर्व यही कार्यक्रम तय था। जीप रवाना हुई परन्तु ज्योति के तथाकथित मामाजी स्कूटर लेकर जीप के पीछे-पीछे सांगानेरी गेट की ओर चल दिए। मुझे डर था कि कहीं मामाजी लड़-झगड़कर जीप को टौंक रोड़ जयपुर की ओर न ले जायं। अत: हमने अपनी कार आगरा रोड पर जीप के पीछे लगा दी। मामाजी ने सांगानेरी गेट पर जीप के आगे स्कूटर लगाना चाहा पर ड्राईवर न रुका। हम ट्रांसपोर्ट नगर तक साथ गये। मामाजी ने स्कूटर जीप के ड्राईवर के पास ले जाकर फिर रौब जमाया होगा, पर शायद ड्राईवर हमारी कार को शीशे में आते हुए देख रहा था अत: न माना और ट्रांसपोर्ट नगर चौराहा पार कर गया। मामाजी का स्कूटर वापस जयपुर की ओर घूम गया। हमने भी अपनी गाड़ी घुमाई और इस प्रकरण में भूखे प्यासे रात्रि 11 बजे घर पहुँचे । बच्चे व पत्नी परेशान थे अत: बिना खाना खाये ही निढ़ाल होकर सो गये।

बड़ा कडुवा अनुभव रहा यह भरतपुर के कलाकार लेने का, परन्तु खुशी यह थी की शो सफल रहा। वर्ष 2001 में भी भरतपुर की लड़कियों ने शो के बाद लगभग इसी प्रकार का हंगामा किया था। आज देखता हूँ तो पाता हूँ कि उसके भी मूल में भी लड़कियों की ईर्ष्या भावना ही थी। वही नटी का रोल। आज मुझे लगता है कि इस भूमिका का आकर्षण ही कुछ ऐसा है कि हर लड़की इसे करना चाहती है।

2003 में मैंने संस्था की ओर से 'प्रथम महिला संगीत, नृत्य एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविर' का आयोजन किया था। नाटक के सभी पात्रों में लड़कियां ही थीं। केवल नाटक के प्रारम्भ में मेरे साथ सूत्रधार के रूप में सुनीता कुमारी

को नटी की भूमिका करनी थी। इस शो की सभी लड़कियां मुझसे कत्थक नृत्य भी सीख रही थीं परन्तु सुनीता सबसे अधिक अच्छा कर रही थी। उसकी लम्बाई, हाव भाव आदि को दृष्टिगत रखते हुए उसे नटी की भूमिका दी गई थी। भरतपुर में बहुत अच्छी रिहर्सल कराई गई। अखबारों ने रिहर्सल का भी खूब कवरेज दिया था अत: अन्य कुछ लड़कियां सुनीता से ईर्ष्या करने लगी। जयपुर में सबके रहने की व्यवस्था संस्था परिसर में ही की गई थी। जयपुर पहुँचते ही कुछ लड़कियों ने सुनीता पर व्यंग्य कसना शुरू किया -'बहुत बड़ी आर्टिस्ट हो गई हो तभी तो सर के साथ नटी का रोल करने का मौका तुम्हें ही मिला है आदि-आदि।'

मुझे इस प्रकरण का पता तब लगा जब सुनीता ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। मामला काफी बढ़ गया था। कामिनी ने किसी कारणवश मामले को तूल दिया था और कुछ लड़कियों का यह पूर्वनियोजित षड़यन्त्र था जो बाद में पता लगा कि किसी भी तरह से लड़-झगड़कर त्रिवेणी कला संगम परिसर से बाहर अपने तथाकथित मिलने वालों के यहाँ रात्रि को रहा जाय। संस्था द्वारा उन लड़कियों को अन्यत्र कहीं रहने की इजाज़त नहीं दी गई क्योंकि भरतपुर से रवाना होने से पूर्व उनके अभिभावकों से लड़कियों के जयपुर प्रवास के दौरान उन्हें संस्था परिसर में ही रखने की लिखित में अनुमति ले ली थी।

बाद में संस्था की मीटिंग में यह निर्णय लिया गया कि भविष्य में भरतपुर के किसी भी कलाकार को संस्था के कार्यक्रमों में न लिया जाय क्योंकि बेवजह टेंशन। परन्तु मेरे द्वारा हर अगली मीटिंग में यही बात दोहराई गई कि यदि किसी में प्रतिभा है तो भले ही वह भरतपुर की ही हो उसे जरूर अवसर दिया जाय। ख़ैर 2002 की घटना के बाद संस्था के पदाधिकारियों की मीटिंग में लिये गये निर्णयानुसार सुनीता, नीलम एवं कामिनी का कत्थक नृत्य के प्रशिक्षण से निष्कासन किया गया और महाविद्यालय स्तर पर उनकी परीक्षा फीस वापस लौटाई गई।

इसके बाद 2003 एवं 2004 में भी जयपुर में आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में भरतपुर के कलाकरों को अवसर प्रदान किया जाता रहा जिसका कारण यह था कि इतना होने के बावजूद भी उनकी प्रतिभा एवं सीखने की ललक ने मुझे उन्हें अवसर प्रदान किये जाने के लिये विवश कर दिया था।

परन्तु 30 सितम्बर 2006 की घटना सबसे अनोखी, सबसे अधिक पीड़ादायक है मेरे लिए।

आर.डी.गर्ल्स कॉलेज, भरतपुर में सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन होना था। मेरी शिष्या विनीता अग्रवाल ने मुझसे अनुरोध किया था–

'सर, मेरी मैडम ने कहा है कि हम लोग इन प्रतियोगिताओं में एक नाटक की प्रस्तुति दें, इसलिए आप हमें कोई अच्छा सा नाटक तैयार करा दें।'

मैंने ख़ूब सोच-विचारकर उसे 'तुक्के का बादशाह' करने का सुझाव दिया क्योंकि इस नाटक में भारतीय संस्कृति, ग्राम्य जीवन दर्शन, हास्य, रीति रिवाज आदि सभी तत्त्व उपलब्ध हैं। नाटक में संगीत पक्ष को भी समाविष्ट किया गया था। धोबी के दृश्य में पक्षों के संवाद, संगीत एवं लय से बद्ध थे तथा नींदडली का तो पूरा का पूरा दृश्य ही संगीतमय था। मूल पुस्तक के नाटक में तो नहीं परन्तु शायद वर्ष 2003 में रवीन्द्र मंच पर की गई इस नाटक की प्रस्तुति में मैंने एक दृश्य में संशोधन कर नट-नटी को प्रवेश कराकर दो ढूंढाड़ी नृत्य भी डाल दिए थे। पहला गीत 'टर्रै' और दूसरा 'म्हारो ब्यावलो गयो छै परदेश' इस संशोधित दृश्य में सर्वप्रथम इटामडा की माधुरी एवं अलका ने इटामड़ा में की गई नाटक की प्रस्तुति में प्रस्तुत किया था । इसके पश्चात् रवीन्द्र मंच जयपुर पर किये गये नाटक के प्रस्तुतीकरण में भी ये ही नृत्य प्रस्तुत किये थे। वैसे तो 'टर्रै' गीत पर पहला प्रस्तुतीकरण बी.डांस.की प्रायोगिक परीक्षा में भरतपुर की रीना शर्मा से जयपुर में कराया था एवं इसके पश्चात् मैंने स्वयं भी वी.एन. भातखण्डे संगीत महाविद्यालय गाजियाबाद में इसे प्रस्तुत किया था, परन्तु वह कत्थक नृत्य के पलटों के साथ बंदिश के प्रस्तुतीकरणस्वरूप किया गया था। नाटक 'तुक्के का बादशाह' के दृश्य में किये गये ये प्रस्तुतीकरण पूर्णरूपेण आँचलिक नृत्य के रूप में थे।

ख़ैर, विनीता ने नाटक के लिए पात्र जुटाने शुरू किये। पहले ही दिन वह एक लड़की को लायी जिसका नाम जौली फौजदार था। कलुवा के पात्र के लिए मुझे यह लड़की उपयुक्त लगी, परन्तु उसने अपनी एक कठिनाई बतलाई-

'सर, मुझे बात-बात पर हँसने की आदत है, और मुझे नहीं लगता कि मैं नाटक के प्रस्तुतीकरण के दौरान अपनी हँसी रोक पाऊंगी। '

मैं जानता था कि इस लड़की को अभी रंगमंच की जानकारी नहीं है इसलिए इसे ऐसा भ्रम है, क्योंकि रिहर्सल के दौरान एवं नाटक के प्रस्तुतीकरण

तक सभी कलाकार इतने घुलमिल जाते हैं, इतने हँस- रो लेते हैं , और नाटक की सफलता हेतु अपने उत्तरदायित्व को समझने लगते हैं, चिन्तित होते हैं कि कोई भी कलाकार न तो बेवजह हँस सकता है और न ही रो सकता है । मैंने उसे दिलासा दिया था- 'तुम चिन्ता मत करो। मान लो तुम नाटक के प्रस्तुतीकरण के दौरान गलती से हँस भी देती हो तो भी कोई अनिष्ट नहीं होगा क्योंकि नाटक का पात्र कलुवा कुम्हार, जिसे तुम निभाओगी बहुत ही चालाक, खुशमिजाज एवं वाचाल प्रवृति का व्यक्ति है, अत: दर्शकों को अखरेगा नहीं इसलिए तुम निश्चिन्त रहो।'

सपना पाराशर। सबसे छोटे कद की , शोख, चँचल , चोरी-चोरी आँखें ऐसे चलें जैसे कौवे की आँख एक ओर बालक की रोटी को देखकर तो दूसरी ओर उसकी माँ द्वारा तीर तीर तीर तीर कहे जाने पर चलती हैं। ममता शर्मा। वह भी छोटे कद की, दुबली पतली, सीधी सादी। शरीर से इतनी कमजोर लगे कि पता नहीं कब गिर जायेगी। खुशबू सोनी। साँवला रंग, गुंथी चोटी, सीधी सादी चुप रहने वाली, नपा तुला बोलने वाली, परिपच विचारों वाली। रेखा, साँवला रंग, देखने में ऐसा लगता मानो अभी-अभी लड़ पड़ेगी। बोलते समय बीच-बीच में ऐसे लगे मानो साँस की नली लीक कर रही हो और आवाज का पैटर्न ही कुछ देर के लिए बदल जाता। कितना ही कहो पर अपनी बोली की गति नहीं बढ़ा सकती। सोनू। परमात्मा ने तुतलाकर बोलने को विवश किया। वह खूब प्रयास करती थी परन्तु उसके तुतलाने का आभास हम लोगों को हो रहा था। मैंने सोचा कॉमेडी नाटक तो है ही अत: इसकी इस प्रकार से तुतलाने की बोली का नाटक में फायदा उठाया जा सकता है, क्योंकि आगे उसे एक सैनिक का रोल दिया था और उसे बोलना था - 'महाशय जरा हमारी तरक्की का भी तो ध्यान रखो। सोनू तरक्की नहीं बोल पा रही थी और उसके मुँह से तरअ्अ्ई निकलता था। मैंने दूसरे सैनिक ममता को बताया था कि जब यह तरअ्अ्ई बोले तो इसके सिर पर एक चपत लगाना और कहना- अरे तरअ्अ्ई नहीं तरक्की। और बाद में सोनू की यह कमी नाटक में एक हास्य की अतिरिक्त कड़ी के रूप में उभरकर मनोरंजन का साधन बनी।

रश्मि । गोरा रंग, सीधी-सादी लगने वाली और अन्त में विनीता। इस पूरी टीम की संयोजिका। परिकल्पना उसी की थी। वह पहले रवीन्द्र मंच पर मेरे नाटक 'आधुनिक यमलोक' में भोलाराम की भूमिका निभा चुकी थी। उसकी

आवाज़ एकदम पैनी थी। गले की कोई बीमारी है शायद उसको, जिसका इलाज भी चल रहा है। 'आधुनिक यमलोक' में भोलाराम की भूमिका उससे कराना भी जैसे मेरी विवशता ही थी क्योंकि भरतपुर में अनुशासित कलाकार मिलना मुश्किल रहा। तिस पर विनीता आज्ञाकारी एवं अनुशासित थी अतः इन गुणों का लाभ तो उसे मिलना ही चाहिए था।

ख़ैर, मेरे द्वारा नाटक के लिए पात्रों का चयन इस प्रकार किया गया- कलुवा- जौली फौजदार, धन्नो एवं राजा- रश्मि, खेमा/रानी- विनीता अग्रवाल, रुकमा/ नटी- सपना पाराशर, धोबन/नट- रेखा, सैनिक नं.1- ममता, सैनिक नं. 2 - सोनू,

नाटक की रिहर्सल प्रारम्भ हुई और मुझे, इस दल के कुछ अति उत्साही कलाकारों ने निर्देशित करना शुरू किया, जिनमें जौली, सपना एवं रश्मि प्रमुख थीं। मैं उन्हें इस दृष्टि से सिखाना चाहता था कि उन्हें यह भी न लगे कि वे नये हैं और कर नहीं सकते और रंगमंच के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की जानकारी भी उन्हें दे दी जाय। नाटक की रिहर्सल हेतु दस-बारह दिन ही बचे थे उसके बाद शो होना था। मैं जानता था कि यह एक बहुत ही कठिन प्रयास है परन्तु इस अभियान को शुरू किया गया। पहले सब कलाकारों को उनके संवाद दिये गये। मैंने कितना ही कहा कि अपने-अपने संवादों को हाथ से लिख लो परन्तु किसी भी कलाकार -निर्देशक ने मेरी बात नहीं मानी। उनका तर्क सुनकर मुझे एक प्रकार का क्षोभ ही हुआ- सर हैं ही कितने हमारे डायलॉग, चुटकी भर। यों ही याद हो जायेंगे।

मुझे उनकी बजायी गई चुटकी में उनका उत्साह परिलक्षित हुआ। अगले दिन वही ढाक के तीन पात। किसी को भी डायलॉग याद नहीं । हाँ कलुवा के रूप में जौली ने डायलॉग याद करने में अवश्य मेहनत की थी। उस दिन लड़कियां रिहर्सल में आ तो सही समय पर गयी थीं क्योंकि आठ बजे उनका ट्यूशन छूटता था और उसके बाद वे जाती तो कहाँ जाती। थोड़ी ही देर में कुछ लड़कियों ने घर जाने की इजाज़त मांगी। जब मैंने उन्हें समझाना चाहा कि देखो, सभी का रिहर्सल में एक साथ रहना जरूरी है तभी तो नाटक की कमियां पता चलेंगी और तुम उनका सुधार कर पाओगी। तो उनका उत्तर होता 'सर ग्रामीण परिवेश का नाटक है यह। और मेरा रोल तो छोटा सा है मैं इसे स्टेज पर सही कर लूंगी।'

मुझे पीड़ा हुई। इस प्रकार न तो नाटक के डायलॉग ठीक से याद हो पाये और न ही लड़कियों ने अपने अति उत्साह में नाटक की रिहर्सल की । मैंने इस अभियान की निर्देशिका का दायित्व विनीता को सौंपा था परन्तु जब लड़कियां मेरा ही कहना नहीं मान रहीं थीं तो बेचारी वह क्या करती।

प्रतियोगिता में नाटक का प्रस्तुतीकरण हुआ। मैं अपनी बैंक सर्विस की विवशता के कारण प्रस्तुतीकरण के समय न जा पाया परन्तु जब भोजनावकाश के पश्चात् प्रतियोगिता स्थल पर पहुँचा तो कलुवा बनी जौली बाहर ही मिल गई और गुस्से में बताने लगी- सर हो गया नाटक। ऐन वक्त पर राजा-रानी नहीं आये और सारा कबाड़ा हो गया। नाटक एकदम रुक गया। मैं जब कलाकारों से मिला तो सब एक-दूसरे पर दोषारोपण करने लगे और कुछ ने तो मुझे भी आड़े-हाथों लिया कि यह सब आप ही की वजह से हुआ है।

मैने पूछा क्यों, तो उन्होंने बताया कि यदि आप प्रस्तुतीकरण के समय मौजूद होते तो सब ठीक हो जाता।

उनकी बात शायद सत्य थी। मुझे अपने आप पर ग्लानि हुई और सोचने लगा- निश्चय ही यदि मैं होता तो सैनिकों के प्रवेश के समय गलती से स्टेज के बाहर रह गया सैनिक यह न कहता- 'वह मुझे छोड़कर अकेला ही चला गया तो अब मैं स्टेज पर क्यों जाऊं ?'

निश्चय ही यदि मैं वहाँ होता तो उन्हें एक साथ भेज देता या फिर ऐसी गलती होने पर भी बाहर रह गये सैनिक को समझाकर किसी युक्ति से बाद में भेज देता और नाटक डूबता नहीं आगे चल पड़ता।

इस प्रकार कुल छह दृश्यों में से केवल तीन ही दृश्यों का प्रस्तुतीकरण हो पाया। यहाँ तक तो नाटक की भूमिका ही बनी थी।

इस अवसर पर नाटक की कलाकार लड़कियों में कैसा युद्ध हुआ इसे देखने से मैं वंचित रह गया। ख़ैर, पता नहीं कैसे इस प्रतियोगिता में नाटक को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। जो लड़कियां प्रतियोगिता स्थल पर इसकी विफलता पर लड़ रही थीं, एक-दूसरे पर दोषारोपण कर रहीं थीं वे ही हर्षोल्लास से मेरे पास आयीं और अपनी ओर से शुभ सूचना दी-'देखा सर। आप तो कह रहे थे कि हम अच्छा कैसे करेंगी पर देखिए न हमारा नाटक द्वितीय रहा।'

मैंने अफसोस जाहिर करते हुए कहा था- 'तुम्हें यह पुरस्कार गलत मिला है और यदि मैं निर्णायक होता तो तुम्हें जीरो अंक मिलता। पता नहीं कैसे तुम्हारे नाटक को दूसरा स्थान मिला ।'

उन्होंने स्पष्ट किया था -'सर, निर्णायकों की टिप्पणी थी कि नाटक के जितने भी दृश्य प्रस्तुत किये गये थे उनकी विषय वस्तु एवं नाटकीय तत्व अच्छे स्तर के थे तथा हमारा इतना प्रस्तुतीकरण सराहनीय था।'

मुझे इस पर तनिक भी संतुष्टि न हुई । कुछ अनुशासनहीन कलाकारों द्वारा एक अच्छे - खासे नाटक की तौहीन की गई थी यह पीड़ा मन में रही जिसे मैं आज भी नहीं भुला पाया हूँ।

नाट्य निर्देशन-संयोजन का संस्मरण : 2

24 एवं 25 नवम्बर 2007 को रवीन्द्र मंच,जयपुर पर आयोजित होने वाले नाट्य शिविर के समापन कार्यक्रम हेतु जयपुर में रिहर्सल की जा रही थी। भरतपुर से महेश जी सोनी एवं उनकी बेटी रश्मि 17 नवम्बर की रात जयपुर पहुँच गये थे और मैं भी 17 की रात ही जयपुर पहुँच गया । बैंक से निकलने में देर हो गई अत: शनिवार होते हुए भी घर पहुँचते-पहुँचते रात्रि के 9 तो बज ही गये थे। मेरे बेटे अभिषेक की तबियत खराब होने की सूचना पहले ही मिल गई थी अत: घर पहुँचते ही सपरिवार डॉ. धोका के घर के लिए रवाना हुए। डाक्टर साहब ने तुरन्त चैकअप कराने की सलाह दी। रात्रि 10 बजे घर पहुँचकर महेश जी से फोन पर पूछा कि क्या मैं रिहर्सल कराने अब आपके घर आ जाऊँ? उन्होंने कहा कि आज मेरा व्रत है और भरतपुर से यहाँ तक किये गये सफर में थक भी गया हूँ अत: रात को रिहर्सल नहीं कर सकते। मैं मन मारकर रह गया क्योंकि अगले दिन रविवार को 8 बजे अभिषेक को चैकअप के लिए सुराणा क्लीनिक ले जाना था अत: महेश जी से अगले दिन 11 बजे रवीन्द्र मंच पर पहुँचने का कार्यक्रम तय किया।

अभिषेक की हालत ठीक न थी। अगले दिन हम 8.30 बजे क्लीनिक पहुँचे। खून के टैस्ट के दौरान अभिषेक को चक्कर आ गये। उसे लिटा दिया गया। कुछ देर बाद जब स्थिति सामान्य हुई तो उससे पूछकर टीका लगवाया और फिर ज्योंही वह एक्स रे हेतु खड़ा हुआ तो फिर चक्कर आ गये। बड़ी

तकलीफदेह स्थिति थी यह मेरे लिए। जैसे-तैसे टैस्ट कराकर घर पहुँचे। मन दु:खी था बच्चे की स्थिति पर परन्तु उसे इसी हालत में छोड़कर मैं सीधा रवीन्द्र मंच पहुँचा। मन में अपराध-भाव था विलम्ब से पहुँचने पर। महेश जी को वहाँ न पाकर उनके घर फोन किया तो पता चला कि आधा घंटा पहले ही रवीन्द्र मंच के लिए रवाना हो गये।

सोफिया को आना था, पर 'द गोलेछा' में किसी विज्ञापन फ़िल्म में भूमिका के साक्षात्कार हेतु बैठी थी वह। वहाँ से छूटते ही मंच पर आने का आश्वासन मिला। महेश जी का फोन आया कि वे मुझे मंच पर न पाकर वापस घर चले गये। मैंने उनसे पुन: आने का अनुरोध किया। वे आये। सोफिया भी आयी। रिहर्सल हुई। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' व 'कार्य वाहक हलवाई' में सोफिया प्रथम बार मेरे साथ काम कर रही थी और रंगमंच के क्षेत्र में उसका पहली बार पदार्पण था फिर भी रिहर्सल संतोषजनक रही।

बातों ही बातों में सोफिया की माताजी ने भी नाटक में काम करने की इच्छा व्यक्त की। मैंने एक महिला की भूमिका में उनकी रिहर्सल करायी। उनकी सीखने की ललक से मैं प्रभावित हुआ और एकाएक महिला की भूमिका हेतु जयपुर में यों पात्र मिल जाने से मुझे राहत मिली। सोफिया की माँ रेशमा जी ने इसकी जीवन्त रिहर्सल की। जब मैंने उनसे कहा कि नाटक की वीडियो रिकॉर्डिंग होगी अत: प्रस्तुतीकरण के समय ठीक से चप्पल मारना। तब शायद वे रुक गई अन्यथा तो शायद रिहर्सल के दौरान ही मेरी पिटाई कर देती । उनकी ओर से खुशी थी परन्तु नाटक 'लड़ी मैड़ की' में महेश जी एवं रश्मि दोनों को ही डायलॉग ठीक से याद न थे जबकि 26 दिसम्बर 2006 को उन्होंने मेरे साथ यही नाटक रवीन्द्र मंच जयपुर, पर प्रस्तुत किया था और इस बार भी एक माह पूर्व ही मेरे द्वारा कम्प्यूटर से निकाली गई साफ-सुथरी स्क्रिप्ट उन्हें डाक से भरतपुर में मिल गई थी। रिहर्सल के दौरान मुझे मायूसी हुई क्योंकि उनका ध्यान अपनी रिहर्सल की ओर न होकर मेरे नवोदित कलाकारों को अप्रत्यक्ष में निर्देशित करने में अधिक रहा। परन्तु यह मेरे लिए नई बात नहीं थी क्योंकि मेरी भरतपुर की कुछ छात्राओं ने इसी प्रकार अतिउत्साहजन्य निर्देशन-ज्वर से पीड़ित हो मेरे नाटक 'तुक्के का बादशाह' के प्रस्तुतीकरण की कमर तोड़ दी थी। मुझे लगा भरतपुर के पानी में ही ऐसी शक्ति है जो किसी में छिपी हुई प्रतिभा को

उसी प्रकार शीघ्रता से उभार देता है जिस प्रकार किसी गर्म सोते का जल पोटली में बाँधकर डुबोये चावलों को निकालते ही पकाकर डोल-डोल कर देता है।

अगले दिन सोफिया के घर रिहर्सल करना तय करके हम लोग चल पड़े अपने-अपने घर। महेश जी और मैंने बैंक से छुट्टी ले ली थी। अभिषेक की तबियत ज्यों की त्यों थी। मन पीड़ित था परन्तु नाटक के संगीत पक्ष आदि पर कार्य करना बाकी था। मेरी विद्यार्थी ऋचा शर्मा जो मुझसे ढूंढाड़ी गीत सीखने आती थी सम्पर्क में न आ सकी। रात्रि को देर से मोबाईल पर सम्पर्क हुआ तो शादी में व्यस्त होने की बात कहीं । अगले दिन सम्पर्क किया तो रेड़ियो स्टेशन पर व्यस्त होना बताया। हारकर लक्ष्मी को लेकर सोफिया के घर पहुँचा। लक्ष्मी ने 'त्रिवेणी कैसेट' में ऋचा पन्त के साथ गाया था पर बेमन से। परन्तु आवाज ठीक थी। सोचा तराशा जा सकता है, पर इस बार उसका मन डूब सा रहा था। मैं जो चाह राह था वह न तो मैड़ की किसी लड़की से हुआ न भरतपुर या इटामडा की लड़कियों से और न ही जयपुर की लड़कियों से। ऋचा पंत एवं भरतपुर की ज्योति कटारा शायद कर सकती थी पर शायद उनकी न करने की अपनी-अपनी कोई विवशताएँ रही होंगी। ख़ैर, लक्ष्मी को लगभग 10 माह पूर्व गीत दिये गये थे और पिछले एक माह के दौरान तो कई बार मैंने उसके घर जाकर प्रैक्टिस करायी पर वह 'त्रिवेणी कैसेट' के स्तर से काफी नीचे चल रही थी जबकि मैं अपने नये गीतों हेतु उससे पूर्व स्तर से ऊँची अपेक्षा रखता था।

20 नवम्बर 2007 को सोफिया के घर पर नाटक की प्रैक्टिस चल रही थी। ब्रैक के दौरान मैं फैजी भाई से फोटाग्राफी हेतु बात करने लगा। बीच में देखा तो यह क्या सोफिया और लक्ष्मी 'मनचंगा तो कठौती में गंगा' के डायलॉग याद कर रही हैं। सोचा सोफिया अपने छबीली के डायलॉग याद कर रही होगी पर नहीं जी अब वे साहिबा तो महाराज बन गयी और लक्ष्मी को छबीली के डायलॉग याद करा रही हैं। मन उछल पड़ा-वाह मेरी शिष्या पहला शो होने से पहले ही निर्देशन। मैंने मन ही मन सोचा कि क्या भरतपुर के पानी का कोई सोता नागतलाई तक आ पहुँचा। मैंने सोफिया की ओर देखा उसने मेरी ओर हँसकर देखते हुए अपराध-भाव से नज़रे झुका ली। शायद मेरे मन की बात समझ ले गई। मुझे खुशी हुई कि मेरा कोई विद्यार्थी मुझे समझ सका। तब तो निभ जायेगी और ठीक चल पड़ेगी गुरु-शिष्या की गाड़ी। सोफिया ने फिर इस

गलती के लिए मुझसे माफी भी माँगी। मुझे अपनी इस शिष्या से इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की अपेक्षा है। भगवान उसे शक्ति दे, सफलता दे।

लक्ष्मी ठीक से न गा पा रही थी अत: एक-एक गाना उससे गवाया और स्क्रिप्ट वापस ली गई। सोफिया की छोटी बहन सहीफा अच्छा गाती है ऐसा सुना था। पर वह गला खोलकर नहीं गा सकी। उसके गले में मिठास है और शब्दों का उच्चारण ठीक है अत: उसे 'ढूंढाड़ गीतमाला' की फरमाइशें बोलने की प्रैक्टिस करायी गई जिसे उसने बहुत अच्छे ढ़ंग से बोला।

परन्तु नाटक हेतु गीतों को गाने की समस्या ज्यों की त्यों विद्यमान थी। सोफिया के मन को टटोला तो उसने पीड़ा से कहा कि काश! मेरा गला भी अच्छा होता और मैं भी गा सकती। मैंने उसे भी प्रैक्टिस करायी और उसने मेरा प्रिय गीत 'टीटोडी' बहुत अच्छा गाया । उसने मन से यह स्वीकार किया कि वह गा सकती है। बाद में मैंने उसे 'सरदार' एवं 'मोटरगाडी' गीत में भी गाने का अवसर दिया।

रात के 10 बजे सोफिया ने एक बच्चे को बुलवाया और उसे भी नाटक में कोई भूमिका देने का अनुरोध किया। इस कार्य में फैजी भी संलग्न रहे। मैंने बच्चे से डायलॉग बुलवाये और इस बच्चे मो. सैफ की उत्कण्ठा को देखते हुए सोफिया एवं फैजी की भावनाओं का आदर करते हुए उसे फूड इंस्पैक्टर की भूमिका दी गई।

जब मैंने इस बच्चे से पूछा कि क्या आपको कोई वाद्य बजाना आता है तो उसने संकोच से बताया कि वह ताशे बजा सकता है। मैं चाहता था कि उसके ताशों की धुन मेरे गीतों में काम आ जाय। उसने थाली उल्टी करके दो चम्मचों से ताशे की धुन निकाली पर बीच में ताल टूटने पर मुझे गीतों हेतु उपयुक्त न लगी और मैं रात्रि 11.30 बजे रिहर्सल समाप्त कर अपने घर के लिए रवाना हुआ।

21 नवम्बर को प्रात: 6 बजे बस द्वारा जयपुर से शाहजहाँपुर के लिए रवाना हुआ। मन में इस बात के लिए उथल-पुथल चल रही थी कि ताशे की धुन बजाने वाले एक बालक की प्रतिभा का अपने नाटकों में किस प्रकार प्रयोग कर सकूं। बस यात्रा के दौरान ही इस विषय में कई तस्वीरें उभरी और आखिरकार हल मिल गया। सोचा कि 'लड़ी मैड़ की' नाटक में भारतीय ग्राम्य जीवन की

जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत की गई है अत: यदि नाटक में भारत की धर्मनिरपेक्षता को समाहित कर लिया जाये तो सभी धर्मों की संक्षिप्त विषय वस्तु के दर्शन हो सकते हैं पर कैसे! तब सोचा कि नाटक का अन्त ही कुछ इस प्रकार किया जाय जिसमें भारत के नक्शे के मध्य हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख एवं ईसाइयों का मिलन बताया जाय। सोचा कि अन्त में झालर बजाते हिन्दु आयेंगे, उसके बाद प्रार्थना करते हुए ईसाई, फिर नमाज पढ़ते अज़ान देते मुसलमान तथा उसके साथ ही गुरबाणी गाते सिक्ख मंच पर उपस्थित होंगे। और तब मेरे 'तरुणाई' काव्य संग्रह की 'कविता विशाल भारत' प्रस्तुत की जाय। एक लड़की को भारत माता बनाया जाय जिसके पीछे तीन रंग की साड़ी पहने तीन लड़कियां हाथों में तिरंगा पकड़े आयें और कविता समाप्ति पर भारत माता की जय-जयकार के साथ नाटक समाप्त हो।

बैंक में काम था अत: रात्रि 9 बजे कमरे पर पहुँचा। खाना खाकर 'लड़ी मैड़ की' नाटक में संशोधन, परिवर्धन करने बैठ गया। गुरु वन्दना के पश्चात् 'च्यारुं मेर चूंथरा कै माळै बैठ्या गाँव हाळा' गीत को समाहित करने की भूमिकास्वरूप महन्त श्री गणेशदास जी के जीवन चरित को बताने वाले संवाद लिखे और उसके बाद कौमी एकता व धर्मनिरपेक्षता को दर्शाने हेतु हुक्के के इतिहास को दर्शाने वाले संवाद लिखे गये। डॉ. हसीन अनवर साहब को संदेश दिया कि सोफिया से बात करायें। रात्रि 11.30 बजे सोफिया का फोन आया। मैंने पूछा कि यदि नाटक के अंत में स्टेज पर ताशे बजाते हुए मुस्लिम धर्म के प्रतिनिधियों का दल मंच पर आना बताया जाय तो वह इस्लाम धर्म के खिलाफ तो नहीं होगा। जब उसने बताया कि ऐसा किया जा सकता है तो मैंने ऐसा ही किया जाना तय किया और अगले दिन प्रात:काल से 11 बजे तक इस नाटक का संशोधन-परिवर्धन पूरा कर लिया।

असल में इस शुभकार्य को सम्पन्न कराने का श्रेय प्रिय सोफिया व भाई फैजी को जाता है क्योंकि वे ही उस बच्चे को लेकर आये थे जिसे ताशे बजाना आता था और जो मेरा प्रेरणा-स्रोत बना।

असल में इस नाटक में धर्मनिरपेक्षता, जातिवाद एवं कौमी एकता को समाहित किये जाने की पृष्ठभूमि तो उसी समय मेरे दिमाग में उभर आयी थी जब श्रीमति रेशमा परवीन ने 20 नवम्बर को रवीन्द्र मंच जयपुर पर की गई

रिहर्सल में यह इच्छा व्यक्त की थी— 'सर यदि आप कोई ऐसा नाटक लिखें जिसमें विभिन्न धर्मों एवं जातियों का मिलन बताया जाये तो मैं आपके निर्देशन में उसमें काम करना चाहूँगी।'

बाद में मो. सैफ के ताशे बजाने के हुनर ने रेशमा जी की भावनाओं को मेरे मन मन्दिर मे बैठकर 'लड़ी मैड़ की' के संशोधन-परिवर्धन को रूपाकार दिया अत: मैं इस शुभकार्य के लिये रेशमा जी का भी मन से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

24 नवम्बर को नाटक का शो होना था। 23 को दोपहर तीन बजे मैं शाहजहाँपुर से जयपुर के लिए रवाना हुआ। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम इस प्रकार था— मुझे सोफिया के घर लगभग रात्रि 8 बजे पहुँचना था बाकी सब कलाकारों को यहाँ पर दोपहर 3 बजे पहुँचना था और मेरे बताये अनुसार नवागन्तुक कलाकारों को सोफिया द्वारा रिहर्सल कराया जाना था क्योंकि कुछ नये कलाकार जिन्हें मैंने नहीं देखा था वे इस शो में कार्य करने की इच्छा रखते थे। मैं रात्रि 8 बजे सोफिया के घर पहुँचा। पता चला कि और तो कोई कलाकार नहीं आया पर शबाना नाम की एक मोहतरमा दोपहर तीन बजे से ही वहाँ पर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। 'फैजी हैल्थ सेन्टर' में घुसते ही, एक गौरवर्ण आकर्षक व्यक्तित्व एवं सहजता की प्रतिमूर्ति जिनका नाम शबाना था, से जब मैंने पूछा कि क्या आप नाटक में काम करेंगी तो उन्होंने स्वच्छ रूप में हँसते हुए कहा- 'सर हम नहीं हमारी एक छोटी बेटी है चार साल की, उसे कोई रोल दे दीजिए। '

मैंने उनसे अनुरोध किया कि आप अपनी बिटिया को ले आयें हम उन्हें देखकर उनसे बातचीत करके देखेंगे कि क्या वे इतने कम समय में कुछ कर सकती हैं तो उन्होंने जैसे-तैसे प्रयास करके बच्ची को बुलवाया। वाकई उनकी बेटी खूबसूरत और मासूम थी। खूब प्रयास किया कि और नहीं तो नाटक के समापन पर गाई जाने वाली कविता विशाल भारत के दौरान जब सम पर बोला जाए- विविध जात के विविध भाँति के पँछी चहचाते यहाँ आकर पँछी चहचाते यहाँ आकर, पँछी ऽऽऽऽऽ चहचाते यहाँ आकर, तब तितली बनकर उड़ती उड़ती वह मंच पर चक्कर काटती रहे। परन्तु मेरे व शबाना जी के भरसक प्रयास करने के बाद भी जब वह ताल में एवं निर्देशानुरूप अंग संचालन न कर सकी तो उसे अगली बार अवसर देने का आश्वासन देकर मैं मायूस होकर बैठ गया। सोफिया ऊपर रसाईघर में थी। क्लीनिक में मैं, शबाना उनके भाई एवं

रेशमाजी थे। वे सब शायद मेरी मनोदशा देखकर अनुमान लगा रहे थे कि मैं हताश हो गया परन्तु मैं शबाना जी के साहस से, उनकी पारिवारिक स्थिति से प्रभावित हो उनके लिये कुछ करने को विवश था। उन्होंने जो अपने बारे में बताया वह था भी तो प्रेरणादायक ही—

उनके शौहर नगीनों की दलाली करते थे। वे अपने शौहर से आधी आयु की एक खूबसूरत महिला हैं जिनसे बात करने के उपरान्त उनकी निश्छल हँसी में डूबकर काव्य-रश्मियां स्वत: ही फूट पड़ने को मचल पड़ती थीं। लगभग 6 क्लास पढ़ी हैं वे । हिन्दी, उर्दू एवं गुजराती का उन्हें ज्ञान है। पीहर वाले चाहते हैं कि वे आगे अपनी अभिरूचि का कोई कार्य करें। इस नेक कार्य में उनके भाई हमेशा उनका साथ देते हैं। अभी भी उनके साथ थे। सबसे बड़ी उनकी एक बेटी हैं। मंदबुद्धि है वह। बीच की बेटी के लिए आज वे हमारे पास आयी हैं और एक दूध-पीती बेटी और है जिसे वे घर ही छोड़ आयी हैं। उन्होंने बताया कि उनके शौहर उनकी पसंद के ऐसे कार्यों में भाग लेने हेतु उन्हें इजाज़त नहीं देते और वे अपनी दोनों बच्चियों की जैसे-तैसे कोई व्यवस्था करके चुपके से यहाँ आयी हैं।

सारी बातें सुनकर जब मुझे पता चला कि किन कठिन परिस्थितियों से गुज़रते हुए दोपहर तीन बजे से वे मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं तो मस्तक श्रद्धा से झुक गया, कला प्रेमी इस मोहतरमा के श्री चरणों में। क्योंकि कला के प्रति ऐसी दीवानगी मैंने प्रथम बार देखी थी। इतना कलानिष्ठ तो शायद मैं स्वयं भी नहीं हूँ। कला की ऐसी प्रशंसक प्रतिमूर्ति की छवि को अपने अंतर में समाये मैंने उन्हें अगले दिन आने का अनुरोध किया। वे अगले दिन आने का वादा करके अपने घर चली गई और मैं रिहर्सल कराने पहुँचा सोफिया के पास ऊपर की मंज़िल पर।

निर्धारित समय पर कोई भी नवागन्तुक कलाकार भाग लेने न आ पाया। बैकग्राउंड से बजने वाले गीतों पर मेरे साथ सोफिया एवं शहीफा को गाने हेतु तैयार कराया गया। दोनों ही की जबान उर्दू है। अंग्रेजी माध्यम से पढ़ रही हैं तथा ढूंढाड़ी बोली, और वह भी आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व की, जिसके शब्द किसी के लिए भी कठिन हो सकते हैं। परन्तु उन दोनों का प्रयास सराहनीय था और अंतत: 'सरदार' एवं 'सितोलिया' गीत में मेरे साथ उनकी आवाज के प्रयोग लेने को अंतिम रूप दिया गया।

20 नवम्बर को ही 23 की तारीख़ में विज्ञप्ति बनाकर सोफिया के घर ही प्रिंट निकालकर जनाब फैजी को इस आशय के साथ सुपुर्द कर दी गई थी कि वे इन्हें 23 की दोपहर तक जयपुर के सभी अखबारों में दे आयेंगे और इसके लिए मैंने 23 को दिन में डॉ. हसीन अनवर साहब को स्मरण भी करा दिया था परन्तु आज 23 की रात 8 बजे पता चला कि भाई फैजी नये कलाकारों को जुटाने के अभियान में प्रेस विज्ञप्ति देने न जा सके थे। माथा चकरा गया। यही तो एक माध्यम था त्रिवेणी कला संगम के प्रशंसकों एवं हितौषियों को कार्यक्रम के आयोजन की सूचना देने का क्योंकि मैं कार्यक्रम की तैयारी में व्यस्त रहने के कारण व्यक्तिश: तो सबको सूचना न दे पाया था । वैसे अक्सर मैं अधिकांश प्रशंसकों को दूरभाष पर कार्यक्रम के आयोजन की सूचना दे दिया करता हूँ। खैर, जनाब फैजी के नये कलाकारों को जोड़ने का उत्साह और की जा रही भागादौड़ी प्रशंसनीय थी।

मुझे स्मरण हो आया त्रिवेणी कला संगम के ऐसे दो सिपाही शैलेन्द्र मिश्रा एवं लोकेश शर्मा का । संस्था के प्रति कर्तव्यनिष्ठ, मेरी आज्ञा पर जूझ पड़ने वाले आज्ञाकारी शिष्य। शैलेन्द्र और सुनीता तो स्व. श्री घासी महाराज के सुपुत्र श्री बृजमोहन शर्मा के शिष्य थे। सुनीता उनसे शास्त्रीय गायन सीखती थी और शैलेन्द्र तबला। बृजमोहन जी शायद वर्ष 1996 में अपने इन दोनों विद्यार्थियों को अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की परीक्षाओं के फार्म भरवाने लाये थे मेरे पास और संगीत जगत् में आजकल व्याप्त तथाकथित व्यवस्थाओं के आवृत्त में मुझसे बात की थी कि आप मेरा कहना मानें, सम्पन घर के बच्चे हैं आपका भी फायदा होगा और मेरा भी। वे शायद मेरे विचारों, त्रिवेणी कला संगम के उद्देश्यों आदि से ठीक से परिचित न थे अत: अनजाने में कुछ प्रस्ताव दे बैठे। मैं हँसा। चाहकर भी उन्हें कोई उत्तर न दे सकता था क्योंकि बृजमोहन जी एक घरानेदार संगीतज्ञ हैं और मैं संगीत के प्रति निष्ठावान हूँ। परन्तु मैंने बाद में मेरी पत्नी को आगाह कर दिया था कि इस प्रकार से प्रस्तावित करने वालों की सूची में एक नाम और जोड़ लें और बिना मुझसे मिलायें ही उनका संस्थागत कार्य करके विदा करें। मैंने युक्ति से दोनों बच्चों को उनके अभिभावकों के साथ आने की सलाह दी। बृजमोहन जी इनका प्रथमा प्रथम वर्ष का फार्म भरवाने लाये थे।

अगले दिन दोनों बच्चे आये। मैंने उनकी प्रतिभा को परखा। सुनीता ने अच्छा गाया और शैलेन्द्र का तबला वादन भी संतोषजनक था। गांधर्व मंडल के केन्द्र व्यवस्थापकों को प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को प्रथमा पूर्ण (तृतीय वर्ष) तक की परीक्षा में सीधे प्रवेश देने का स्व-विवेकाधिकार था जिसका उपयोग करते हुए मैंने उस वर्ष उन्हें सीधे तीसरे वर्ष में प्रवेश दिया। जब बृजमोहन जी को पता चला तो मेरे पास आये और इस बात पर झगड़ा करने लगे कि मैंने क्यों उन्हें सीधा तीसरे वर्ष में प्रवेश दिया। उनकी पीड़ा सही थी क्योंकि मेरे एक सही मार्गदर्शन से उनकी दो बच्चों की दो वर्ष की मोटी फीस मारी गई थी। खैर, जब तक सुनीता का विवाह न हो गया और शैलेन्द्र पढ़ाई खत्म कर अपने काम-धन्धे में न लग गया दोनों त्रिवेणी कला संगम संस्था में संगीत सीखते रहे और उन्होंने यहाँ से विशारद तक की परीक्षा पास की। दोनों ही बच्चों ने संस्था के प्रत्येक शिविर से भाग लेकर काजल एवं अभिषेक के साथ संस्था का नाम रोशन किया। 'आधुनिक यमलोक' नाटक के प्रथम प्रस्तुतीकरण में अभिषेक की नेकीराम की, सुनीता की सितारा देवी की एवं शैलेन्द्र की साधू एवं मूमल देवी की भूमिका आज भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

इसी प्रकार अकस्मात आगमन हुआ था लोकेश शर्मा एवं उसकी बहन नविता का। गांधर्व मंडल की परीक्षा के फार्म भरने आये थे और अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा, अनुशासन एवं बड़ों के प्रति आदर की भावना से उन्होंने भी संस्था में एक विशिष्ट स्थान बना लिया। याद आती है लोकेश की। संस्था का कोई भी कार्य हो, परीक्षकों के लाने-ले जाने का या संगीत एवं नाट्य प्रशिक्षण शिविरों की व्यवस्थाओं का, सभी में वह आगे रहता था। संस्था परिसर में चाहे विद्यार्थियों को पानी पिलाना हो, झाड़ू लगाने या दरियाँ बिछाने का कार्य हो, सभी को वह स्वयं कर लेने की पहल करता था।

4 नवम्बर 1998 को संस्था द्वारा रवीन्द्र मंच जयपुर पर अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल मुम्बई के 67 वें दीक्षांत समारोह का आयोजन किया गया। 700 विद्यार्थियों एवं संगीतज्ञों की एक विशाल रैली न्यू गेट से रवीन्द्र मंच जयपुर तक निकाली गई। रैली का नेतृत्व पद्मश्री विश्वमोहन भट्ट, संस्था की अध्यक्ष श्रीमति रेनूरानी शर्मा, संगीतज्ञ स्व. नारायण राव जी पटवर्धन, त्रिवेणी कला संगम के प्रथम विद्यार्थी अभिषेक शर्मा और मैं स्वयं कर रहा था। इस अद्‌भुत रैली को देखने जयपुर का जन सैलाब उमड़ पडा। रैली से आगे एक

तानपूरे को फूलों से सजी पालकी में रखा गया था। पालकी लाने की जिम्मेदारी डॉ.योजना शर्मा को सौंपी गई थी जिसे उन्होंने बखूबी पूरा किया। आयोजन स्थल तक निर्धारित समय पर पालकी न आने से संस्था के सभी पदाधिकारी चिंतित थे। सहसा देखा कि सामने जीप में पालकी रखवाये योजना जी सरपट भागी चली आ रही हैं । हर्षध्वनि से रामनिवास बाग गूंज उठा-'पालकी आ गई। पालकी आ गई।' आज जब योजना जी की याद करता हूँ तो उनकी कर्तव्यनिष्ठा से आँखें आर्द्र हो जाती हैं और उनके सम्मान में मोतियों की धाराधर वृष्टि होने लगती है। डॉ. योजना जी के पिता श्री नन्दकिशोर जी को मेहमानों के भोजन एवं आवास की व्यवस्था का कार्यभार सौंपा गया था। उनकी सहायता के लिए मेरे नाटक के विद्यार्थी हरीश गंगवानी एवं लोकेश तैनात थे।

इस कार्यक्रम का संयोजक मैं था। अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल के रजिस्ट्रार श्री सुधीर पोटे के नेतृत्व में पूरा रजिस्ट्रार कार्यालय संस्था परिसर में ही ठहरा था। मेरे पास पूरे देश के संगीतज्ञों, एवं विद्यार्थियों के निरन्तर फोन आ रहे थे। रजिस्ट्रार महोदय ने मेरी व्यस्तता को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यालय की महिला स्टाफ सदस्यों को फोन सुनने का कार्य सौंपा था परन्तु हर कोई फोन पर मुझसे ही बात करना चाहता था। जब हम सब साथ खाना खा रहे थे तब भी जब मैं खाना छोड़कर फोन अटैण्ड करने लगता तो सुधीर पोटे जी मुझ पर नाराजगी से बरस पड़ते जिसमें उनकी आत्मीयता झलकती थी—'अब आप कोई फोन नहीं सुनेंगे 20 घंटे रोजना जाग रहे हैं, भूखे-प्यासे। अब थाली पर से न उठेंगे।' और उन्होंने टेलीफोन की कॉड ही निकाल दी थी।

रात्रि को सोने का उपक्रम कर रहा था पर एक काम बाकी था—धर्मशाला में ठहरे अतिथियों को अगले दिन नाश्ते हेतु वितरित किये जाने वाले कूपन तैयार करने का। पूरे रजिस्ट्रार कार्यालय का स्टाफ सदस्य मेरे इर्द गिर्द बैठे डिग्रियाँ लिख रहा था। लोकेश ने जैसे ही मेरे मुँह से 'कूपन' शब्द सुना तो मेरे पैर पकड़कर बैठ गया और बोला—'सर आप नहीं उठेंगे। हम लिखेंगे कूपन।' और वह अभिषेक के साथ कूपन लिखने बैठ गया।

ऐसे शिष्यों द्वारा किये गये कार्यों से आज भाई फैजी की व्यस्तता एवं कर्तव्यनिष्ठा ने अनायास ही याद दिला दी थी।

मुझे लगा कि एक शिष्य जाता है तो कोई दूसरा आता है उसी का स्वरूप लेकर। यह त्रिवेणी कला संगम के बैनर की पवित्रता का ही सुपरिणाम है शायद। तब सुधीर पोटे जी ने मुझ पर क्रोध किया था और आज उसी रूप में ठीक 10 वर्ष बाद मैंने शिविर के एक सिपाही फैजी पर क्रोध किया है पर दोनों ही में अपनापन है और दोनों ही की अपनी-अपनी विवशताएँ हैं।

मो. सैफ एवं एक अन्य बच्चा मो. तोषीफ भी फैजी द्वारा लाये गये थे। मैंने उसी ताशे वाले बच्चे को डाँटा था कि आप कितने लापरवाह हैं रिहर्सल हेतु समय पर नहीं पहुँचे।

रात्रि के दस बज रहे थे। मेरे मना करने के बावजूद भी मेरे शिविर के अतिउत्साहित सिपाही मो. फैजी ने दो महिलाओं, एक किशोरी एवं एक बच्चे को बुलवा लिया था। नाटक में सभी पात्र नवागन्तुक कलाकारों को आवंटित कर दिये गये थे। हम लोग ज़मीन पर बिछे गलीचे पर बैठे थे। आगन्तुक महिलाएँ बिना किसी औपचारिकता के पास में बैठे पलंग पर बैठ गई और साथ में आये दोनों बच्चों को नाटक में 'अच्छे रोल' देने की ज़िद करने लगी। हमारी तन्मयता से चल रही रिहर्सल एकाएक रुक गई। मैंने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि अगले दिन शो है और इस समय नाटक में नये कलाकार लेना संभव नहीं है। रेशमा जी ने भी शायद उन महिलाओं का पक्ष इसलिए लिया क्योंकि वे उनकी मिलने वाली थी और उनका ऐसे में साथ दिया जाना उनके लिए समयसंगत ही था। मैंने दो टूक उत्तर दिया कि अब मैं ऐसा नहीं कर सकता। उन्होंने सुझाव दिया था कि मैं किन्ही अन्य बच्चों को हटाकर उनके दोनों बच्चों को ले लूं। यह स्थिति मुझे अपमानजनक लगी। शायद वे महिलाएँ संभ्रान्त परिवार की विशिष्ट सदस्य थीं अत: मुझे और अपमानित करने के उद्देश्य से बोली—'हमारी बच्ची तो इतनी टेलेन्टेड़ है कि कई 'एड़ फिल्म' वालों की तरफ से ऑफर आ रहे हैं।' और फिर वह बुजुर्ग महिला बोली थी—

'सर, क्या आप बताएंगे कि ड्रामा के फील्ड में आगे कहाँ-कहाँ प्रशिक्षण संस्थान हैं और उनमें प्रवेश कैसे होता है।'

मैं अपने प्रशिक्षण शिविर में आये इस एकाएक व्यवधान से पीड़ित था परन्तु फिर भी मुझे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय एवं अन्य नाट्य प्रशिक्षण संस्थानों के बारे में बताना पड़ा।

जब मैंने उन्हें बताया कि इन संस्थानो में प्रवेश हेतु कठिन परीक्षा होती है और केवल योग्य विद्यार्थियों का ही चयन किया जाता है तो उस बुजुर्ग महिला ने लापरवाही से कहा था—

'सर थोड़ी बहुत सिफारिश तो हर जगह चलती ही है। मेरा बेटा आई.जी. पुलिस है वह सब मैनेज कर लेगा।'

मुझे उन अभिमानी महिलाओं पर क्रोध आया और मैंने आवेश में कहा था—

'बहन जी, और कहीं की तो मैं नहीं कह सकता पर संगीत और नाटक के क्षेत्र में त्रिवेणी कला संगम तो एक ऐसी संस्था है जो केवल प्रतिभाओं को ही अवसर देती है और यहाँ सिफारिशों का कोई स्थान नहीं है। और अब आपसे निवेदन है हमें रिहर्सल करने की अनुमति दें और अगले शिविर में यथा समय बच्चों को लेकर पधारें।'

महिलाएँ चली गई थीं। इस प्रकरण में किसी कारण से सोफिया अनुपस्थित थी। जब उसे घटनाक्रम का पता चला तो मेरे प्रति सहानुभूति दर्शायी और उन महिलाओं को भी छोटे टॉमी के अन्दर ही अन्दर भौंकने की स्टाइल में खूब कोसा।

अगले दिन शो पूरी तरह सफल रहा। शो शुरु होने से पहले मैंने अपने वक्तव्य में पुन: इस बात को दोहराया कि त्रिवेणी कला संगम प्रतिभाओं का आदर करती है न कि सिफारिशों का। पहले दिन का शो पूरी तरह सफल रहा परन्तु नाटक 'कार्यवाहक हलवाई' के दूसरे दृश्य में हम लोग ग़लत ट्रैक पर चल पड़े और लगभग नाटक का आधा महत्वपूर्ण भाग कट गया जिसकी सर्वाधिक पीड़ा प्रिय सहीफा को हुई क्योंकि उसकी ढूंढाड़ गीतमाला की लच्छेदार फरमाईशों का बोला जाना कट गया था। दर्शकों ने कहा नाटक बहुत अच्छा रहा पर हम कलाकार दुखी थे नाटक के कटने पर। रवीन्द्र मंच से सीधे सोफिया के घर गये अगले दिन की रणनीति बनाने हेतु। रात 11 बजे तक सब कुछ तय हो गया। मैंने सोफिया से विचार विमर्श कर कुछ निश्चय किया और फिर सहीफा को बुलाया— 'मेरे बच्चे यदि मुस्कुराओ तो एक बात बताऊं?'

उसने अपने उतरे हुए मुँह से मेरा मन रखने हेतु झूठी मुस्कुराहट से मेरी और देखा। मैंने सोफिया की ओर देखते हुए सहीफा से कहा—

'मेरे बच्चे। कल हम 'कार्यवाहक हलवाई' दुबारा करेंगे।' और यह खुशखबरी सुनकर वह एक चिड़िया की भाँति चहक उठी। लक्ष्मी को अगले दिन आने हेतु मना कर दिया था। सोफिया को निर्देश दिये कि कविता 'विशाल भारत' में तितली बनकर वे विचरण करेंगी।

अगले दिन तीन बजे सब कलाकार रवीन्द्र मंच पर पहुँचे। नाटक 'लड़ी मैड़ की' की स्टेज रिहर्सल देखी। महेश जी को संशोधित परिवर्धित नाटक के तो दूर, पिछले वर्ष किये गये मूल नाटक के डायलॉग भी याद न थे। उन्होंने बताया कि रश्मि को उल्टियाँ हो गई हैं।

मैंने सोच-विचार करके महेश जी से पूछा कि क्या हम 'लड़ी मैड़ की' का प्रदर्शन न करने का निर्णय लें लें।

महेश जी ने उतरे मुँह से इतना ही कहा था—'ठीक है।'

मैं अपने कलाकार साथी की मौन असहमति को भाँप चुका था। उधर मेरे सामने एक दुविधा यह भी थी कि मुख्य रूप से 'लड़ी मैड़ की' नाटक देखने विराटनगर से वहाँ के थानाधिकारी श्री महावीर सिंह जी राठौड़ रवीन्द्र मंच पर आ चुके थे। इस नाटक में मैंने 'टीटोड़ी' गीत पर नृत्य का प्रस्तुतीकरण किये जाने का निश्चय किया था जिसमें बैकग्राउण्ड में दृश्य प्रभाव देने के उद्येश्य से मैंने महावीर सिंह जी को विराटनगर से पूळे (सरकंडे) लाने का अनुरोध किया था और वे अपनी जिप्सी में पूळे ले भी आये थे जिन्हें उनके साथ आये एक कान्स्टेबल ने मंच पर लाकर रख दिया था। इस सहयोग के लिए मेरा मन उनके प्रति श्रद्धा भाव से पूरित हो उठा। ऐसी स्थिति में नाटक 'लडी मैड़ की' का स्थगन करने की सोचना मेरे स्वयं के लिए पीड़ादायक स्थिति थी। मैंने सोफिया से पूछा था कि यदि आज हम कल के दोनों नाटकों का पुनर्प्रस्तुतीकरण कर दें तो संकट से उबरा जा सकता है। सोफिया ने दो टूक जवाब दे दिया कि कल हमारा नाटक 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' बहुत अच्छा हुआ था अत: आज उसे नहीं दोहरायेंगे। तब मुझे विवश होकर 'लड़ी मैड़ की' का प्रस्तुतीकरण करने का निर्णय लेना पड़ा। मैंने रश्मि को हौसला दिया और महेश जी का उत्साह बढ़ाया। निर्णय लिया गया कि नाटक में केवल पिछले वर्ष प्रस्तुत किये गये नाटक की कैसेट के भजन 'कहो धन्य गणपति दास नै' 'बावन कूणा नारबनी का' और 'मोटरगाड़ी' ही रखे जायेंगे और शेष 7 गाने काट देंगे। नया गीत

'टीटोड़ी' युक्ति से शामिल करने का निर्णय लिया गया। सोफिया को निर्देश दिये कि जब उस्ताद कजरी व जमूरे को गाना शुरु होने से पूर्व सामने की ओर इशारा करें तब सतर्क हो जाय ओर गाना प्रारम्भ होते ही स्टेज पर आकर उस्ताद के साथ नृत्य करे और गाना समाप्ति पर निकल जाय। नाटक के परिवर्धन में केवल हुक्के व सुलपी के इतिहास के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता का समायोजन किया जाना तय किया गया। महेश जी व रश्मि को बताया गया कि यह सब आप लोगों को मैं बताऊंगा और आप तो बीच-बीच में उत्सुकता दर्शाते हुए। 'यह क्या होता है ?', 'अच्छा!', 'वाकई' आदि शब्दों के साथ नाटक में संलग्न रहना।

हुआ भी ऐसा ही। यह नाटक प्रारम्भ से ही ठीक तरीके से उठा, गति पकड़ी। जमूरा व कजरी आगे जाकर बहके तो मैंने गानों के क्रमानुसार उनका ध्यान मोड़ने का प्रयास किया। वे समझ गये और मोटरगाड़ी के गाने के साथ ग्राम मैड़ में घुसपैठ कर गये। जब अंतिम गाना टीटोड़ी शुरु हुआ तो सोफिया ने मंच पर आने से मना कर दिया। मैंने जब युक्ति से तिरछे होकर उसकी ओर आँखे निकालकर आने का संकेत किया तो वो समझ ले गई। मंच पर आई और बेहतरीन नृत्य प्रस्तुत कर सहजता से वापस चली गई। बाद में उन्होंने बताया कि उनके पैर में मोच आ जाने से वे स्टेज पर आने को मना कर रही थी।

नाटक के अंत में एक युवती को भारत माता बनाकर प्रस्तुत करना था। इसके लिए शबाना नामित थी परन्तु वे 'कार्यवाहक हलवाई' शुरु होने तक न आयी अत: पनिहारिनों में उनकी जगह रश्मि सोनी को लिया गया। थोड़ी देर बाद ही वे आ गई। भागती दौड़ती जैसे-तैसे इस नाटक के अंत में नाक कान बिंधवाने आ ही पहुँची हलवाई की दुकान पर। अब थोड़ी राहत मिली और 'लडी मैड़ की' में उन्होंने भारत माता की भूमिका अदा की। अब 'विशाल भारत' को गाने की बारी थी। कविता रिकॉर्ड न हो सकी थी अत: मैं स्वयं ही भारत का झंडा लेकर ऊँचे स्वर में कविता गाने लगा। सोफिया ने अपना मोर्चा संभाला और कविता में 'पंछी चहचाते यहाँ आकर' बोली पर वे तितली की चमकदार काली ड्रेस पहनकर ताल के साथ स्टेज पर चक्कर काटने लगी। बड़ा ही मनमोहक दृश्य बन गया था यह। और भारत माता की जय-जयकार के साथ नाटक समाप्त हुआ।

दर्शकों ने नाटकों की खूब सराहना की। अतिथियों द्वारा मंच पर आकर कलाकारों का हौसला बढ़ाया। रवीन्द्र मंच के सभी कर्मचारियों ने उस दौरान भरपूर सहयोग दिया और मीडिया ने दिल खोलकर कवरेज दिया। इस सफलता के लिये मैं कलाकारों, उनके अभिभावकों और दर्शकों का कोटि-कोटि आभार व्यक्त करता हूँ।

बोरे की लाश : संस्मरण 3

आठ जून 2008 का दिन। आज हमारी शादी की छब्बीसवीं वर्षगाँठ थी। संयोग से रविवार का दिन था जिसकी बदौलत मुझे कई वर्षों बाद इस दिन अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ घर पर रहने का अवसर मिला। इस युग में विवाह के बाद छब्बीस वर्ष पूरे कर लेना और वह भी आपसी प्रेम एवं बिना किसी बड़ी खटपट के, सफल गृाहस्थ्य का सूचक है। हालांकि पत्नी के साथ कई बार हल्की-फुल्की तकरारें भी हुईं, कई बार दोनों के 'स्व' भी टकराये, और शायद कई बार हर पक्ष द्वारा अन्य पक्ष को छोड़कर चले जाने की दिखावटी धमकियां भी दी गई। परन्तु इतना सब होने के बावजूद भी आज तक हमारी गृहस्थी में कुछ अप्रिय नहीं घटा जिसके मूल में थे हमारी संस्कृति के वे बीज जो हमारे अभिभावकों द्वारा हमारे जीवन में सद्भावनाओं से रोपकर आशीर्वादरूपी ोह से सींचे गये थे। कई लोगों ने हमें अनेक बार प्रतिपक्ष के प्रति भड़काने का एवं हमारे सफल गृाहस्थ्य-पथ से गुमराह करने का प्रयास भी किया परन्तु हम दोनों अपनी-अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के श्रेष्ठत्व के कारण एक दूसरे से गुँथे ही रहे। पारिवारिक श्रेष्ठता इस बात में नहीं होती कि हमारे परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हों, परन्तु किसी भी परिवार की श्रेष्ठता इसी में होती है कि हमें परिवार में सत्यता, सभ्यता, सामाजिकता, त्याग-बलिदान, आपसी प्रेम और सही मायने में तो भारतीय संस्कृति के पक्षों से साक्षात् करने की, उन्हें आत्मसात् करने की प्रेरणा हमारे परिजनों से मिली हो।

मैं सात जून, शनिवार को अपने कार्य-स्थल से अपने घर पहुँच गया था। विवाह की वर्षगाँठ की पूर्व संध्या पर ही बच्चों द्वारा कई कार्यक्रम बनाये जाने लगे। बेटा कहता कि बाज़ार से ड़ोसे और मिठाई ले आयेंगे और गुब्बारों से घर का हॉल सजाकर खुशियां मनायेंगे। उसका साथ देते हुए मेरी बेटी कहती-

'और हाँ, घर के मुख्य हॉल को फूलों से सजायेंगे। पिछली वर्षगाँठ पर कुछ न किया था इसलिये यह वर्षगाँठ हर्षोल्लास से मनायेंगे।'

मेरी पत्नी अपने मितव्ययी पिता की आदर्श पुत्री थी अत: ऐसे कार्यक्रमों को वह हवाई बिम्ब बताते हुए घर पर सादगी से ही अच्छा सा खाना बनाकर वर्षगाँठ मनाने का प्रस्ताव रखती। वैसे हर व्यक्ति के घर में खाना तो अच्छा ही बनाकर खाया जाता है ऐसे अवसरों पर घरों में, परन्तु मेरी पत्नी जैसे कुछ मितव्ययी एवं संस्कारशील लोग होटल या बाज़ार में खड़े होकर खाने को अंग्रेज़ी फैशन मानकर उसे फिज़ूलखर्ची करार देते हैं। उनके अनुसार यदि किसी शुभ अवसर पर घर में ही खीर-पूड़ी और सब्जी, या फिर दाल-बाटी-चूरमा बनाकर सारा परिवार एक साथ बैठकर खायें तो वह ज्यादा अच्छा है। मैं अपनी पत्नी के हर विचार से सहमत होने का प्रयास करता हूँ और आज का तो अवसर था ही ऐसा कि असहमत होने की कोई गुंजाइश ही न थी। निर्णय यही रहा कि नहा-धोकर, नाश्ता आदि करके बाज़ार निकला जाय और जो एक-दो अन्य कार्य थे उनका भी आते-जाते निपटान कर लिया जाय।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार हम घर से निकल पड़े। छोटे-मोटे काम निपटाये और हँसी-खुशी घर की ओर लौट पड़े। रास्ते में ही मोबाईल पर डॉ. गीता सक्सेना जी का कोटा से कॉल आया, परन्तु सड़क पर चल रहे वाहनों के शोर शराबे में हमारी वार्ता अस्पष्ट ही रही अत: मैंने गीता जी से घर पहुँचकर सम्पर्क साधने की बात कहकर वार्ता को बीच ही में काट दिया।

गीता जी मेरे उपन्यास 'अभिव्यक्ति' की विस्तृत समीक्षा कर उसके इर्द गिर्द मेरे व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक पुस्तक लिख रही थीं जिसके सम्बन्ध में पिछले एक वर्ष से दूरभाष एवं प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा इस विषय में अपेक्षित जानकारी चाहने हेतु वे मुझसे निरन्तर सम्पर्क करती रही थीं। आज भी शायद उन्हें मुझसे कोई महत्वपूर्ण बात करनी थी अत: विषय की महत्ता को समझते हुए मैंने घर पहुँचकर तुरन्त फोन पर उनसे सम्पर्क साधा। हमारी वार्ता साहित्यिक सन्दर्भों में अपनी चरम सीमा पर थी । सहसा मेरी बेटी ने फोन बन्द कर मुझे मुख्य हॉल की ओर आने का संकेत किया परन्तु मैं वार्ता में यह सोचकर संलग्न रहा कि वार्ता पूरी करके ही उधर जाऊंगा। परन्तु मेरे मस्तिष्क में यह सोचकर उलझन पैदा हो गई कि जरूर ही कोई विशेष बात है अन्यथा मेरे घर का कोई

सदस्य इस प्रकार की वार्ता में कभी बीच में नहीं टोकता। अब मेरा वार्ता से सम्पर्क सूत्र भी शायद लड़खड़ाने लगा था अत: गीता जी ने पूछा था –

'क्या बात है ?'

उन्हें मैं कुछ उत्तर देता उससे पूर्व ही मेरा बेटा आया और उसने वार्ता बन्द कर उठने का संकेत किया। तब मैंने गीता जी से यह कहते हुए फोन बन्द कर दिया था- 'मैं आपसे बाद में बात करता हूँ।'

जब मैं अपने बच्चों की ओर गया तो उन्होंने चिन्तित होकर कहा कि बिल्ली का बच्चा तड़प रहा था और पता नहीं अब किधर गया।

हॉल के बाहर जीने के नीचे वाशिंग मशीन रखी थी जिसके इर्द गिर्द लम्बी-चौड़ी चौकीनुमा जगह पर पानी से भरी हुई बाल्टियां रखी थीं। मेरी पत्नी एवं बच्चों ने तुरत फुरत में वहाँ से सारा सामान हटा दिया था परन्तु बिल्ली का बच्चा कहीं भी दिखाई नहीं दिया। बच्चे कह रहे थे कि कहीं भाग गया होगा परन्तु मेरी पत्नी का पूरा ध्यान उस तड़पते हुए बच्चे पर था और उनका दावा था कि बच्चा कहीं नहीं गया है और वाशिंग मशीन में घुस गया है।

पहले तो हम सबने उनसे कहा कि यह आपका वहम है, भला बिल्ली का बच्चा वाशिंग मशीन में कैसे घुस सकता है, परन्तु जब वे अपनी बात पर अड़िग रही तो मैंने और मेरे बेटे ने वाशिंग मशीन को उठाकर नीचे गैलरी में ले जाकर रख दिया और यह कहते हुए राहत की साँस ली-

'ये लो, अब तो देख लिया न कि नहीं है बच्चा इसमें, अन्यथा वह इसमें से बाहर निकल ही आता। '

मेरी पत्नी बिल्ली के बच्चे को न पाकर ड़र सी गई थी अन्यथा तो वह बहुत ही दिलेर महिला है। यदि घर में कोई चूहा-छछून्दर या छिपकली आदि आ जायं तो हम सब ड़र जाते परन्तु वे उन्हें आसानी से भगा दिया करती । यदि कोई चुहिया बर्तन में घुस जाती तो वे उसे तरकीब से पॉलिथीन में बन्द करके जिन्दा ही बाहर छोड़ आती थीं और उसे इस प्रकार ले जाते समय हम सब ड़र के मारे या तो वहाँ से भाग लेते या फिर स्टूल, दीवान या पलंग पर चढ़ जाया करते ।

बरसात के दिनों में बाहर लॉन में या फिर कभी-कभी बाथरूम के अन्दर या गैलरी में छोटे-छोटे साँप के बच्चे निकल आया करते थे, स्याह काले और मुँह फाड़ते हुए कैसे तीव्र गति से भागते थे, बड़े साँप से भी ज्यादा गति

से कैसे बलखाते हुए। यह सिलसिला लगभग पिछले बीस वर्ष से चल रहा था। शुरु-शुरु में किसी ने बताया था कि हमारे घर के लॉन की ज़मीन में कोई जंगी सर्पिणी है उसके बच्चे हैं ये। और हमें यह सलाह दी गई थी कि किसी सपेरे को बुलाकर उसे पकड़वाया जाय। परन्तु किसी अन्य शुभचिन्तक ने सलाह दी कि ये साँप के बच्चे नहीं हैं अपितु खारवे हैं जो देखने में साँप जैसे ही लगते हैं और केवल बारिश के दिनों में ही पैदा होते हैं। उन्होंने बताया कि ये जहरीले नहीं होते अत: ड़र की कोई बात नहीं। परन्तु भाई ड़रें कैसे नहीं हू ब हू साँप ही तो हैं ये। परन्तु हमारी इस समस्या का समाधान भी मेरी गृहिणी ही हैं। वे निड़र हैं, साहसी हैंऔर भागते हुए खारवे पर एक दो हल्की-हल्की झाड़ू मारकर उसे ज़िन्दा ही पॉलिथीन में बन्द करके बाहर फेंक आती। वे धार्मिक प्रवृत्ति की महिला हैं और साँप जैसे ऐसे खारवे को भी जान से मारने को वे पाप समझती हैं। कुछ दिन पूर्व उन्होंने मुझे फोन पर बताया था कि हमारे घर पर अपने तीन नवजात बच्चों को लेकर एक बिल्ली आई है और उसके नन्हे-नन्हे प्यारे-प्यारे ये तीनों बच्चे सारे दिन उछल कूद और किल्लोलें करते हुए बहुत अच्छे लगते हैं।

जब मैं शनिवार को घर पहुँचा तो देखा कि बिल्ली के ये बच्चे उछल कूद कर रहे हैं और मेरे परिवार के सदस्य उन्हें देख-देखकर आनन्दित हो रहे हैं। वे लोग कभी उन्हें दूध पिलाते, कभी बिस्कुट खिलाते और कभी-कभी उन्हें हाथ से छूकर रोमांचित होते थे। अब वे बच्चे हमारे घर के सदस्य बन चुके थे अत: न तो हमसे ड़रते थे और न ही यहाँ से भागते थे। उनके आने से हमारे घर में एक प्रकार की रौनक सी आ गई थी।

आठ जून की सुबह जब मैं अख़बार पढ रहा था तब पत्नी ने आवाज़ दी थी कि तुरन्त आओ। और मैं काम छोड़कर बड़बड़ाता हुआ पहुँचा था-

'क्या तुम्हें इन बिल्ली के बच्चों के अलावा कुछ भी नहीं दिखता।'

परन्तु जब वहाँ का दृश्य देखा तो निगाहें हटती ही न थीं- दोनों बच्चे लकड़ी के एक छोटे से पट्टे पर इस प्रकार की विशेष मुद्रा में बैठे थे मानो अभी-अभी किसी फोटोग्राफर ने फोटो लेने के लिये उन्हें इसी मुद्रा में बैठे रहने का संकेत दिया है। वे एकाएक उठे और आपस में कुश्ती लड़ने लगे। कभी एक बच्चा दूसरे को अपने नीचे दबा लेता तो कभी दूसरा बच्चा पहले की पूँछ मुँह में दबाकर फिर उसे छोड़ देता फिर भाग जाता और क्रम से यही सब बार-बार करता।

भला ऐसे करतब करने वाले बच्चे के तड़पती हालत में एकाएक गायब हो जाने से किसका मन पीड़ित न होगा। काफी ढूँढ़ने के बाद भी जब बच्चा न मिला तो श्रीमती जी के बताये अनुसार वाशिंग मशीन को टेढ़ा किया गया और जब उसके पेंदे में देखा गया तो बिल्ली का बच्चा ड़रा-ड़रा सा उसमें बैठा हुआ दिखायी दिया। हम सब उसकी यह हालत देखकर ड़र से गये थे अत: पड़ौस की आँटी को बुलवाकर बच्चे को बाहर निकलवाया गया। वह उसी प्रकार तड़प रहा था। पड़ौसियों ने उसकी हालत देखकर घोषणा की कि यह अब अधिक देर तक ज़िन्दा न रहेगा तथा साथ ही यह भी सलाह दी कि इसे घर के मुख्य द्वार के बाहर बैठा देना चाहिए।

हम सब बिल्ली के बच्चे को ऐसी हालत में देखकर व्यथित थे। परन्तु जब पड़ौसियों ने उसे ज़िन्दा हालत में ही बाहर बैठाने की सलाह दी तो धर्मपत्नी ने पीड़ित स्वर में कहा था- 'बाहर तो इसे कुत्ते खा जायेंगे और इस बेचारे से तो भागा भी नहीं जायेगा।'

जब पड़ौस की आँटी ने खूब समझाया बुझाया और यह तर्क दिया गया कि वैसे भी घड़ी-पल में तो यह मर ही जायेगा तो आँटी द्वारा ले जाते हुए उस बच्चे को हम सब केवल विवश होकर देखते भर रह गये।

आँटी ने उस बच्चे को मुख्य द्वार के बाहर बैठा दिया । श्रीमती जी ने पहले उस जगह को झाड़ू से साफ किया जहाँ पर बच्चे को बैठाया गया था और वह इसलिए कि उसे घास-फूस और तिनके न चुभ जायं। मेरे बेटे ने मिट्टी के मालसे में दूध भरकर बच्चे के पास सरका दिया था और बेटी ने बिस्कुट के टुकड़े करके उसके पास रख दिये थे। मैं अन्दर आ गया था। थोड़ी देर बाद मेरी बेटी ने आकर मुझे बताया कि बिल्ली का बच्चा वेदना से आहत होकर और अधिक तड़पने लगा और एकाएक उछलकर पास के गड्ढे में जा गिरा था। उसने बड़ी ही दीनता से यह भी बताया कि गड्ढे में चौंलाई आदि के पौधे खड़े थे जिनके काँटे बेचारे उस बच्चे को चुभ गये होंगे।

तब मुझे पहली बार अहसास हुआ कि जब जीव मौत के मुहाने तक पहुँच चुका होता है तो उससे बचने के प्रयास में वह किसी भी कष्ट को बर्दाश्त कर सकता है और यह साहस उसमें स्वत: ही आ जाता है।

उस रात घर में किसी ने भी खाना नहीं खाया था। हम सब इस घटना से उबरने का प्रयास कर रहे थे परन्तु ज्योंहीं उस बच्चे का दूसरा साथी म्याऊं-

म्याऊं करता तो आँखों के सामने पूरा घटनाक्रम चक्कर काटने लगता। थोड़ी देर पश्चात् पीड़ा से व्यथित स्वर में श्रीमती जी ने आकर सूचना दी कि बच्चा मर गया है।

मेहतरानी जी ने आना बन्द कर दिया था और यदि अगले दिन तक बच्चे की लाश को यहाँ से न उठवाया गया तो आसपास एवं घर के अन्दर बदबू ही बदबू हो जायेगी। अगले दिन मेरे दोनों बच्चों को नौकरी पर जाना होगा और मुझे भी प्रात:काल छह बजे ही अपने कार्यस्थल हेतु प्रस्थान करना होगा। तब यही तय हुआ कि प्रात:काल जाने से पूर्व मैं ही बच्चे की लाश को बोरे में ड़ालकर कचरा पात्र के हवाले करूंगा।

निर्धारित कार्यक्रमानुसार अगले दिन ब्राह्ममुहूर्त में श्रीमती जी ने मुझे एक छोटा सा बोरा ला दिया। मैंने हिम्मत करके एक लकड़ी की सहायता से बच्चे को बोरे में धकेला और चल दिया उसे कचरा पात्र में ड़ालने।

बस तेज रफ़्तार से दौड़ी चली जा रही थी और उतनी ही तीव्रता से मेरे मस्तिष्क में विचार आ-जा रहे थे-

'जीव को जीव मात्र से लगाव हो जाता है और आत्माएं एक दूसरे से गुँथ जाती हैं। कोई कहता है यह मेरा है, कोई कहता है यह तेरा है। परन्तु एक दिन ऐसा भी आता है जब हम उसी को अपनी आँखों से शीघ्र दूर कर देना चाहते हैं जो कभी हमें सबसे प्रिय रहा था। 'सबसे प्रिय से ड़रना'। यही जीवन का सत्य है फिर क्यों नहीं जीव मात्र को इसका अहसास उसके जीवन काल में और वह भी समय रहते हो पाता।'

इस घटना को बीते काफी समय हो गया है । परन्तु अब भी जब कभी किसी बिल्ली के बच्चे को देखता हूँ तो वही लाश का बोरा मेरी आँखों के सामने जीवन्त हो उठता है- मैं बिल्ली के बच्चे की लाश को लिए हुए निड़र होकर चला जा रहा हूँ जिसे अभी-अभी कचरा पात्र में ड़ाल दूंगा और इससे मेरे परिवार को मिलेगा सुख-चैन और ड़र रहित वातावरण।

❑❑❑

परिशिष्ट 1

साक्षात्कार

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा द्वारा अपने सृजन-पथ पर चलते हुए कई अन्य सृजनकारों, कलाकारों एवं मातृभूमि के सच्चे सेवकों के साक्षात्कार लिए जिनका संक्षिप्त विवरण यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है :-

1. नाटककार स्व. श्री विजय तेन्डुलकर से उनके मुम्बई निवास पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांशः दि. 5/1/2005 सायं 4.30 बजे

प्र. – आपके किन नाटकों में दो पीढ़ियों के संघर्ष मूल्य विघटन के बारे में बताया गया है।

वि. ते. – कन्यादान में बताया गया है। 1960 के बाद का है।

प्र. – सर, पाश्चात्य देशों का मराठी थियेटर पर आपकी राय में क्या प्रभाव पड़ा है?

वि. ते. – भारतीय रंगमंच पर पाश्चात्य देशों का बहुत प्रभाव पडा है। मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि सभी थियेटरों पर विदेशों से एडोप्सन हुआ है।

प्र. – आपके नये नाटक?

वि. ते. – कन्यादान, सफर, हत् तेरी किस्मत

प्र. – सर, जिस प्रकार मराठी नाटकों का हिन्दी नाटकों में एडोप्सन किया गया है क्या उसी प्रकार हिन्दी के नाटकों का भी मराठी नाटकों में एडोप्सन हुआ है?

वि. ते. – प्राचीन हिन्दी नाटकों का तो मराठी में मंचन कम हुआ है परन्तु नये हिन्दी नाटक मराठी में खेले जा रहे हैं, जैसे हाल ही में मोहन राकेश के कई नाटक मराठी में खेले गये हैं।

प्र. – क्या आपने किसी विदेशी भाषा के नाटक का मराठी में अनुवाद किया?

वि. ते. – हाँ, एक अंग्रेजी नाटक का मराठी में अनुवाद किया है?

प्र. – सर, नवें दशक एवं उसके बाद के अपने लेखन के बारे में बताने की कृपा करें।

वि. ते. – मैंने अपना अन्तिम नाटक 1992 में लिखा और तब से घोषित रूप से नाट्य-लेखन से रिटायर हो गया हूँ। इसके बाद मैंनें प्राकृतिक (यथार्थवादी) शैली में एक उपन्यास, 'कादम्बरी' लिखा।

श्री सुरेश खरे से साक्षात्कार दि० 5/1/2005 दोपहर 12.30 बजे

प्रश्न – क्या पुराने लोग प्रायोगिक नाटकों को स्वीकार कर रहे हैं?

सुरेश खरे – हाँ स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु यहाँ पर प्रमुख बात है यह कि आप लोगों को ये प्रयोग किस प्रकार उपलब्ध करा रहे हैं। यदि आप उन्हें नयी चीजें नये निदान के साथ देंगे तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु यदि आप नयी चीजें पुराने निदान के साथ या पुरानी चीजें नये निदान के साथ उन्हें उपलब्ध कराते हैं तो लोग इसे स्वीकार करेंगे और इस प्रकार आप स्वयं अपने दर्शकों का निर्माण करेंगे। इस प्रकार हम

देखते हैं कि नाटक सामूहिक गतिविधि है। काव्य, कहानी उपन्यास आदि स्वान्त: सुखाय होते हैं परन्तु नाटक बहुजन सुखाय होता है।

प्रश्न – सर, मूल्य विघटन एवं यौन सम्बन्धों के बारे में आपके क्या विचार है ?

सुरेश खरे – आधुनिकता के कारण हमारे जीवन में अनेक कठिनाइयां पैदा हो रही हैं। पहले महिलाएं घर की चार दीवारी में ही रहती थी और कामकाज आदि के उद्देश्य से बाहर की दुनियाँ में नहीं आती थी। इस कारण घरेलू समस्याएं पति-पत्नी या घर के अन्य सदस्यों के बीच ही रहती थी। नारी बाहरी पुरुषों के सम्पर्क में नहीं थी, अत: समस्याएं सीमित थी। परन्तु अब कामकाज के लिए स्त्री को घर से बाहर आकर अन्य पुरुषों के साथ काम करना पड़ रहा है। 1960 के पूर्व सभी नाटक परम्परागत थे जिनमें स्त्री को कठिनाइयां सहने वाले पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसे सती सावित्री के रूप में बताया गया है। परन्तु वर्तमान में मीडिया आदि के कारण मूल्य बदल गये हैं।

अर्चना जोगलेकर से लिया गया साक्षात्कार दिनांक 03/01/2005

प्र. – आधुनिकता किसे कहते हैं और आज के नाटकों पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है ?

अ. जो. – पुराने नाटकों में शास्त्रीय संगीत का पक्ष होता था परन्तु आधुनिक नाटकों में सुगम संगीत (भाव संगीत) का प्रयोग बढ़ गया है।

प्र. – वर्तमान में मराठी नाटकों की क्या स्थिति है ?

अ. जो. – मराठी नाटकों में समाज की आवश्यकताओं के अनुसार समसामयिक विषयों पर नाटक लिखे जा रहे हैं। बदलते हुए समय के विषयों पर मराठी नाटक लिखे जा रहे हैं। उदाहरण के लिए हाल ही में लिखा नाटक 'हमें अलग होना है' तलाक के विषय पर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। इस नाटक में एक गर्भवती महिला की समस्या को उजागर करते हुए उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। यह समाज को सही दिशा देने की ओर एक अच्छा कदम है। यदि ऐसे नाटक और लिखे जायें तो समाज में लोगों की मानसिकता में परिवर्तन होने की प्रबल संभावना है।

प्र. – आपके विचार से क्या हिन्दी-मराठी नाटकों पर विदेशी थियेटर का प्रभाव पड़ा है ?

अ. जो. – जी. हाँ, हिन्दी-मराठी नाटकों पर वर्तमान में विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। विदेशी नाटकों से जो भी कुछ अच्छा हिन्दी मराठी नाटककारों को देखने को मिला उन्होंने अपने नाटकों में इसका समावेश किया। विदेशी थियेटर ने हिन्दी-मराठी थियेटर को नये-नये प्रयोग करने के अवसर प्रदान किये है। पी.एल.देशपाण्डे का नाटक 'टी. फुलाराणी' जो 'माई फेअर लेडी' फिल्म पर आधारित है, ऍडॉप्शन का एक अच्छा उदाहरण है। विदेशी थियेटर ने मराठी थियेटर को नये प्रयोग के अवसर दिये हैं।

प्र. – आपकी राय में हिन्दी मराठी नाटकों में स्त्री-कलाकारों की क्या स्थिति है ?

अ. जो. – वर्तमान समय में नाटक के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन हुए हैं। मराठी नाटकों को समाज में आज बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा है इसलिए वर्तमान समय में नारी कलाकारों द्वारा नाटकों में काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है।

बाल गंधर्व नाटक मंडली की सदस्य, मराठी रंगकर्मी एवं निर्देशिका श्रीमती सुरेखा नारायण जोशी से 2 जनवरी 2005 को पुणे (महाराष्ट्र) में उनके निवास पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. – आपने नाटकों में काम करना कब प्रारम्भ किया?

सु. जो. – मैंने नाटकों में काम करना सन् 1951 से प्रारम्भ किया और लगभग 10 वर्ष पूर्व मैंने नाटकों में काम करना बन्द कर दिया।

प्र. – आप किस संस्था से जुड़ी रही?

सु. जो. – मैं बाल गन्धर्व द्वारा स्थापित 'बाल गन्धर्व नाटक मण्डली' से जुड़ी रही। जब सन् 1954 में यह मण्डली बन्द हो गयी तो मैंने 'नट नाट्य कला मन्दिर' के नाम से अपनी स्वयं की एक संस्था स्थापित की।

प्र. – आपने बाल गन्धर्व नाटक मण्डली के किन-किन नाटकों में काम किया?

सु. जो. – मैंने बाल गन्धर्व के निर्देशन में मराठी नाटक संशयकहोव, मानापमान, एकच प्याला, द्रौपदी, स्वयंवर आदि नाटकों में काम किया।

प्र. – क्या आप अपनी संस्था 'नट नाट्य कलामंदिर' के तहत् मंचित नाटकों के कलाकारों को पारिश्रमिक प्रदान करती थी?

सु. जो. – हाँ, और यह पैसा या तो जनता से मिल जाता था या कमी पड़ने पर मैं स्वयं अपने पास से देती थी।

प्र. – वर्तमान समय में नाटकों की क्या स्थिति है?

सु. जो. – वर्तमान युग में चलचित्रों के आगमन के कारण नाटकों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। शायद यही कारण है कि वर्तमान समय में कलाकारों की निष्ठा भावना नाटकों के प्रति कम होती जा रही है।

वरिष्ठ कत्थक नृत्य गुरू एवं मराठी रंगकर्मी श्रीमती आशा जोगलेकर से 3 जनवरी 2005 को मुम्बई में उनके निवास स्थान पर लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. – आज के युग में मराठी रंगकर्मियों की नाटक के प्रति क्या प्रवृत्ति है?

आ. जो. – अभी जो मराठी रंगकर्मी नाटकों में काम कर रहे हैं वे अच्छे पढ़े लिखे है तथा नौकरी के साथ-साथ नाटकों में भी काम कर रहे हैं।

प्र. – ऐसे नौकरीपेशा लोगों का प्रतिशत आपकी राय में कितना है?

आ. जो. – लगभग 90 प्रतिशत नौकरीपेशा लोग ऐसे है जो नाटकों में भी काम करते हैं।

प्र. – क्या ऐसे रंगकर्मियों को नाटकों से आमदनी होती है या वे शौकिया तौर पर नाटकों में काम करते हैं?

आ. जो. – ऐसे कलाकार अपनी नौकरी से भी अधिक पैसा नाटकों में काम करके अर्जित करते हैं और बहुत से कलाकार तो आगे चलकर नौकरी छोड़कर केवल नाटकों में काम करने लगते हैं।

प्र. – क्या महाराष्ट्र में रंगमंच-कलाकारों की ऐसी संस्थाएं हैं जो नाटकों में काम करने वाले कलाकारों को आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं?

आ. जो. – इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती क्योंकि मराठी लोग नाट्य-प्रेमी होते हैं इसलिए यहाँ पर नाटकों के शो बहुत अच्छे चलते हैं। यदि यहाँ पर रंगमंच के क्षेत्र में कोई टिक गया तो उसके पास अन्य कुछ कार्य करने का न तो समय रहता है और न ही उसकी ज़रुरत।

वरिष्ठ रंगकर्मी श्री दिनेश ठाकुर से दिनांक 24-10-04 को लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

प्र. : नाटक के इस सेट को तैयार कर रहे ये लोग क्या सेट लगाने का ही कार्य करते हैं?

दिनेश ठाकुर : नहीं, ये लोग केवल इस कार्य से ही नहीं जुड़े हुए हैं, ये सब रंगकर्मी हैं और आज शाम को होने वाले शो में ये सब अभिनय भी करेंगे।

प्र. : सर, यह तो बहुत अच्छी बात है। इससे नाटक की टीम में एकता की भावना जागृत होती है और मंच-व्यवस्था भी प्रभावी बन पड़ती है।

दिनेश ठाकुर : हाँ, प्रत्येक रंगकर्मी को मंच-व्यवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है, और यह तभी संभव हो सकेगा जब वह ऐसे कार्यों में सहभागिता करेगा। इससे कलाकारों में टीम- भावना का विकास भी होगा। रंगकर्म में कलाकार एवं कार्य दोनों में छोटे-बड़े का भेद नहीं होता। यही कारण है कि किसी भी नाटक का प्रदर्शन टीम-भावना से ही सफल हो पाता है।

प्र. : सर, क्या नाटकों में मंच-सज्जा, रूप-सज्जा, वस्त्र -विन्यास आदि आवश्यक होता है, क्योंकि कई बार जब हम किसी दूरस्थ स्थान पर नाट्य-प्रदर्शन करने जाते हैं तो इन व्यवस्थाओं को जुटाने में काफी कठिनाई आती है।

दिनेश ठाकुर : नाट्य प्रदर्शन हेतु ये सभी उपादान आवश्यक नहीं, अपितु सहायक होते हैं। नाटक की सफलता हेतु अभिनय एवं संवादों की प्रभावशाली अदायगी, बोलने का ढ़ंग आदि अधिक महत्व रखते हैं अत: हम दूरस्थ क्षेत्रों में साधारण से मंच पर भी प्रभावशाली प्रस्तुति दे सकते हैं। जैसे पौराणिक नाटकों में यह आवश्यक नहीं कि राजा को मुकुट ही पहनाया जाय या रानी को अलंकारों से सुसज्ज़ित ही किया जाय। आप उन्हें संकेतात्मक वस्त्र भी पहना सकते हैं। यह जरूरी नहीं कि राम का अभिनय करने वाला पात्र राजसी वस्त्र ही पहने। आप उसे कुर्ता पाजामा भी पहना सकते हैं, या फिर साधारण वस्त्र-विन्यास में सिर पर पगड़ी पहनाकर भी प्रस्तुत कर सकते हैं। उसकी उपस्थिति, उसके अभिनय से सार्थक होगी और दर्शक भूल जायेंगे कि उसका वस्त्र- विन्यास क्या है, मंच-सज्ज़ा कैसी है। अगर अभिनय प्रभावशाली रहा तो पात्र अपने किरदार को प्रस्तुत करने में पूर्णत: सफल रहेगा।

प्र. : सर, ऐसा माना जाता है कि रंगकर्मियों को हमेशा ही आर्थिक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है, नाटकों के शो आदि के टिकिटों की बिक्री नहीं होती, और सामान्यतया इस क्षेत्र में सभी रंगकर्मियों को सरकारी सहायता भी उपलब्ध नहीं हो पाती। ऐसे में वह अपने आपको इस क्षेत्र से कैसे जोड़े रखें?

दिनेश ठाकुर : आपकी बात सही है कि हिन्दी थियेटर में अभी रंगमंच पर टिकिट खरीदकर नाटक देखने की भावना मराठी रंगमंच के जैसी नहीं है, परन्तु इसके लिये सतत् प्रयासरत रहकर लगे रहने की जरूरत है। जब मैंने बम्बई में हिन्दी रंगमंच पर कार्य करना शुरु किया था तो वहां पर भी ऐसी ही स्थिति थी। परन्तु इसके लिये मैं सतत् प्रयासरत रहा और आज आप देखिए कि मुम्बई में ही नहीं जयपुर आदि स्थानों पर भी हमारे नाटकों के प्रदर्शनों के लिये टिकिटों की खूब बिक्री होती है। और रही रंगकर्मियों के आर्थिक संकट की बात, तो यह मानिए कि आर्थिक दृष्टि से तो रंगकर्म लाभ का कार्य है ही नहीं। इसमें तो वह व्यक्ति आये जो निष्ठा-भाव से रंग- कार्य करना चाहे। यदि कोई ऐसा सोचे कि इससे मुझे लाभ होगा , टिकिटों की बिक्री से शो के खर्चे निकल जायेंगे, वह रंगकर्म छोड़कर दुकानदारी जैसा अन्य कोई कार्य करे, क्योंकि रंगकर्म एक साधना है, परन्तु आज भी हिन्दी नाटक के सम्बन्ध में हास्यास्पद स्थिति यह है कि जो भी कोई पाँच- दस नाटकों में काम कर लेता है वह सिनेमा की ओर मुम्बई भागना चाहता है। ऐसे व्यक्ति कभी भी रंगमंच का हित नहीं कर पायेंगे।

प्र. : सर, हिन्दी- नाट्यलेखन के बारे में कुछ बतायें ।

दिनेश ठाकुर : असल में आज हिन्दी में अच्छे नाटक लिखने वालों की कमी है। जो कुछ नाटक लिखे भी जा रहे हैं उन पर निर्देशक अपनी टीम के साथ कड़ी मेहनत करता है और जब उसकी प्रस्तुति अच्छी हो जाती है तो उसका सारा श्रेय लेखक लेना चाहता है। उस सफलता के आधार पर कोई-कोई लेखक तो अपनी नाटक की पुस्तक को बोर्ड या विश्वविद्यालयों के कोर्स में भी लगवा देता है और अन्य कोई लेखक नाटक की इस सफलता के आधार पर प्रकाशकों से रॉयल्टी के रूप में मोटी रकम ही हड़प लेता है, परन्तु सही बात यह है कि एक साधारण सी कृति को भी अपनी मेहनत से सफलतम नाट्यकृति का दर्ज़ा दिलवाने के हेतु निर्देशक एवं कलाकार ही हैं जबकि इसका श्रेय उनके स्थान पर लेखक ले जाता है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक श्री देवेन्द्रराज अंकुर से 10 अक्टूबर 2004 को लिये गये साक्षात्कार के मुख्यांश

शोधार्थी : सर, क्या नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थ आज भी प्रासंगिक हैं, और क्या ऐसे ग्रन्थों का व्याकरण आज भी हमारे लिये उपयोगी है ?

देवेन्द्रराज अंकुर : हाँ, नाट्यशास्त्र, अभिनय दर्पण आदि ग्रन्थों में उल्लखित अभिनय के सिद्धान्त-व्याकरण आदि आज भी प्रासंगिक हैं और सही मायने में तो यदि आज भी उन सिद्धान्तों का पालन किया जाय तभी नाटकों का प्रभावी मंचन सम्भव हो सकेगा। इन ग्रन्थों में नाटक का हर तत्त्व मौजूद है, उनके बारे में गहन निर्देशन हैं और उन्हें स्वीकार किया जाना समकालीन रंगमंच की अनिवार्यता है।

वर्तमान समय में काव्य का रंगमंच, कहानी का रंगमंच आदि नवीन नाट्यरूप प्रकट हो रहे हैं, जिसमें कविता एवं कहानी को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शोधार्थी : सर, इस प्रकार की नवीन नाट्यावधारणाओं के बारे में कुछ जानकारी दें।

देवेन्द्रराज अंकुर : चूंकि कविता ,कहानी एवं उपन्यास का रंगमंच वर्तमान समय के सर्वथा नवीन प्रयोग हैं। ख़ास तौर से कविता में काव्यात्मक भावपक्ष की प्रधानता होने के कारण उसके रंग वैशिष्ट्य के उपादान भी इस प्रकार के चुनने पड़ते हैं ताकि उनसे काव्य के मौलिक भाव उजागर हो सकें।

परमवीर चक्र कर्नल होशियार सिंह जी से उनके निवास पर लिये गये साक्षात्कार के प्रमुख अंश [1]

कर्नल होशियार सिंह : 'हम लद्दाख से हैदराबाद की ओर आ रहे थे। 1971 की लड़ाई प्रारम्भ होने के कारण हमें पठानकोट में ही रोक लिया

([1] पंजाब नैशनल बैंक, जयपुर अँचल की पत्रिका 'पी एन बी सन्देश', अक्टूबर- दिसम्बर 1997, संपादक, डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा, से साभार)

गया। हम 5 दिसम्बर 1971 को सरहद पार करके तथा दुश्मन के मोर्चों पर कब्ज़ा करके 14 अगस्त को बसन्तर नदी को पार करके दुश्मन के इलाके में बीस किलोमीटर अन्दर तक पहुँच गये। वहाँ पर हमें गाँव जरपाल (जहाँ पर दुश्मन के बहुत मजबूत मोर्चे थे) पर कब्ज़ा करने का आदेश मिला। दुश्मन के इन मोर्चों के सामने नदी थी जिसके दूसरी ओर बारूदी सुरंगें पड़ी थीं जिन्हें दुश्मन ने मशीनगनों, टैंकों एवं तोपखानों से ढँक रखा था। हमने पन्द्रह तारीख की रात को लगभग दस बजे नदी पार करना प्रारम्भ किया तथा नदी पार करके दुश्मन के मोर्चों और मशीनगनों पर हमला कर दिया। यह एक ऐसा वक्त होता है जहाँ दुश्मन करो या मरो का इरादा रखता है। इस घमासान युद्ध के दौरान मैं स्वयं जान की परवाह किये बिना एक मोर्चे से दूसरे मोर्चे के बीच जाता रहा तथा जबरदस्त हाथापाई की लड़ाई के पश्चात् हम दुश्मन के इस मोर्चे पर कब्ज़ा करने में क़ामयाब हुए जिसमें दुश्मन के काफी कैदी और हथियार पकड़े गये।

परन्तु अगले दिन सोलह तारीख की सुबह दुश्मन ने हमारे चारों ओर घेरा डालकर हमारी सेना पर पैदल फ़ौज और टैंकों के साथ भारी गोलाबारी शुरु कर दी परन्तु हम लोगों ने उनके ये हमले नाकाम कर दिये। सोलह दिसम्बर 1971 की इस लड़ाई में दुश्मन के 45 टैंक बर्बाद हुए एवं काफी जान-माल का नुकसान हुआ। यह लड़ाई काफी नज़दीक से लड़ी गई। हमारे एवं दुश्मन के टैंकों में चार सौ-पाँच सौ गज की दूरी से सीधी भिडन्त थी। इस युद्ध में मेरे साथी सैकेण्ड लैफ्टिनेंट श्री अरुण खेतरपाल वीरगति को प्राप्त हुए जिन्हें मरणोपरान्त परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

परन्तु दुश्मन चुप न रहा और उसने पीछे से अपनी रिजर्व ब्रिगेड के साथ, पूरी प्लानिंग के साथ, हमारी कम्पनी पर एक ओर से पैदल सेना से और दूसरी ओर से टैंकों से 17 दिसम्बर 1971 को प्रात: पाँच बजे ही ज़बरदस्त हमला कर दिया। यह युद्ध अब तक का सबसे घमासान युद्ध था जो लगभग ढाई घण्टे तक चलता रहा। इसमें दुश्मन मार खाता रहा और बार-बार आक्रमण करता रहा। इस घमासान युद्ध में दुश्मन के लगभग 350 जवान मारे गये तथा मैं स्वयं भी जख़्मी हो गया परन्तु युद्ध के मैदान से हटने को तैयार न हुआ।

इस युद्ध में मरने वालों में दुश्मन के कमाण्डिंग ऑफिसर ले. कर्नल अक़रम रज़ा और तीन अन्य अधिकारी शामिल थे। 18 तारीख को युद्ध का

सीज फायर हुआ। पाकिस्तानी ब्रिगेडियर सफेद झण्डा लेकर हमारे सामने आये व अपने और अपने अधिकारियों व जवानों की लाशें मांगी।..... ले. कर्नल अक़रम रज़ा की लाश हमारे मोर्चे के 20-25 गज के अन्दर थी जिससे यह साबित होता है कि वे लीड कर रहे थे। एक पाकिस्तानी सैनिक ने बताया कि ले. कर्नल अक़रम रज़ा कहते थे कि मैं लड़ाई में सदा आगे रहूँगा और वे अन्तिम समय तक आगे रहे। इस युद्ध को देखने एवं मुझे जख़्मी हालत में हौसला देने मेजर जर्नल वाग पिंटो स्वयं आये और मुझसे कहा कि आपने बहुत बहादुरी की लड़ाई लड़ी है।

इस युद्ध में मुझे अद्वितीय बहादुरी एवं कुशल नेतृत्व हेतु परमवीर चक्र से सम्मानित करने की 13 जनवरी 1972 को विधिवत घोषणा की गई।'

❑❑❑

परिशिष्ट 2

पत्र

नाटक 'आधुनिक यमलोक' के प्रथम प्रस्तुतीकरण के मुख्य अतिथि का समीक्षा पत्र

डॉ. गजानन मिश्र, निदेशक

भाषा निदेशालय, राजस्थान शासन, जयपुर

अ.शा. पत्र क्रमांक (निजी)/ भावि/ 07 दिनांक 15-11-1997

'.... त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की ओर से आयोजित 'आधुनिक यमलोक' नाटक रवीन्द्र मंच, जयपुर पर देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस नाटक के द्वारा आपने आज के समाज में व्याप्त कतिपय दूषित तथ्यों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने का असाधारण कार्य किया है, साथ ही इन कुरीतियों के निवारणार्थ क्या उपाय किये जाएं इस कार्य को उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की तरह समाज पर छोड़ दिया है। आपका निर्देशन भी प्रशंसनीय है। इसमें कार्यरत सभी कलाकारों द्वारा बहुत ही अच्छा अभिनय प्रस्तुत किया गया। उन सभी कलाकारों को मेरी ओर से हार्दिक बधाई, विशेषकर नेकीराम की भूमिका करने वाले बाल कलाकार श्री अभिषेक शर्मा के स्वाभाविक अभिनय ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया है।

ह.

डॉ. गजानन मिश्र

डॉ. गीता सक्सेना द्वारा डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा को लिखा गया पत्र

दि. 07-03-2007

परमश्रद्धेय अग्रज श्री कैलाश जी,

सादर वन्दे।

आपकी कुशलता की कामना में मैं सपरिवार सकुशल हूँ। आप द्वारा वांछित 'अभिव्यक्ति' उपन्यास पर की गयी प्रतिक्रिया प्रेषित कर रही हूँ। उपन्यास में वर्णित जीवन यात्रा और कतिपय स्थापनाएं उपन्यास को लक्ष्य की ओर पहुँचा रही हैं। आपने बहुआयामी सृजन किया है इसलिए मेरी यह प्रतिक्रिया संभवत: श्रेष्ठ स्थान नहीं बना सकेगी। फिर भी यह मेरा अल्प प्रयास है जो मेरी लेखनी को शक्ति देता है ऐसा मुझे महसूस हो रहा है। इस उपन्यास ने मेरी सुप्त अभिव्यक्ति को चेतन करने एवं कुछ हलचल उत्पन्न करने का कार्य किया है। मेरी यह मान्यता है कि स्त्री-पुरुष के मध्य देह का रिश्ता प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं है। उससे भी ऊपर निर्लिप्त भाव से एक दूजे के प्रति समर्पण ही वास्तविक प्रेम है। सामाजिक बन्धन से बन्धित प्राणियों के मध्य अर्थात् दाम्पत्य के लिए तो यह अनिवार्य है किन्तु बन्धन रहित जीवन में आत्मीयता, मैत्री, स्नेह ही आवश्यक होने चाहिएं। शारीरिकता नहीं। तभी सम्बन्धों की डोर लम्बी हो सकती है जैसी कि विस्वास और सरला की है। शारीरिक सम्बन्धों की चाह ने विस्वास को सरला से दूर कर दिया किन्तु अन्तरतम में चाह स्थायी बनी रही। यह स्थिति अन्य पात्रों के साथ संभव नहीं हो सकी क्योंकि वहाँ देह की दीवार दिलों के मध्य स्थापित हो गयी। विस्वास भी रूप आकर्षण के जाल में उलझकर अपनी मानसिकता को स्थिर नहीं रख सका अत: सम्बन्धों का स्थायित्व कायम नहीं रहा। यह समीक्षा नहीं अनुभूति है अत: लेखनी को विराम देती हूँ।

मैं पत्र के अन्तर्गत ही एक रचना प्रेषित कर रही हूँ यदि सही लगे तो स्थान दिलाने का प्रयास करें। शेष कुशल है।

मंथन

पत्तों की खड़खड़ाहट से
जब कभी परिचित सी आहट होती है,
मन में होता है उद्वेलन-
धड़कनें अपनी गति को बढ़ा देती हैं,
अन्जाना-सा स्पर्श आन्दोलित करने लगता है,
और कँपकँपाती देह ढूँढने लगती है एक कोटर,
लगता है बँधन-
अभिव्यक्ति के तारों पर बँधा वह अहसास
कामिक भूगोल को जाँचता उसका व्याकरण,

कहीं क्षण के उन्माद में –
मन के स्तम्भ पर आरी न चलवा दे
आस-पास पसरा सन्नाटा
और दूर से आती बदहवास चीखें
जो बनी होंगी कभी इसी हादसे का प्रारूप
विचलित कर देती हैं 'पल-प्रतिपल'
बिखर जाता है परिवेश में मेरा 'स्व'
अतीत की वर्तमान में प्रतिच्छाया देख,
तभी-
विमर्शित चेतना अवगाहन से सूत्र लाती है
कि हर आहट नहीं लांघेगी तन का आँगन
बाँधेगी मन को अव्यक्त भाव से-
तभी अनुभूति होती है-
'अविचलन' की, दृढ़ता की और जीवन की सत्यता की।

आपकी शुभचिंतक
डॉ. गीता सक्सेना

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा द्वारा लिखे गए पत्र

डॉ. गीता सक्सेना को लिखे गये पत्र

गीता जी के पत्र 7 मार्च 2007 के सन्दर्भ में प्रेषित कविता 'अभिव्यक्ति' के कुछ अंशों पर प्रेषित टिप्पणियां इस प्रकार हैं-

अभिव्यक्ति

दो राहे पर चले जा रहे भीगे से मन आतप से,
खुशहाली में दिखते राही तड़प रहे कितने युग से [1]
आश्रय पाने को दृष्टि हिली जिस ओर खण्डहर बेदम हों,
युग-युग से थे जो तड़प रहे मानव-किलकारी सुनने को [2]

(आपकी कविता मंथन में कम्पित कोटर की तलाश)

1. 'इस उपन्यास ने मेरी सुप्त अभिव्यक्ति को चेतन करने एवं कुछ हलचल करने का कार्य किया है।' (आप द्वारा मुझे लिखे गये पत्र 7 मार्च 2007 से)
2. मेरे द्वारा आपको लिखे गए पत्र 11 मार्च 2007 के पृष्ठ 2 का पैरा 2

संयोग बना जो पहुँच गये वीराने से खण्डारों में,
ऐसा ही राही वहाँ मिला जो भटक रहा अँधियारों में
'सहमे-सहमे से खड़े रहे दृग क्षण भर को भयभीत रहे,
जब नज़रों का साक्षात् हुआ मन मिलने को बेताब हुए।
अँधड़ता के शैलाबों में मन के भावों में ज्वार उठा,
निज व्यथा-कथा को कहने का चँचल मन में फिर भाव उठा '

(आपकी कविता मंथन से हू- ब-हू समानता)

गीता जी को लिखा गया पत्र 11 मार्च 2007

..... आपने अभिव्यक्ति की जो समीक्षा की है वह मुझे एक चमत्कार सा लगा। मेरे हृदय से उद्भूत उद्गारों ने कोरे पृष्ठों पर जिन चिन्हों के संकेत अंकित किये उन्हें हू-ब-हू उसी रूप एवं संवेदना के साथ अपनी लेखनी से मूर्तरूप प्रदान कर आपने एक लेखक की अन्दरूनी भावनाओं को उजागर करने का महति कार्य किया है। आप द्वारा प्रेषित समीक्षा के बारे में अपने विचार आगे लिखूंगा जो संभवत: इस समीक्षा को पूर्ण करने में आपका साथ देंगे और जैसा कि आपने अपने पत्र में लिखा है कि 'स्त्री-पुरुष के मध्य देह का रिश्ता प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं है। उससे भी ऊपर निर्लिप्त भाव से एक दूजे के प्रति समर्पण ही वास्तविक प्रेम है।'

प्रेम के सम्बन्ध में मेरी भी यही मान्यता है।

मैंने सामाजिक बन्धनों से बन्धित हो, अर्थात् दाम्पत्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए जीवन में आत्मीयता, मैत्री एवं स्नेह का पल्लवन करने का प्रयास किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन्हीं आधार स्तम्भों पर अभिव्यक्ति के विस्वास एवं सरला का अलौकिक प्रेम जन्म-जन्मांतर तक चिरस्थायी रूप में स्थापित हो सकेगा।

स्पष्ट अभिव्यक्ति कैसी होती है यह एक कठिन प्रश्न है जिसके सघन जल में विस्वास एवं सरला दोनों ही उलझे रहे। परन्तु आपने इस कठिन गुत्थी को ठीक प्रकार से समझकर अपने अतिसंवेदनशील हृदय का परिचय दिया है जिसके प्रति मैं नतमस्तक हूँ। आप निश्चय ही आयु में मुझसे छोटी हैं परन्तु आपकी जीवन की अनुभूतियां, विचारधारा एवं हृदय की संवेदनशीलता मेरे जैसी ही है।

मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब उसे वे लोग भी पराये से ही लगने लगते हैं जिनसे उसका निकट का सम्बन्ध होता है, साथ होता है और दुनिया की इस बेशुमार भीड़ में कोई ऐसा पराया भी अपना लगने लगता है जिसे जीवन में पहली बार देखा हो, मिला हो। क्या पूर्व जन्म की मान्यता सत्य तो नहीं है? मेरा एक विचार रहा अपनी आत्मकथा 'कुछ-कुछ यादें' लिखने का, कुछ लिखा भी है। संभवत: ये विचार मैंने उसमें भी समाहित किये हैं।

क्या यह ईश्वर की कृपा नहीं है कि बिना साक्षात्कार के भी आपने साहित्य के माध्यम से किसी लेखक की आत्मा तक पहुँचकर उपरोक्त मान्यता की साकारता को सिद्ध किया है। आपने लिखा है कि यह समीक्षा नहीं अनुभूति है। मैं इस अनुभूति को उसकी जड़ से समझ चुका हूँ ठीक उसी तरह जिस प्रकार विस्वास ने जीवन के किसी मोड़ पर जाकर एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् सरला की अनुभूति को जाना है। रही कलम को विराम देने की बात। क्या दे सकेंगी? इस अनुभूतिजन्य स्थिति में पहुँचकर आपकी लेखनी सदा चलती रहेगी और मैंने चाहे कितना ही प्रण किया हो कि 4 मई 2007 को बैंक में मेरी पदोन्नति परीक्षा होने तक साहित्य से निकटता न रखूंगा। क्या कर सका हूँ ऐसा! यदि साहित्यकार अपने मन पर इस प्रकार का नियंत्रण कर सकता और वह भी अपनी प्राण-वायु से उपवास का, तो सृष्टि का सर्वनाश हो जाता । मुझे आज अपार प्रसन्नता है कि आपको लिखे इस पत्र के माध्यम से ही सही पर साहित्य-सृजन को गति तो मिली ही। मैंने आपको मन की इस पीड़ित दशा की अभिव्यक्तिस्वरुप अपनी कविता 'एक प्रश्न' भेजी थी जिसका अर्थ था कि मैं अपने साहित्य सृजन को विराम देकर बैंक में अपनी पदोन्नति परीक्षा की तैयारी करूंगा और मैंने पूछा था कि यदि यही प्रश्न विस्वास सरला से पूछता तो उसका क्या उत्तर होगा?

मेरे मन-मस्तिष्क पर ये दोनों पात्र इस कदर छा गए हैं कि मैंने इन्हें अपने में आत्मसात् कर लिया है। इन दोनों पात्रों में अलौकिक प्रेम है अत: विस्वास सरला की हर बात जानने को, मानने को बेचैन है और वही एक मात्र ऐसी पात्र है जो उसे चारित्रिक दृढ़ता एवं उन्नति-पथ पर चलने की प्रेरणा देने में सक्षम है। इस कविता में स्वजनों की लाशों का अर्थ था- साहित्य-सृजन को दिया गया विराम। तथाकथित बेमानी सी मंज़िल का अर्थ था- बैंक की

पदोन्नति। पर अब सिद्ध हो चुका है कि साहित्य का सर्जक अपने सृजन की लाशों पर कदापि नहीं चल सकता। मुझे विश्वास है कि सरला भी विस्वास के कर्म-पथ पर विराम देने वाली साबित न होती और उसका भी उत्तर यही होता जो हो रहा है। आप द्वारा की गई अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया एवं पत्र से मुझे इसका उत्तर मिल गया है।

डॉ. गीता सक्सेना द्वारा डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा को प्रेषित कविता 'मंथन' पर टिप्पणी

आपकी यह कविता कई बार पढ़ी। हर बार बढ़ती हुई दर से सन्तुष्टि मिली। उपन्यास के पात्र विस्वास ने सरला की अभिव्यक्ति को यथासमय न समझा पर जब उसको समझा तो उसे बार-बार आत्मसात् करता रहा। जीवन का एक दीर्घ कालखण्ड व्यतीत होने के पश्चात् भी सरला के साथ बिताया गया हर क्षण, साँसों की गरमाहट एवं आँगन पार करते समय महसूस की गई उसके हृदय की धड़कनें आज उसके समक्ष जीवन्त हो उठी हैं और वह इन सबको एक क्षण के लिए भी अपने से विलग नहीं कर सकता , अन्यथा उसके हृदय की गति रुक जायेगी और तब क्या सरला की साँसें चलती रह सकेंगी? यदि विधाता ने भूल से भी ऐसा कर दिया तो अभिव्यक्ति के पात्रों को पुन: जन्म लेना होगा एक साथ, क्योंकि अलौकिक प्रेम एकाकार होकर रहेगा उसी प्रकार जिस प्रकार अतृप्त प्रेमी अकाल मृत्यु होने पर भी अपने उभय पक्ष से भूत-भूतनी बनकर संलग्न रहने का प्रयास करते हैं। इसके सम्बन्ध में मेरा ढूंढ़ाड़ी गीत 'कोनै निकळूं' संलग्न है।

..... आपकी कविता 'मंथन' अभिव्यक्ति हेतु मन की कुलबुलाहट का गहन शास्त्रीय परिणाम है। सामान्यजन के लिए इसे समझना आसान नहीं क्योंकि यह मानवीय भावनाओं के गूढ़ रहस्यों का चक्करदार मंथन है। कत्थक नृत्य के चक्करदार तोड़े का तो ताल विशेष से ऐसा सम्बन्ध है जो गणितीय है और उसका निश्चित व्याकरण होता है अत: तद्नुसार उसे नियंत्रित होते हुए सम पर आकर अभिव्यक्त होना ही पड़ेगा ..... नर्तकी बड़ी कुशलता के साथ नृत्य का सम ला देती है, पर क्या वह अपने मन के सम को अभिव्यक्ति के प्रदर्शन से साकार कर सकती है? उसके अन्तर्मन में कैसा मंथन चल रहा है, अभिव्यक्त करना भी चाहा तो किसने समझा। लाखों में से कोई एक ही होगा जिसका मिलन उसके सच्चे प्रेम की आराधना का परिणाम हो सकता है।

आपके मंथन का उद्वेलन अभिव्यक्ति के दोनों प्रमुख पात्रों का उद्वेलन है और दोनों ही पात्र अपनी स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति हेतु एक ऐसे कोटर की तलाश में हैं जहाँ वे एक दूसरे के समक्ष मन के भावों की अभिव्यक्ति कर सकें। जन्म जन्मांतर से अन्तर्मन की गहराइयों में उस अतृप्तता को एक दूसरे की ओर निहारते हुए जन्म जन्मांतर तक भोग सकें। पर ऐसा अवसर कब मिलेगा। मुझे लगता है कि विधाता द्वारा परीक्षा लिए जाने की भी एक सीमा है और अभिव्यक्ति के दोनों पात्र सृष्टि-रचयिता द्वारा निर्धारित उस सीमा रेखा के समीप पहुँच चुके हैं। अभी तो मिलन की राहों पर तथाकथित स्वजनों के सायों से ही भयभीत से होते हुए उस कोटर को तलाश रहे हैं। ऐसी स्थिति में दोनों पात्रों के मन का वह अहसास कामिक भूगोल के व्याकरण को परखने में इस बात हेतु चिन्तित है कि कहीं व्याकरण की गणना मिसफिट न हो जाय अन्यथा मन के स्तम्भ पर चली आरी से दोनों का सर्वनाश हो जायेगा। परन्तु ऐसा होगा नहीं । सच्चे प्रेम का कभी सर्वनाश नहीं होता वह अमर हो जाता है और अलौकिक प्रेम की डोर में बँधे अभिव्यक्ति के पात्र विस्वास एवं सरला का प्रेम तो इतना पवित्र है कि उनका गणित मिसफिट हो ही नहीं सकता क्योंकि वे पिछले कई जन्मों से एक दूसरे के निकट हैं और उनकी आत्माएं एक दूसरे के प्रति इतनी संवेदनशील हैं कि अपने प्रेमी के कदमों की आहट से ही एक दूसरे को पहचानकर आत्मसात् कर लेंगे।

इन राहों पर उन्हें बदहवास चीखों से भी साक्षात् हुआ है। विस्वास ने इन चीखों को अपने अन्तर में समेटने का प्रयास किया है और वह भी इसलिए कि हर स्त्री में, और वह भी केवल कमजोर, अबला और पीड़िता में उसे अपनी सरला ही दिखलायी दी। अत: उसने हर संभव प्रयास किया इन चीखों के प्रति संवेदनात्मक सहायता का। पर उसकी भी अपनी सीमाएं थीं। सामाजिकता के प्रति तो वह भी प्रतिबद्ध था ही। व्यक्ति कितना ही चाहे अनचाहे आवरण को उतार फेंकने का, पर वह विवश होता है उसे ओढ़े रहने को और ऐसे में भी वह चीखों को सहलाने का लघु प्रयास करता रहेगा क्योंकि यह उसकी नियति है, मन का आन्तरिक उद्वेलन है।

मुक्ति तो हर आत्मा की संभव है, बस प्रतीक्षा करनी पड़ती है उस क्षण तक जो विधाता द्वारा इस हेतु पूर्व में ही निर्धारित कर दिया जाता है। 'मंथन' से ऐसा आभास हो रहा है मानो दो आत्माएं निर्जनता के आँचल में

बने एक कोटर के समीप हैं जहाँ अभिव्यक्ति साकार होगी। न मन के स्तम्भों पर आरी चलेगी और न ही कभी इन्हें बदहवास चीखें सुनायी देंगी। मनुष्य सदैव अपने मूल से जुड़ना चाहता है अत: जब अतीत का वर्तमान में एकाकार हो जायेगा तो सत्य रूप में जीवन सार्थक हो सकेगा और उसका हेतु रहेगी दोनों पक्षों की स्पष्ट अभिव्यक्ति। मैंने अपने उपन्यास में लिखा है कि स्त्री पुरुष से उसके द्वारा उसके (स्त्री के) प्रति किये गये प्रेम की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति की कामना करती है। पुरुष पुरुष होकर भी कभी-कभी मन में भय रखता है। पर अभिव्यक्ति का विस्वास अपनी सरला के प्रति अपने प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति का साहस करेगा, भगवान उसे शक्ति प्रदान करे। आप भी मेरे साथ मिलकर उन दोनों के लिये यही प्रार्थना करें। मेरा विश्वास है कि अन्तस की गहराइयों से निकले ये भाव जिनका दीर्घकाल तक मंथन हुआ है अकारथ नहीं जायेंगे।

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा

❑❑❑

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। अगर समाज है तो साहित्य है। यदि समाज ही अपने अस्तित्व में नहीं है तो साहित्य के होने न होने का कोई औचित्य भी नहीं है। इसके विपरीत साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उस राष्ट्र का साहित्य उच्चाकोटि का न हो।

साहित्य और साहित्यकारों का अटूट सम्बन्ध है। साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। साहित्य का जन्म वहां होता है जहां आत्माभिव्यक्ति की तीव्र कामना होती है। इसलिए बिना किसी विवाद के कहा जा सकता है कि साहित्यकार की रचनाओं में मुख्य रूप से उसकी आत्मसत्ता व व्यक्तित्व का प्रभाव परिलक्षित रहता है। वैसे भी साहित्यकार अत्यधिक भावुक और संवेदनशील होता है। वह अपने परिवेश में होने वाली घटनाओं और क्रिया-कलापों से आम जनमानस की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावित रहता है। एक समर्पित साहित्यकार वही होता है जो जनहित से जुड़कर कार्य करता है, आदमी की पीड़ा को अंतर्चेतना के धरातल पर स्पर्श करता है। उसके दर्द की अभिव्यक्ति तथा भावना को उभारने के लिए सीधा व सपाट रास्ता मुहैया करवाता है। इस दृष्टि से डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने प्रशंसनीय कार्य किया है, जो उन्हें विशिष्ट बना देता है। इनका समग्र साहित्य बड़ा ही प्रभावकारी एवं मार्मिक है। इन्होंने जिस यथार्थ को भोगा है, उसी सच्चाई को अपनी लेखनी के माध्यम से अपने साहित्य में उकेरा है।

जीवन परिचय—

जन्म—साहित्य के उत्कृष्ट साधक व कर्मयोगी साहित्यकार कैलाशचन्द्र शर्मा जी का जन्म 19 जुलाई सन् 1957 को राजस्थान प्रान्त के मैड़ ग्राम में हुआ। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी को अपने जन्म के समय के सम्बन्ध में मतभेद है। आपको अपनी माता जी से केवल इतना ही पता चल

पाया है कि जिस दिन आपका जन्म हुआ उस दिन बाणगंगा का मेला था और तिथि के हिसाब से यह मेला प्रतिवर्ष उतरते वैशाख की पूर्णिमा के दिन लगता है। जब आपने विद्यालय में प्रवेश लिया तो गुरुजी ने अपने हिसाब से कल्पना कर आपकी जन्म तिथि 19 जुलाई सन् 1957 लिख दी और तब से समस्त सरकारी प्रमाण पत्रों में यही तिथि आपकी जन्मतिथि मानी जाने लगी।

माता-पिता—कैलाशचन्द्र शर्मा जी के पिता श्री गणेश दास जी ग्राम मैड़ में स्थित श्री सियावरजी के मन्दिर में महन्त थे। वे जीवन-यापन के लिए कृषि कार्य भी किया करते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवत्-भक्ति एवं जनसेवा में व्यतीत किया। उन्हें अपने जीवनकाल में अपने पुत्रों की ओर से कोई सुख न मिला। ऐसे समाजसेवी एवं परोपकारी व्यक्ति का 29 मार्च 1980 को निधन हो गया। कैलाशचन्द्र शर्मा जी की माता श्रीमती नारायणी देवी गृहकार्य में दक्ष एक विदुषी महिला थी। आप मातृ स्नेह से वंचित ही रहे क्योंकि आपकी माँ अधिकतर अपने पीहर टोडा (जयपुर) में ही रहा करती थी।

शिक्षा—कैलाशचन्द्र शर्मा जी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम मैड़ में स्थित राजकीय श्रीराम प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय में हुई। आप प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रहे और अपनी कक्षा में अव्वल आते रहे। आठवीं की परीक्षा पास करने के उपरान्त आपने शाहपुरा (जयपुर) के राजकीय श्री कल्याण सिंह उच्च माध्यमिक विद्यालय में जीव-विज्ञान विषय लेकर प्रथम श्रेणी से नौवीं कक्षा पास की। इसके उपरान्त आपने जयपुर के पोद्दार उच्च माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लिया परन्तु दसवीं की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर नौकरी हेतु कलकत्ता चले गया। वहां पर आपका मन न लगा और नौकरी छोड़कर वापस जयपुर आ गए। तदुपरान्त स्वयंपाठी विद्यार्थी के रूप में ऐच्छिक विषय हिन्दी लेकर द्वितीय श्रेणी से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आपने दरबार उच्च माध्यमिक विद्यालय जयपुर से प्रथम श्रेणी में हायर सेकैण्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण की । अपने पिता की प्रेरणा से वाणिज्य महाविद्यालय जयपुर से बी. कॉम. एवं तत्पश्चात राजस्थान विश्वविद्यालय से एम. कॉम. की परीक्षा पास की।

सन् 1982 में आपने पंजाब नैशलन बैंक में कार्य ग्रहण किया एवं नौकरी करते हुए एलएल. बी., सी. ए. आई. आई. बी., डिप्लोमा इन लेबर ला एण्ड पर्सनल मैनेजमेंट, सर्टिफिकेट इन रूरल बैंकिंग, सर्टीफिकेट इन कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, एम. ए. (हिन्दी), पीएच. डी. तथा डी. लिट्. की उपाधियां

प्राप्त की। आपने भातखण्डे संगीत विद्यापीठ लखनऊ, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल मुम्बई तथा वृहद् गुजरात संगीत समिति अहमदाबाद की संगीत एवं नृत्य विशारद परीक्षाएं भी पास की।

विवाह और सन्तति—कैलाशचन्द्र शर्मा जी का विवाह 8 जून सन् 1982 को केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के प्रो. डॉ. ईश्वर सिंह जी शर्मा की जयेष्ठ पुत्री रेनूरानी के साथ सम्पन्न हुआ। आपके एक पुत्री काजल और एक पुत्र अभिषेक है। दोनों ने कम्प्यूटर इन्जीनियरिंग की परीक्षा पास की है तथा दोनों ही संगीत, नृत्य एवं नाटक के प्रतिभाशाली कलाकार हैं। आपकी पत्नी श्रीमति रेनू जी त्रिवेणी कला संगम जयपुर की संस्थापक सदस्य एवं वर्तमान में अध्यक्ष हैं जबकि काजल और अभिषेक इस संस्था के प्रथम विद्यार्थी रहे हैं।

संघर्षमय जीवन—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपने छात्र जीवन को पूरा करने में जिस यातनामय संघर्ष को झेला, उसका स्वाद बहुत कड़वा है, फिर भी आपने किसी से याचना नहीं की। जब तक आपके पिता जी जीवित रहे तब तक उन्होंने आपकी शिक्षा के खर्चो की पूर्ति का पूरा-पूरा बन्दोबस्त किया। आपको यह भी पता था कि आपके पिता जी आपकी पढ़ाई के लिए आर्थिक साधन किन कठिनाइयों से जुटाते थे। उनकी इस तपस्या को आपने अपने पिता की जीवनी 'कर्मयोगी' लिखकर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है।

कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अध्ययन के समय काफी बाधाएं झेली फिर भी इन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में आपने किसी से याचना नहीं की । आपके पिता जी ने अपने जीवनकाल में आपके अध्ययन में आने वाली हर बाधा को दूर करते हुए आपको आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया।

आजीविका—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अपनी एम. कॉम. की शिक्षा पूरी करने के पश्चात् जयपुर के एक प्राईवेट स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् आपने कुछ समय आडवाणी एण्ड सन्स जयपुर (एक्सपोर्ट कम्पनी) में लिपिक का कार्य किया तथा वर्ष 1980 में राजस्थान वित्त निगम जयपुर में अस्थाई लिपिक के रूप में लगभग एक वर्ष तक कार्य किया। तत्पश्चात् दी गंगानगर केन्द्रीय सरकारी बैंक के प्रधान कार्यालय में एक वर्ष तक लिपिक के रूप में अपनी सेवाएं देने के उपरान्त 14 अगस्त 1982 में पंजाब नैशनल बैंक में लिपिक के रूप में कार्यग्रहण किया । वर्तमान

में आप इस बैंक में वरिष्ठ अंकेक्षक के रूप में कार्यरत हैं। आपको कृषि कार्य करने का भी शौक है। ग्राम मैड़ में स्थित अपनी कृषि भूमि पर आप दो स्थाई नौकरों की सहायता से कृषि कार्य करवाते हैं।

साहित्य सृजन (रचना संसार)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी ने अल्पायु में ही साहित्य सृजन करना प्रारम्भ कर दिया था। जब आप आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तो विरोधी गुट के साथियों को चिढ़ाने के लिए तुकबन्दी किया करते थे, जो आपके वर्तमान लेखन का आधार बनी । आपने अपनी इस धरोहर को अपने काव्य-संग्रह 'तरुणाई' में यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है। आपकी सर्वप्रथम कहानी 'चेहरे असली नकली' एवं कविता 'वस्तु-पात्र सम्बन्ध' वाणिज्य महाविद्यालय जयपुर की पत्रिका 'व्यावसायिका' में प्रकाशित हुई जिससे आपको प्रोत्साहन मिला और आप निरन्तर लेखन के क्षेत्र में आगे बढ़ते ही चले गये।

संगीत, नृत्य एवं नाटक—लेखन के साथ-साथ आपका व्यक्तित्व नाट्य एवं नृत्य विधा से भी जुड़ा रहा आपने जयपुर घराने के वरिष्ठ नृत्यगुरु स्व. श्री मांगीलाल जी पँवार से कत्थक नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा लेने के बाद श्री राजेन्द्र गंगानी, स्व. श्री तीरथ राम आजाद तथा श्रीमती आशा जोगलेकर जैसे महान् गुरुओं से समय-समय पर कत्थक नृत्य की बारीकियां सीखकर न केवल अपने अनेक शिष्य शिष्याओं को कत्थक नृत्य की शिक्षा प्रदान की अपितु जयपुर, जोधपुर, भरतपुर गाजियाबाद आदि अनेक स्थानों पर अपनी शिष्य-शिष्याओं के साथ विभिन्न मंचों पर प्रस्तुतीकरण भी दिया। उल्लेखनीय है कि आपकी शिष्या श्रीमती रीना शर्मा ने इन्दिरा कला संगीत विशविद्यालय, खैरागढ़ की वर्ष 2003 की विश्वविद्यालय की बी.डान्स की योग्यता सूची में अखिल भारतीय स्तर पर द्वितीय स्थान प्राप्त किया। नृत्य के क्षेत्र में आपके इस योगदान को कथक नृत्य गुरु श्रीमती आशा जोगलेकर एवं श्री राजेन्द्र गंगानी ने 'कर्मपथ' (डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा का बहुआयामी सृजन) पुस्तक हेतु प्रस्तुत अपने आलेखों में उजागर किया है।

आपने अब तक लगभग डेढ़ दर्जन नाटकों की रचना की, उनके मंचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी तथा नाट्य निर्देशन जैसे महान् दायित्व का भी निर्वहन अत्यन्त कुशलता से किया। अपने इन सुरूचीपूर्ण कार्यों को गति प्रदान करने हेतु आपने अपनी पत्नी श्रीमती रेनूरानी के सहयोग से सन् 1995 में त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की स्थापना की जहां पर अखिल भारतीय

गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के केन्द्र व्यवस्थापक के रूप में संचालन करना एवं वर्ष 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर की स्थापना कर उसमें इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की विद् डिप्लोमा एवं बी.डान्स तक की परीक्षाओं हेतु कत्थक नृत्य विषय का शिक्षण प्रदान कर परीक्षाओं का संचालन करना आपकी सांगीतिक अभिरूची का परिचायक है। 4 नवम्बर 1998 को आपके कुशल संयोजन में न्यू गेट से रवीन्द्र मंच, जयपुर तक एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की विशाल संगीत रैली का आयोजन किया गया जिसमें देश-विदेश से लगभग सात सौ संगीत-विद्यार्थियों एवं संगीत प्रेमियों ने पद्मश्री विश्वमोहन भट्ट एवं संगीतज्ञ स्व. श्री नारयणराव पटवर्धन के नेतृत्व में सहभागिता की। आप अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई की संगीत एवं कत्थक नृत्य की विभिन्न परीक्षाओं के प्रायोगिक परीक्षक के रूप में भी संगीत एवं नृत्य जगत् को अपनी सेवाएं देते रहे हैं तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के नाट्य विभाग में समय-समय पर एम.ए. कक्षाओं के विद्यार्थियों को अवैतनिक अतिथि संकाय के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं।

मान-सम्मान (सम्मान एवं पुरस्कार)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी बिना किसी प्रतिफल प्राप्त करने की आकांक्षा के निरंतर साहित्य, संगीत, नाट्य एवं नृत्यकर्म में सलंग्न रहे हैं। अपने सुरूचिपूर्ण कार्यों को मूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से आपने अपनी पत्नी श्रीमति रेनू रानी शर्मा के सहयोग से वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम की स्थापना की और उसकी छाया तले रंगमंच से जुड़कर अनेक नाटकों का प्रस्तुतीकरण किया, जिसके परिणामस्वरूप आपको राजस्थान कला केन्द्र भरतपुर द्वारा 'कलाश्री', अखिल भारतीय साहित्य परिषद द्वारा 'नाट्य कला सम्मान' तथा इण्डियन फार्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन द्वारा ढूँढाड़ी बोली में किये गये शोधपरक कार्य एवं नाट्य क्षेत्र में किए गए उल्लेखनीय कार्यों हेतु सम्मानित किया गया।

कार्यक्षेत्र (अभिरूचि)—कैलाशचन्द्र शर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है अर्थात् आपका लेखन एक विधा तक सीमित नहीं रहा। आप कहानीकार होने के साथ-साथ नाटककार, उपन्यासकार और कवि भी हैं। लेखन के साथ-साथ रंगमंच और संगीत में भी आपकी रूचि रही है। आप सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न रहे हैं तथा कई नाटकों का निर्देशन एवं उनमें अभिनय

किया है। संगीत के क्षेत्र में आपने वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम जयपुर एवं वर्ष 2001 में त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय जयपुर की स्थापना की। आप अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल मुम्बई की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के केन्द्र व्यवस्थापक एवं मण्डल के 67वें दीक्षांत समारोह के संयोजक रहे हैं। आप मंडल की संगीत अलंकार तक की परीक्षाओं के क्रियात्मक परीक्षक एवं मंडल के आजीवन सदस्य हैं। आपने विभिन्न प्रांतों में आयोजित संगीत सम्मेलनों एवं बैठको में सहभागिता की है।

व्यक्तित्व—व्यक्तित्व से तात्पर्य है व्यक्ति का अपना वैशिष्ट्य या निजीपना। वस्तुतः व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति विशेष के अनुभवों और परिवेशीय प्रभावों से होता है। दशरथ ओझा ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है-''व्यक्तित्व का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया में अनुरूपता अथवा एकरूपता का निर्माण।''

मनुष्य की सबसे बड़ी पहेली उसका अपना व्यक्तित्व है।

रामबाबू गुप्त के अनुसार-''व्यक्तित्व पूर्णतया एक आदर्श है। यह आत्मज्ञान है।''

आइनैक के अनुसार-''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, वृद्धि और शारीरिक बनावट का थोड़ा बहुत स्थाई और स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन को निधारित करता है।''

व्यक्तित्व शब्द को अंग्रेजी में 'पर्सनेलिटी' कहा जाता है। पर्सनेलिटी शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'परसोना' से हुई है जिसका अर्थ है मुखौटा।

किसी भी व्यक्ति की तरह साहित्यकार का व्यक्तित्व भी द्विपक्षीय होता है-बाह्य और आन्तरिक पक्ष। बाह्य पक्ष में पहनावा, रंग-रूप, खान-पान आदि आते हैं, जबकि आन्तरिक पक्ष में स्वभाव, व्यवहार और साहित्यिक रचनाओं में प्रदत्त भावना और शैली को लिया जा सकता है। जीवित साहित्यकार के व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त जटिल कार्य होता है, क्योंकि परिस्थिति के अनुसार वह अपने अन्दर नये भाव और प्रभाव ग्रहण करता है। वह परिस्थितियों और भावों के अनुकूल ही रचना कार्य करता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व गतिशील होता है।

कलम की शक्ति, विचारों और सिद्धांतों को अपना ध्येय मानकर

सृजन एवं सेवा में कार्यरत कैलाशचन्द्र शर्मा जी एक ऐसे आलोक स्तम्भ हैं जो दूर-दूर तक लोगों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

आकृति एवं वेशभूषा—कैलाशचन्द्र शर्मा जी साधारण-सी कद-काठी वाले व्यक्ति हैं। यद्यपि आपका जन्म एक साधारण कृषक परिवार में हुआ है अत: आपकी आकृति से आपके ग्रामीण होने का अनुमान सहज रूप से लगाया जा सकता है। आपकी वेशभूषा सामान्य है। नौकरी पर जाते हुए आप पैन्ट-शर्ट पहनते हैं। पहनावे में किसी भी प्रकार का दिखावा आपको पसन्द नही है। जब आप अपने गाँव जाते है तो सफेद धोती-कमीज, सिर पर लाल पगड़ी एवं पैरों में बाड़ीजोड़ी की जूतियाँ पहनना आपको रूचिकर लगता है। संगीत एवं नाटक के कार्यक्र मों में सहभागिता के अवसर पर आप कुर्ता-पाजामा पहनते हैं। आप सक्रिय रंगकर्मी एवं कत्थक नृत्य के प्रदर्शनकारी कलाकार हैं, अत: कार्यक्रमों के प्रस्तुतीकरण के समय आप पात्रानुसार वेशभूषा धारण करते हैं।

खान-पान—कैलाशचन्द्र शर्मा जी विशुद्ध रूप से शाकाहारी हैं। माँसाहार, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि से आपको सख्त घृणा है। सामान्यतया आप चाय नहीं पीया करते, परन्तु छाछ-राबड़ी, बाजरे की खिचड़ी, लहसुन की चटनी एवं दाल बाटी चूरमा आदि आपको बेहद पसंद हैं।

स्वभाव—कैलाशचन्द्र शर्मा जी स्वभाव से विनम्र शिष्ट और मृदुभाषी हैं। आप मिलनसार व्यक्ति हैं। प्रत्येक कार्य को आप बड़ी गम्भीरता से लेते हैं। आपका जीवन अनुशासन के साँचे में ढ़ला है।

शालीनता—कैलाशचन्द्र शर्मा जी सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति हैं। जीवन में किसी भी प्रकार का दिखावा आपको पसन्द नहीं है तथा औपचारिकताओं से वे कोसों दूर हैं। आप अपनी बैंक की सेवा में भी एक सहज व्यक्ति के रूप में रहते हैं। आपको कभी भी पद का अभिमान नहीं रहा। यही कारण है कि जब आप प्रबन्धक के पद पर कार्यरत थे तो कई लोगों ने आपको अधिकारी की पदोन्नति के लिए तैयारी करने की सलाह दी।

स्वाभिमानी व्यक्तित्व—कैलाशचन्द्र शर्मा जी अपने पिता महन्त श्री गणेशदास जी महाराज की ही भांति स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आपने न तो अपने सिद्धांतों के विरुद्ध कोई कार्य किया और न ही अपनी परिस्थितियों को किसी के सामने उजागर किया। शायद

इसी गुण ने आपको समान्य लोगों की पंक्ति से परे शीर्ष पर ले जाकर खड़ा करने में अहम भूमिका निभाई। जब किसी कठिन परिस्थिति से निपटने में आप स्वयं को असहाय महसूस करते तो सब कुछ भगवान के भरोसे छोड़ दिया करते और तब निश्चय ही उस कठिनाई से आप आसानी से निजात पा लिया करते।

पुरुषार्थ एवं आशावाद—कैलाशचन्द्र शर्मा जी की सबसे बड़ी विशेषता उनका आशावादी होना है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप आशा, विश्वास और पुरुषार्थ से परिपूर्ण रहते हैं, तभी तो आपका लेखनकार्य निरन्तर जारी है। हमने हालातों और परिस्थितियों की मार से टूट कर अनेक लेखकों को राह छोड़ते हुए देखा है या फिर गहरी निराशा और अवसाद के दौर से गुजरते हुए। परन्तु कैलाशचन्द्र शर्मा जी आशावादी हैं और आप में परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता है।

दृढ़ इच्छा शक्ति—कैलाशचन्द्र शर्मा जी दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न एक कर्मठ इन्सान हैं। जब आपके मन में किसी कार्य को करने की इच्छा उत्पन्न होती है तो आप तब तक चैन की साँस नहीं लेते जब तक कि उस कार्य की सिद्धि न हो जाए। इस मार्ग में आने वाली किसी भी प्रकार की कठिनाई से आप तनिक भी विचलित नहीं होते। आपका मत है कि डूबता हुआ व्यक्ति यदि डरकर जीने की उम्मीद खो बैठता है तो वह जरूर डूबेगा। पर ऐसे समय में किसी के जीने की इच्छा बलवती हो तो शायद वह बच सकता है। इस सम्बन्ध में आपके तरु णाई काव्य संग्रह की कविता 'पथ के राही' खरी उतरती प्रतीत होती है-

'जाग उठ इन्सान पल-पल बीतता जाता, राह है सुनसान इस पर क्यों नहीं आता।

रित नाटक कर इसे आबाद क्यों तू सो रहा पगले, धैर्य मन से धार राही राह पर चल दे। ....."[1]

प्रकृति प्रेमी—कैलाशचन्द्र शर्मा जी का जन्म एक ऐसे गाँव में हुआ जो प्राकृतिक वातावरण से आच्छादित है। आपका निवास स्थान सियावरजी का मन्दिर बाणगंगा नदी के तट पर स्थित है,जहां पर खजूर, आम, जामुन आदि के हजारों पेड़ सैकड़ों वर्षों से स्थिर रूप से खड़े हैं। मोर, पपीहे,

1.13 जून 1997 को जयपुर दूरदर्शन से प्रसारित नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' में भीखू की गुनगुनाहट

कोयल,चिड़ियाओं की चहचाहट एवं गाय, भैंस, बछड़ों के रंभाने का स्वर निरन्तर रूप से आपको आनन्दित करता है, जो आपके दूंढाड़ी गीतों, कविताओं, कहानियों, नाटकों एवं उपन्यासों में देखा जा सकता है।

सृजन की प्रेरणा—डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा जी को साहित्य सृजन की प्रेरणा अपने जन्म स्थान के इस प्राकृतिक वातावरण एवं स्कूल के सहपाठियों से मिली जिसके परिणामस्वरूप आपने अपनी प्रारम्भिक कविताएं एवं कहानियाँ लिखी। जीवन में पग-पग पर आपको कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो आपके लेखन के आधार बने। इस बात को आपनेअपने काव्य संग्रह 'तरुणाई' में अभिव्यक्त भी किया है।

वर्ष 1995 में त्रिवेणी कला संगम जयपुर द्वारा आयोजित बाल नाट्य प्रशिक्षण शिविरों हेतु अच्छे नाटकों की कमी ने आपको नाटक लिखने हेतु प्रेरित किया तथा वर्ष 2005 में भरतपुर की कत्थक नृत्य की उनकी शिष्या श्रीमती रीना शर्मा ने आपको ढूंढाड़ी गीत लिखने हेतु प्रेरित किया जिनका आगे चलकर आपने अपने नाटकों के मंचीय प्रस्तुतीकरण में समायोजन किया। आपने रीना शर्मा के घर पर अपना प्रथम गीत 'टरैं' लिखा तथा आगे चलकर उनकी शिष्या ज्योति कटारा के सहयोग एवं प्रेरणा से ढूँढाड़ी गीतों का सृजन एवं ध्वनि संयोजन किया जिसके परिणामस्वरूप फरवरी 2007 में आपके ध्वनि संयोजन में 'त्रिवेणी कैसेट-सी. डी.' जारी हुई।

कृतित्व

हिन्दी साहित्य के प्रबुद्ध साहित्यकार कैलाशचन्द्र शर्मा जी की साहित्य यात्रा विभिन्न कृतियों, जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य,जीवनी जैसी विधाओं से होकर गुजरती है। इनकी सफलता और प्रसिद्धि लेखक के लेखन कर्म की सार्थकता को सिद्ध करती है तथा श्रेष्ठता को भी स्थापित करती है।

नाटक

कार्यवाहक हलवाई , नामकरण , अफ़सर का कुत्ता, मन चंगा तो कठौती में गंगा, लड़ी मैड़ की, तुक्के का बादशाह, पेड़ हमारे मित्र, छोटा बेगारी, जैसे को तैसा, जंगल मित्र, कंस , आधुनिक यमलोक, वीर शिरोमणि पृथ्वीराज चौहान, देख जात के ठाठ, मानवता की पुकार, मेरी लाडो पढ़ेगी, अग्निभूत।

उपन्यास

अभिव्यक्ति, विरह का इन्द्रधनुष

कहानियाँ

'अबला की मंजिल' कहानी-संग्रह—अबला की मंज़िल, माधवी, साक्षात्कार, मौन समर्पण, चेहरे असली-नकली, नवजीवन, कर्ज़, दीपक की रोशनी, पैमाना, भटकती आत्मा, ताबीज़

'ओवरकोट' कहानी-संग्रह—ओवरकोट, रींछ भगवान, बोरे की लाश, खान दोस्त, भिखारिन माँ, बछड़े की अरदास , उपकार का बदला , सवारी का मोह, स्वाभिमान

जीवनी

कर्मयोगी

शोध प्रबन्ध

नरेश मेहता का गद्य साहित्य (पीएच. डी.)

हिन्दी मराठी नाटकों का रंग वैशिष्ट्य :समकालीन भारतीय संदर्भ(डी.लिट्.)

समीक्षा

मोहब्बत का सफरनामा (कवि श्री जगदीशचन्द्र पण्ड्या की गज़लों की पुस्तक)।

हादसों के संस्करण (मराठी रंगकर्मी एवं अभिनेता श्री विजय कदम की पुस्तक 'हलकं फुलकं')।

सम्पादन

स्मारिका—त्रिवेणी कला संगम जयपुर, वर्ष 1995 एवं 1998 पी.एन.बी. सन्देश (पंजाब नैशनल बैंक, जयपुर अँचल की गृह पत्रिका)

बैंक ज्योति (बैंक ऑफ बडौदा के संयोजन में जयपुर बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जयपुर की गृह पत्रिका)

अन्य ग्रन्थ

आधुनिक परिदृश्य में मानव संसाधन विकास एवं प्रबन्धन (पुरस्कृत)

भारतीय रंगमंच शास्त्र एवं आधुनिक रंगमंच

खण्डकाव्य

सन्तोषी माता

लेख

देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों में साहित्य, संगीत, नाटक एवं लोक कला सम्बन्धी विषयों पर लेखों का प्रकाशन।

कविताएँ

काव्य संग्रह 'तरुणाई' एवं अन्य कविताओं सहित लगभग 60 कविताओं का सृजन।

गीत

126 ढूंढाड़ी गीतों का सृजन एवं ध्वनि संयोजन। 50 ढूंढाड़ी गीतों की विषयवस्तु एवं भावार्थ का अंग्रेजी अनुवाद।

कत्थक एवं लोकनृत्य प्रस्तुतीकरण

रवीन्द्र मंच जयपुर, यूथ हॉस्टल जोधपुर, वी.एन. भारतखण्डे संगीत महाविद्यालय गाजियाबाद आदि स्थानों पर एकल एवं युगल प्रस्तुतीकरण।

डायरी

वर्ष 1980 में बम्बई प्रवास के दौरान लिखित।

प्रदर्शनात्मक व्याख्यान

भारतीय संगीत, नाटक एवं लोक कला विषय पर आई. सी. सी. आर. नई दिल्ली हेतु प्रदर्शनात्मक व्याख्यान की वीडियो सी. डी. का निर्माण।

रंगमंच प्रस्तुतीकरण एवं निर्देशन

सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न। कई दर्जन नाटकों में अभिनय एवं उनका निर्देशन। सदैव नई टीम को लेकर सफल रहने वाले निर्देशक के रूप में जयपुर रंगमंच के ख्यात कलाकार।

दूरदर्शन प्रसारण

13 जनवरी 1997 को जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनिया' कार्यक्रम में आपके नाटक 'पेड़ हमारे मित्र' का प्रसारण।

श्री संजय दत्त माथुर के निर्देशन में 27 जुलाई 2008 को जयपुर

दूरदर्शन के 'कल्याणी' धारावाहिक की आपकी जन्मभूमि गाँव मैड़ में की गयी रिकॉर्डिंग में आपका सराहनीय अभिनय जिसके प्रसारण को काफी सराहना मिली।

18 नवम्बर 2009 को श्री शैलेन्द्र उपाध्याय के निर्देशन में जयपुर दूरदर्शन के 'मरूधरा' कार्यक्रम में आपके नवसृजित ढूँढाड़ी गीतों में ग्राम्य जीवन एवं दर्शन सम्बन्धी आपसे हुई प्रभावशाली वार्ता के 16 दिसम्बर 2009 को हुए प्रसारण को काफी सराहा गया।

डॉ. वासुदेव शर्मा के निर्देशन में जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनियां' कार्यक्रम में 'नाट्यकला का व्यक्तित्व निर्माण में योगदान' विषय प्रसारित किये गये साक्षात्कार का 20 फरवरी 2010 को प्रसारण।

5 फरवरी 2011 को डॉ. वासुदेव शर्मा एवं श्री राजकिशोर के निर्देशन में जयपुर दूरदर्शन के 'नन्हीं दुनिया' कार्यक्रम में 'मेरी लाड़ो पढ़ेगी' नाटक का प्रसारण।

ऑडियो कैसेट- सी. डी.

11 फरवरी 2007 को कैलाशचन्द्र शर्मा जी के निर्देशन-स्वर संयोजन में उनके द्वारा लिखित ढूँढाड़ी गीतों की 'त्रिवेणी कैसेट- सी. डी.' शृंखला का लोकार्पण 'जयपुर तमाशा' के मूर्धन्य कलाकार स्व. श्री गोपीकृष्ण भट्ट द्वारा किया गया।

शोधकार्य

आपके गीतों पर कला भारती अलवर के निदेशक श्री सुधीर माथुर द्वारा राजस्थान विश्वद्यालय के संगीत विभाग की पूर्व अध्यक्ष एवं ललितकला संकायाध्यक्ष प्रोफेसर मायारानी टाक के निर्देशन मे पीएच.डी. हेतु शोधकार्य किया गया है। कुरुक्षेत्र विश्वद्यालय में आपके साहित्य पर एम.फिल. हेतु निम्नानुसार शोधकार्य सम्पन्न हुए हैं :-

1. नाटककार कैलाशचन्द्र शर्मा
   शोधकर्ता : जोगेन्द्र, निर्देशक : डॉ. बाबूराम, वर्ष 2008
2. अभिव्यक्ति उपन्यास में स्त्री मनोविज्ञान
   शोधकर्त्री : कविता, निर्देशिका : डॉ. आशा अहलावत, वर्ष 2009
3. कहानीकार कैलाशचन्द्र शर्मा

शोधकर्त्री : सुखविन्द्र, निर्देशिका : डॉ.(श्रीमती) नरेश जोशी, वर्ष 2009

इसके अतिरिक्त राँची विश्वद्यालय में आपके काव्य एवं गद्य साहित्य पर निम्नानुसार पीएच.डी. हेतु शोधकार्य प्रगति में हैं-

1. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के काव्य में कला, संस्कृति एवं ग्राम्य जीवन
   शोधकर्ता : हरद्वारी लाल शर्मा, निर्देशिका : डॉ. यशोधरा राठौर
2. डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा के गद्य साहित्य का विवेचन
   शोधकर्ता : कुलदीप, निर्देशक : डॉ. रतन प्रकाश

निष्कर्ष

कैलाशचन्द्र शर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। कहानी, नाटक, उपन्यास, कविताएँ, जीवनी आदि लिखकर अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है। कैलाशचन्द्र शर्मा जी का समस्त जीवन संघर्षो में व्यतीत हुआ है, फिर भी इन्होंने हार नहीं मानी और जीवन पथ पर आगे बढ़ते गये। इन्होंने देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में साहित्य,संगीत, नाटक व लोक कला सम्बन्धी विषयों पर लेख लिखे तथा साथ ही दूरदर्शन से भी जुड़े रहे हैं। इनके द्वारा लिखित कई नाटकों का जयपुर दूरदर्शन से प्रसारण हुआ। लेखन के साथ-साथ रंगमंच प्रस्तुतीकरण, निर्देशन एवं संगीत में भी इनकी रूचि रही है। ये सक्रिय रूप से रंगकर्म में संलग्न रहे हैं। इन्होंने कई नाटकों का निर्देशन एवं उनमें अभिनय भी किया है। इन्होंने त्रिवेणी कला संगम एवं त्रिवेणी संगीत महाविद्यालय, जयपुर की स्थापना की। विभिन्न प्रान्तों में आयोजित संगीत सम्मेलनों व बैठकों में इनकी सहभागिता रही है। वर्ष 2003 में हिन्दुस्तानी एकेडमी एवं नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा इलाहाबाद में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में 'श्री नरेश मेहता का कथा साहित्य' विषय पर किया गया आपका पत्रवाचन सराहनीय रहा।

इस प्रकार कैलाशचन्द्र शर्मा जी ऐसे व्यक्तित्व के धनी हैं, जिन्होंने लेखन, मंचन, संगीत आदि सभी क्षेत्रों में अपना लोहा मनवाया है। एक व्यक्ति में इतना सब कुछ मिलना कठिन ही नहीं, अंसभव है।

(कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के एम.फिल. लधु शोध प्रबन्ध : कहानीकार कैलाशचन्द्र शर्मा, से साभार)

❑❑❑

सादर समर्पित

श्री खण्डूलाल तनसुखराय मिश्रा
धूलिया (महाराष्ट्र)

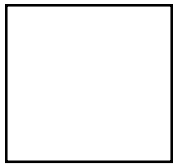

रेणुका इसरानी

रेणुका इसरानी का जन्म 8 नवम्बर 1961 को दिल्ली में हुआ, पली राजस्थान में और बढ़ी बम्बई में।

1981 में जयपुर के महारानी कॉलेज से गोल्ड मैडल आलराउंडर के साथ कला में डिग्री प्राप्त करने के उपरान्त 1984 में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से अभिनय में डिग्री हासिल की।

तीन बहिन-भाइयों में सबसे बड़ी रेणुका जी को अपने विद्यार्थी जीवन से ही कविता एवं कहानियां लिखने का शौक रहा है। आपने अब तक लगभग तीस कविता एवं कुछ कहानियों का सृजन किया है। इनमें से कुछ कविताएं राजस्थान पत्रिका, सबरंग, दैनिक नवज्योति आदि में प्रकाशित हुई हैं। आपकी प्रकाशित कहानी 'फूल मुरझा गया' काफी चर्चित रही है। आपको संगीत सुनने में भी रूचि है और आप त्रिवेणी कला संगम, जयपुर की आजीवन सदस्या हैं।

आपके पिता श्री जी.के.इसरानी जी राजस्थान के न्यायिक विभाग में सचिव तथा जिला न्यायाधीश रहे। उनके पूरे राजस्थान में तबादले हुये अत: आपको राजस्थान की संस्कृति को नज़दीक से देखने का अवसर मिला जिससे आप अत्यन्त प्रभावित रही हैं। आपकी माता इन्द्रा जी, पिता गोवर्धन जी, भाई संजय, बहन नीलम एवं प्रिय सखि सुश्री सुरिन्दर चौधरी ने सदैव ही आपको आगे बढने हेतु प्रोत्साहित किया है।

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से अभिनय में डिग्री हासिल करने के उपरान्त हिन्दुस्तान की सबसे पहली टेलिविजन शृंखला 'हमलोग' में उषारानी के क़िरदार से सफर शुरू करने के बाद आपको बड़े-बड़े निर्देशकों के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ।

डॉ. बी.आर. चोपड़ा-रवि चोपड़ा निर्देशित 'महाभारत' में 'गांधारी' तथा डॉ. चन्द्र प्रकाश निर्देशित 'चाणक्य' में 'मैत्रेयी' की भूमिका में किया गया आपका अभिनय सराहनीय रहा। वर्तमान में चलित शृंखला 'बड़े अच्छे लगते हैं' में आपके आधुनिक माँ के रूप में किये गये अभिनय को दर्शकों की पर्याप्त मान्यता मिली है।

आपका बचपन से ही ऋषिकेष मुखर्जी के साथ काम करने का एक सपना था जो उनकी फ़िल्म ' झूठ बोले कौव्वा काटे' तथा अन्य कई शृंखलाओं में काम करके पूरा हुआ। आपने अब तक लगभग 70 शृंखलाओं तथा नौ-दस फीचर फ़िल्मों में काम किया है।